Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत गाँधी नेहरू की छाया में

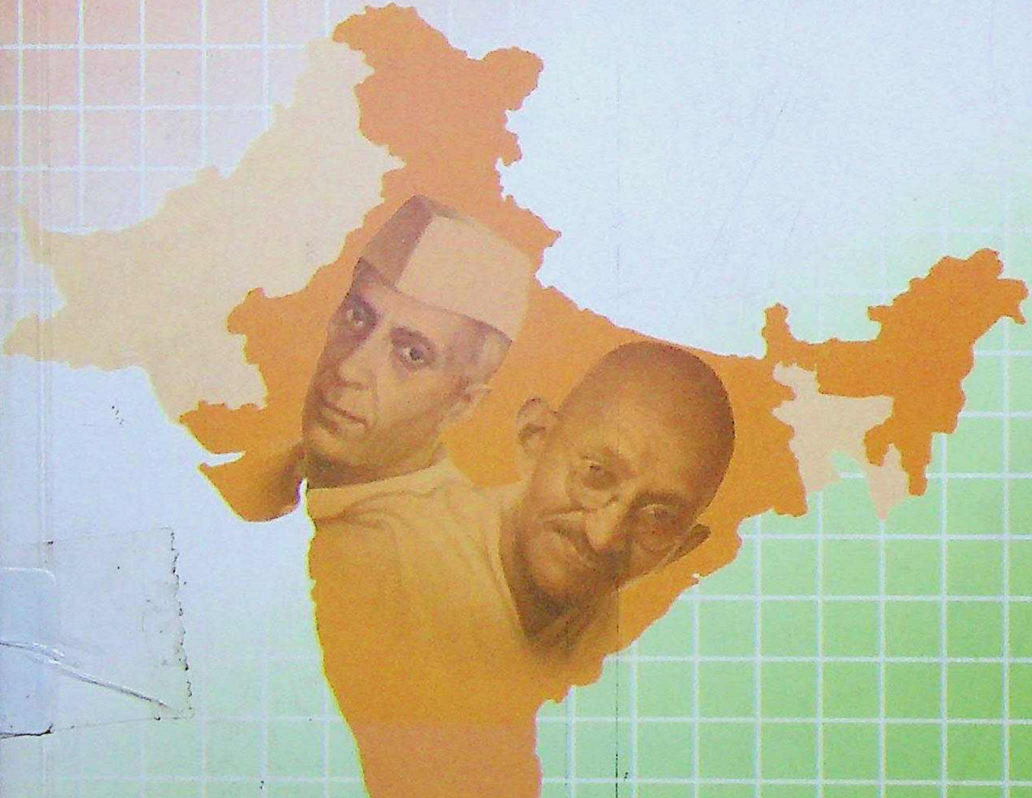

गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

167953

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत गांधी-नेहरू की छाया में

Central Library
167953
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

गुरुदत्त

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

081
167953

हिन्दी साहित्य सदन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत : गांधी-नेहरू की छाया में

© ईशान दत्त

R
089.9143
GUR-G

मूल्य : ₹ 250.00

प्रकाशक : **हिन्दी साहित्य सदन**
2 बी. डी. चैम्बर्स, 10/54 देशबन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
फोन : 23553624, 9213527666, 7065618655
email : indiabooks@rediffmail.com
hindisahityasadan@gmail.com
website : hindisahityasadan.com

प्रथम संस्करण : 8 दिसम्बर, 1969

पच्चीसवाँ संस्करण : **2018**

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, दिल्ली

BHARAT : GANDHI-NEHRU KI CHHAYA MEIN
by GuruDutt

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष निवेदन

मैंने एक पुस्तक 'जवाहरलाल नेहरू एक विवेचनात्मक वृत्त' लिखी थी। यह पुस्तक सन् 1966 में छपी थी। 1967 में कुछेक समाचार-पत्रों में यह समाचार छपा था कि उक्त पुस्तक के लेखक पर भारत सरकार, भारत में विभिन्न समुदायों में वैमनस्य फैलाने के आरोप में, मुकदमा करने वाली है। इसके कुछ दिन उपरान्त एक पुलिस अधिकारी लेखक और प्रकाशक से पूछताछ करने भी आया था। उससे पता चला था कि सरकार कदाचित् भारत दण्ड विधान की धारा 153-ए के अधीन मुकदमा करेगी।

यह धारा इस प्रकार है—

> Indian Penal Code Sec. 153-A
>
> Whoever
>
> (a) by words, either spoken or written, or by signs or by visible representations or otherwise, promotes or attempts to promote, on grounds of religion, race, language, caste or community or any other ground whatsoever, feelings of enemity or hatred between different religious, racial or language groups or castes or communities; or
>
> (b) commits any act which is prejudicial to the maintenance of hormony between different religious, racial or language groups or castes or communities and which disturbs or is likely to disturb the public transquility.
>
> shall be punished with imprisonment which may extend to three years or fine, or with both.

हमने ऐसा कोई अपराध नहीं किया था। किन्हीं भी समुदायों में वैमनस्य फैलाने का हमारा आशय नहीं था। उस पुस्तक से कुछ वैसा हुआ भी नहीं था।

साथ ही उस पुस्तक के लिखने का उद्देश्य श्री जवाहरलाल नेहरू के विचारों और कार्यों की विवेचना करना था। यदि किसी समुदाय का उल्लेख उस पुस्तक में हुआ था तो केवल इस विचार से कि जवाहरलाल नेहरू के कार्यों और कथन से, उस समुदाय के प्रति इतना प्रेम प्रकट होता था कि वे दूसरे समुदायों से अन्याय करते दिखाई दिए थे। विवेचना जवाहरलाल नेहरू की थी, किसी समुदाय की नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हमारा यह निश्चय है कि वर्तमान पुस्तक श्री जवाहरलाल नेहरू तथा महात्मा गांधी के जीवन कार्यों और उनके विचारों पर ही लिखी जाए। हम यह देख रहे हैं कि अभी तक कांग्रेस और भारत सरकार, श्री नेहरू और गांधी जी के नामों की माला जपते हुए भारत की नौका को डुबोने का प्रयास कर रही है। आज भी देश की राष्ट्रभाषा के विषय में नेहरू जी के नाम की दुहाई देकर राष्ट्रभाषा और राष्ट्र की शिक्षा का सत्यनाश किया जा रहा है। अभी तक देश में ऐसे लोग हैं, जो यह समझ रहे हैं कि यदि जवाहरलाल जी न होते तो भारत को, प्रथम स्वराज्य ही न मिलता और यदि मिलता तो देश तुरन्त रसातल को पहुँच जाता।

ऐसे भोले-भाले देशवासियों की ज्ञानवृद्धि के लिए और धूर्त एवं स्वार्थियों को नेहरू जी की आड़ लेकर अपना उल्लू सीधा करने से रोकने के लिए वर्तमान पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में स्वराज्य काल में नेहरू जी की पड़ रही परछाईं के घातक परिणामों पर भी प्रकाश डालने का यत्न किया है।

—गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

प्राक्कथन 7

प्रथम खण्ड

प्रथम परिच्छेद : जवाहरलाल नेहरू की छाया 31
द्वितीय परिच्छेद : हिन्दुस्तान और कांग्रेस 51
तृतीय परिच्छेद : गांधी जी की छाया में 77
चतुर्थ परिच्छेद : महात्मा गांधी और श्री मोतीलाल नेहरू 93

द्वितीय खण्ड

प्रथम परिच्छेद : छाया का प्रभाव आरम्भ 143
द्वितीय परिच्छेद : आत्म-श्लाघा 158

तृतीय खण्ड

प्रथम परिच्छेद : स्वराज्य कैसे आया? 217
द्वितीय परिच्छेद : देश विभाजन-1 225
तृतीय परिच्छेद : देश-विभाजन-2 241
चतुर्थ परिच्छेद : अनधिकार चेष्टा 269
पंचम परिच्छेद : नेहरू जी का राज्य 289
षष्ठ परिच्छेद : मृत्यु के कुछ पूर्व और उपरान्त

पुस्तक का उपसंहार 314

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

श्री जवाहरलाल नेहरू एक महान् व्यक्ति थे। बलवान आत्मा और सुदृढ़ शरीर—ऐसा प्रतीत होता है कि आप में पूर्वजन्म की कोई अति पुण्यात्मा विद्यमान थी। मुख में चांदी का चम्मच लिये पैदा हुए; कही जाने वाली श्रेष्ठतम शिक्षा प्राप्त करने का अवसर आपको मिला; भारत के एक सम्मानित परिवार में जन्म हुआ और फिर जन-जन की श्रद्धा तथा भक्ति मिली और एक विशाल देश का राजसिंहासन मिला।

शरीर से नेहरू जी एक सुन्दर पुरुष थे। इनके सम्पर्क में आने वाला कोई भी, इनके शारीरिक सम्मोहन में फँस जाता था। यह कहा जाता है कि स्त्रियाँ इनके आकर्षण में आ, प्राय: इनका चक्कर काटने लगती थीं। यह शरीर केवल सुन्दर ही नहीं था, वरन सुदृढ़ भी था। इनकी जीवनी पढ़ने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में भी आप बहुत कम रुग्ण हुए। घोर परिश्रम करने पर भी आप क्लान्त नहीं होते थे और फिर जीवनभर निरन्तर कार्य में संलग्न रहे।

भारत को एक सुन्दर पुण्यात्मक शासक मिला। यह एक अति सौभाग्य की बात हो सकती थी, परन्तु वह सौभाग्य मिल नहीं सका। यह कैसा हुआ ? इसकी विवेचना ही इस पुस्तक का प्रयोजन है।

भारतीय दार्शनिकों का यह कहना है कि मनुष्य का वर्ण (कर्म) उसके गुण और स्वभाव के अनुसार होता है। मनुष्य के जन्म की स्थिति, परिवार और शिक्षा-दीक्षा का अवसर ये सब पूर्वजन्म के कर्मफल का ही परिणाम होते हैं, परन्तु इन सबका फल भोगते हुए मनुष्य बनता है अपने पुरुषार्थ से। पुरुषार्थ से ही पूर्वजन्म के कर्मफल का लाभ उठाया जा सकता है।

यह बात श्री जवाहरलाल नेहरू के जीवन के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। शरीर, धन-दौलत और लोक कल्याण करने की सुविधा, सबकुछ प्राप्त होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए भी यह महानुभाव भारत को कहाँ से लेकर कहाँ छोड़ गए हैं, देखने की बात है।

गांधी जी और नेहरू जी के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है और आगे भी बहुत कुछ लिखे जाने की सम्भावना है, परन्तु हम इस पुस्तक में उनका विश्लेषणात्मक वृत्तान्त ही लिखने का विचार रखते हैं, जिससे उनके कथनों, कार्यों और उनके परिणामों में सम्बन्ध जोड़ा जा सके और देश की अवस्था पर चिन्तन करने वालों को ज्ञान हो सके कि भारत के लिए क्या उचित है एवं नेहरू तथा गांधी जी के पदचिह्नों पर चलने से वह कदापि प्राप्त नहीं हो सकेगा।

अभी तक भी इतनी हानि हो चुकी है कि उसके मिटाने में एक-आध शताब्दी लग जानी सहज है।

यह प्रथा-सी चल गई है कि नेताओं के मरने के पश्चात् उनके गुणानुवाद ही गाए जाएँ। जो कुछ नेहरू जी में नहीं था और जो उन्होंने अपने में कभी स्वीकार भी नहीं किया था उन्हें उनका मुख्य गुण बता जनता की मनोवृत्ति में विकृति उत्पन्न करने का यत्न किया जा रहा है।

एक ओर नेहरू जी को बुद्धिवादी (rationalist), विज्ञानवेत्ता (scientist), प्रगतिशील (progressive), समाजवादी, राष्ट्रवादी और राजनीतिज्ञ माना जा रहा है, दूसरी ओर उनको ईश्वर-भक्तों में भी स्थान मिल रहा है। हिन्दू धर्म की प्रख्यात धार्मिक पत्रिका 'कल्याण' उनको प्रच्छन्न ईश्वर-भक्त विख्यात करती रही थी।

इसके अतिरिक्त नेहरू जी के दल वाले उनके वचनों, नीतियों, विचारों और कार्यों को जन-जन के सम्मुख आदर्श बनाकर रख रहे हैं। अत: देश और हिन्दू जाति के हित-अहित के विचार से नेहरू जी के जीवन एवं कार्य के विषय में विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण भी रखा जाए, ऐसा विचार है।

हमने लिखा है कि नेहरू जी एक महान् आत्मा थे। वे एक सुन्दर सुदृढ़ शरीर के स्वामी थे। यह तो थे। और बस यहीं तक हमारी अन्य बहुत-से लेखकों से सहमति है। एक मनुष्य न केवल आत्मा है और न ही वह केवल शरीर है। आत्मा और शरीर में कड़ी है, मन और बुद्धि की; हमारे मतानुसार नेहरू जी में ये दोनों अति दुर्बल थीं।

मन और बुद्धि मनुष्य में कर्म की दिशा निश्चय करते हैं। जवाहरलाल नेहरू एक पुण्यकर्मा आत्मा रखते हुए भी, इन दोनों उपकरणों के दुर्बल होने के कारण सदा मिथ्या मार्ग का ही अवलम्बन करते रहे हैं। नेहरू जी के संस्कार दूषित थे और बुद्धि दुर्बल थी। संस्कार घर के वातावरण, शिक्षा-दीक्षा, मित्रों और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथियों की देन होते हैं और बुद्धि मिलती है माता-पिता द्वारा। यह शिक्षा से उन्नत हो सकती है।

यदि बुद्धि दुर्बल और विकृत हो और संस्कार अच्छे हों, तब मनुष्य बुद्धि को सबल और निर्बल बना सकता है। इसके लिए योगदर्शन में उपाय लिखे हैं। श्री जवाहरलाल नेहरू की अवस्था में संस्कार अच्छे संचय नहीं हो सके और बुद्धि को निर्मल किया नहीं जा सका। परिणाम भयानक हुए हैं।

यदि नेहरू जी के नेता बनने के कर्मफल न होते, तब दूषित संस्कारों और हीन बुद्धि से वह हानि नहीं हो सकती थी जो हुई है। पंडित मोतीलाल जैसे ख्यातिप्राप्त वकील के पुत्र होने के कारण, महात्मा गांधी जैसे जनता को सम्मोहित करने वाले का साथी होने के कारण, तथा आकर्षक एवं सुदृढ़ शरीर रखने के कारण और इन सबसे ऊपर भारत की भोली-भाली हिन्दू समाज के कारण यह हीन बुद्धि और विकृत संस्कारों वाला व्यक्ति नेता बन गया और देश की वर्तमान दुरवस्था बनने में कारण हो गया। यदि हिन्दू समाज में सूझ-बूझ होती तो वह इन महापुरुषों का नेतृत्व कभी भी स्वीकार न करता।

मनुष्य शरीर, मन बुद्धि और आत्मा के संयोग को कहते हैं। प्राणी में आत्मा रथी है, मन सारथि है, बुद्धि लगाम है और शेष शरीर रथ है। ऐसा उपनिषद का कहना है। मानव जवाहरलाल का मूल्यांकन तो केवल रथ और रथी को देखकर नहीं लगाया जा सकता। रथी भला व्यक्ति होने पर भी और उसके एक सुन्दर सुदृढ़ रथ पर सवार होने पर भी, रथ ठीक मार्ग पर ही जा रहा है कहना कठिन है। उस मार्ग को भी देखना होगा, जिस पर सारथी लगाम खींचता हुआ रथ को लिये जा रहा है। हमारा मत है कि सारथि और लगाम ठीक काम नहीं कर रहे थे। नेहरू जी का मन और बुद्धि उनके आत्मा और शरीर को मिथ्या मार्ग पर ले जा रहे थे। यही कारण है कि जो विपुल प्रयत्न उनके आत्मा और शरीर से उनके मन और बुद्धि ने करवाया, उसका भयंकर परिणाम ही निकला है और निकल रहा है। यदि देश को उसी मार्ग पर चलना है तो यह घोर नरक की ओर ही जा रहा समझना चाहिए।

एक सुन्दर रथ पर एक भव्य मूर्ति बैठी हुई एक मार्ग पर चल पड़ी थी। मार्ग तट पर खड़े कोटि-कोटि जन को भी उस भव्य पुरुष ने अपने साथ आने का आह्वान किया और जनसाधारण सुन्दर रथ और उसमें बैठे भव्य पुरुष को देख, रथ के साथ-साथ चल पड़ा। उन सबका इस सुन्दर रथ के साथ चल पड़ना यह सिद्ध नहीं करता कि रथ ठीक मार्ग पर चला जा रहा था। वास्तव में जनता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन और बुद्धि भी तो उसी कारखाने में बनी थी, जिसमें रथ पर बैठे भव्य पुरुष का मन और उसकी बुद्धि बनी थी। अतः जनता भी चल पड़ी थी, उधर ही, जिधर रथ जा रहा था।

नेहरू जी के मन और बुद्धि ने कुछ तो किया है। सन् 1947 से 1964 तक भारत में उद्योग-धन्धों में द्रुत गति से प्रगति हुई है। इस पर भी यह निर्विवाद ही है कि देश और जातियाँ उद्योग-धन्धों से ही जीवित नहीं रह सकतीं। केवल ये ही किसी जाति का जीवन हैं, कोई मूर्ख ही ऐसा मानेगा। इन उद्योग-धन्धों के भुलावे में जर्मनी दो बार ठोकर खा चुका है। यदि वह आज जीवित है तो अमेरिका की सहायता पा जाने के ही कारण है। पूर्वी जर्मनी का उदाहरण पाठकों के समक्ष है।

भारत में अंग्रेज़ी काल में भी नए-नए उद्योग चालू किए गए थे। इस पर भी आर्थिक और मानसिक दृष्टि से लोग मुसलमानी काल से अंग्रेज़ी काल में अधिक कष्ट में और दुःखी थे। आज अंग्रेज़ी काल से भी अधिक उद्योग और धन्धे चलाए जा रहे हैं और जन-मन अंग्रेज़ी काल से भी अधिक पतित और कष्ट में है। जनता नैतिक दृष्टि से पतनोन्मुख, मानसिक दृष्टि से हीन और शारीरिक दृष्टि से दुर्बल हो रही है।

यदि यह है तो यह नेहरू काल की नीतियों के कारण ही है। यह इतिहास लिखने वालों और साहित्यकारों की ओर से महापाप हो जाएगा, यदि वे नेहरू जी की नीतियों और कार्यों की प्रशंसा लिखते समय इस अवस्था की विवेचना नहीं करते। 1947 से 1965 तक भारत में प्रत्येक बात का ह्रास हुआ है और इसमें नेहरू जी के विचारों और नीतियों का महान् भाग है।

इस पर भी इस पुस्तक के लिखने की कुछ अधिक आवश्यकता न होती यदि इस समय सत्तारूढ़ दल स्कूलों और कालेजों में निर्मल, सुकुमार और ग्रहणशील छात्र-छात्राओं के मन में नेहरू जी का मिथ्या चित्र बनाने का यत्न न कर रहा होता। इससे तो 1947 से आरम्भ हुआ ह्रास और भी द्रुत गति से चलने लगेगा। यह सम्भव है कि इस प्रकार भारत पहले से भी अधिक भयंकर दासता की शृंखलाओं में बँध जाए।

हमारा यह प्रयत्न है कि यह मिथ्यावाद बन्द किया जाए। हम अपनी शक्ति को जानते हैं। 12,59,756 वर्ग मील के फैलाव वाले और चौवन करोड़ की जनसंख्या वाले देश में छः माशा तोल की कलम चलाने वाले निर्धन और एकाकी लेखक की आवाज़ बहुत क्षीण है। इस पर भी निःस्वार्थ भाव से, केवल लोक-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याण की भावना से प्रेरित होकर यह प्रयास किया जा रहा है। फल ईश्वराधीन है।

:: 2 ::

जन-जन का किसी के पीछे भाग चलने का स्वभाव भारतवासियों का बहुत पुराना है। इस स्वभाव का भी एक इतिहास है। इसका जन्म देश में अद्वैतवाद और वैष्णव मत के साथ ही हुआ था। दोनों मतों में बुद्धि के प्रयोग को वर्जित किया गया है।

महर्षि बादरायण ने तो अद्‌भुत बुद्धि के बल से ब्रह्म का निरूपण किया था, परन्तु अधकचरे विद्वानों ने महर्षि की ब्रह्म की अद्वितीय मीमांसा को पढ़ा, तो अन्य सबकुछ छोड़ ब्रह्म को ही सबकुछ मान बैठे। उनके लिए अन्य सब मिथ्या हो गया। इस विचार के लोगों ने यह समझा कि कर्म मनुष्य को जन्म-मरण में बाँधने वाला है। कर्म का त्याग ही मोक्ष दिला सकता है। और मोक्ष ही मानव जीवन का लक्ष्य है। इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति अकर्मण्यता का दूसरा नाम हो गया। परिणामस्वरूप सभी विद्वान उच्च अभिलाषाओं से युक्त व्यक्ति संसार को छोड़ पहाड़ों की कन्दराओं को चल पड़े। जो नहीं जा सके, वे वैष्णव मतावलम्बी हो गए। जीवन का लक्ष्य, मोक्ष प्राप्ति होने से अकर्मण्यता का स्थानापन्न भक्ति और निष्ठा हो गई। इसमें मन और शरीर की शुद्धि मुख्य हो गई। इस भावना ने अस्पृश्यता को जन्म दिया। अब जन्म से ऊँच और नीच का विचार बना और जाति-पाँति तथा छुआछूत आरम्भ हो गई। इस पर विदेशों में जाना बन्द हुआ। अद्वैतवाद से वैष्णववाद अधिक हानिकर सिद्ध हुआ।

इस पर भी एक बात हुई। दोनों जीवन-पद्धतियों (निवृत्ति मार्ग और प्रवृत्ति मार्ग) में चरित्र की महिमा बनी रही। उक्त पद्धतियों से राजनैतिक दासता तो आई परन्तु चरित्र की श्रेष्ठता अक्षुण्ण रही। मनु महाराज द्वारा प्रतिपादित धर्म दोनों सम्प्रदाय वालों ने मान्य रखा। जहाँ चरित्र की महिमा थी, वहाँ छुआछूत और ऊँच-नीच की महिमा भी बनी रही। इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशीय समुदाय में वृद्धि होती गई। जब भी बल से अथवा किसी विवशता के कारण, खान-पान अथवा अन्य कारण से किसी का विदेशी समुदाय से सम्बन्ध बना तो वह हिन्दू नहीं रहा और पुनः हिन्दू माना नहीं जा सका।

देशीय (हिन्दू) समुदाय में चरित्र तो बना रहा, परन्तु उन चरित्रवानों की संख्या कम होने लगी और विदेशीय समुदाय की संख्या बढ़ने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार का मिथ्यात्व और वैष्णव छुआछूत से समाज पतन की ओर चल पड़ा। इस पर भी चरित्रवान होने से समाज में व्यक्तित्व दृढ़ रहा। इस चरित्र के कारण ही हिन्दुत्व ने इस्लाम को पराजित करके रख दिया। पराजय अभी पूर्ण नहीं हुई थी कि देश में एक अन्य शक्ति आ गई। अंग्रेज़ इस देश में आ गया।

अंग्रेज़ ने विशाल हिन्दू समुदाय को देखा। उसने देखा कि जो इस्लाम मोराको से अटक तक, आँधी के समान सबकुछ तृण समूह की भाँति उड़ता आया था, वही इस्लाम हिन्दुस्तान में कुछ नहीं कर सका। यहाँ यह हिन्दू चरित्र से टकराया तो निस्तेज हो गया। अंग्रेज़ समझ गया कि हिन्दू, विशेष रूप में हिन्दू स्त्री, वर्ग चरित्र की भित्ति पर खड़ा अजेय है। इस कारण उसने इसको चरित्र से भ्रष्ट करने के लिए इसकी शिक्षा, और वह भी अंग्रेज़ी के माध्यम में, बदलने की योजना चला दी।

शिक्षा ही संस्कार बताने और बुद्धि को दिशा देने में सक्षम है। अत: हिन्दू को और हिन्दुस्तान को सदा के लिए अंग्रेज़ों का दास रखने के लिए इसकी शिक्षा को कुशिक्षा में परिणत करने की योजना बनाई गई। यह प्रयास 1831 में आरम्भ किया गया। सरकार ने भारतीय युवकों को, अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम में धर्म-विहीन शिक्षा देने के लिए, स्कूल कालेज खोलने आरम्भ कर दिए। साथ ही इन शिक्षण संस्थाओं से पढ़े-लिखों को अधिक वेतन, सुख-सुविधा और अविज्ञान दिया जाने लगा। ईसाइयों को ऐसे स्कूल कालेज खोलने में सहायता मिलने लगी।

इस शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि जनता का मन और जनता की बुद्धि मलिन होने लगी। इस शिक्षा से प्रभावित पढ़े-लिखे बेईमान दास स्वभाव वाले, देशद्रोही और चरित्रहीन बनने लगे। इस नई शिक्षा से शिक्षित लोग अपने पूर्वजों को मूर्ख, असभ्य और अज्ञ मानने लगे। इससे यह माना जाने लगा कि प्राचीन भारतवासी अन्धविश्वासी, भीरु और विद्या-विहीन थे। वे अज्ञानी, कुसंस्कारों में पले और पूर्वाग्रहों तथा भ्रम में फँसे हुए लोग थे।

ऐसे हिन्दुस्तानी उत्पन्न करना अंग्रेज़ी सरकार का विचारित कार्य था। यह शिक्षा द्वारा किया गया था। यह सर्वविदित है कि भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा को जन्म देने वाला लॉर्ड मैकाले था। लॉर्ड मैकाले एक कट्टर मतान्ध ईसाई था। इसकी बात का दिग्दर्शन इसके अपने ही एक लेख में मिलता है। यह लिखता है—

"The education of the people. conducted on these principles of morality. which are common to all

इस लेख का अर्थ है कि *जनता की शिक्षा ईसाइयों के सामान्य सिद्धान्तों*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

forms of Christianty, is highly valuable as a means of promoting the main object for which Government exists....There is assuredly no country where it is more desirable that Christianity be propagated."[1]

के अनुसार होनी चाहिए। यह शिक्षा उन मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति में मूल्यवान सिद्ध होगी जिनके लिए सरकार बनी है।....निश्चय ही यह देश है, जहाँ ईसाइयत का प्रचार आवश्यक है।

मैकॉले ईसाइयों के एक परिवार का सदस्य था। इसकी माँ एक क्वेकर परिवार की लड़की थी और पिता एक रेवरेण्ड डॉक्टर का लड़का था। लॉर्ड मैकॉले स्वयं ईसाइयों के एक पंथ कैल्विनिज़्म में दीक्षित था। कैल्विनिज़्म के प्रवर्त्तक एक फ्रांसीसी जोन कैल्विन थें। इस पंथ में नियम भंग करने वालों को अति कड़ा दण्ड दिया जाता था। ऐसे नियम भंग करने वाले एक को तो जीवित ही जला भी दिया गया था।

ऐसे थे थॉमैस बैबिंग्टन मैकाले, भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रवर्त्तक। भारत में दी जाने वाली शिक्षा की प्रशंसा वह स्वयं अपनी लेखनी से करते हैं। कलकत्ता से अपने पिता को एक पत्र में यह इस प्रकार लिखते हैं—

Calcutta, October 12, 1836

My dear Father,

Our English Schools are flourishing wonderfully. The effect of this education on the Hindoos is prodigious. No Hindoo who has received our English Education, ever remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy and some embrace Christianity. It is my belief that, if our plans of education are followed up, there will not be a single idolater among the respectable castes in Bengal, thirty years hence, and this will be affected without any efforts to proselytise, without the smallest interference with religious liberty by natural or eration fo knowledge and reflection. I heartily rejoice in the prospect—

Ever Yours most affectionately,
T.B. Macaulay[2]

परमप्रिय पिता जी!

हमारे स्कूल बहुत उत्तमता से उन्नति कर रहे हैं। हिन्दुओं पर इस शिक्षा का प्रभाव अद्भुत हुआ है। अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त कोई भी हिन्दू ऐसा नहीं जो सत्य हृदय से अपने मज़हब पर आरूढ़ रहा हो। कुछ हैं जो नीति के विचार से अपने को हिन्दू कहते हैं और कुछ ईसाई हो रहे हैं। यह मेरा विश्वास है कि यदि हमारी यही शैक्षणिक नीति चलती रही तो यहाँ सम्मानित जातियों में आगामी तीस वर्षों में एक भी ऐसा बंगाली नहीं रह जाएगा, जो मूर्तिपूजक हो। यह उनको बिना ईसाई बनाए हो जाएगा। उनके मज़हब में हस्तक्षेप की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। यह ज्ञानवृद्धि और विचारशीलता बढ़ाने से स्वयमेव हो जाएगा। इस सम्भावना पर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। —आपका प्रिय, टी. बी. मैकॉले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत: जब हम लिखते हैं कि भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा ने यहाँ के लोगों को चरित्रहीन और अपने पूर्वजों को गाली देना सिखाया है तो कुछ अनृत नहीं लिख रहे।

इस पर भी ऐसी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के घरों में वृद्ध पुरुष तथा स्त्री वर्ग थे, जो प्राचीन संस्कारों से युक्त होने के कारण नवीन शिक्षा के प्रभाव को विलीन कर रहे थे। ये वर्ग संस्कारों और आचार से सर्वथा विचलित नहीं हो सके।

समय पाकर वृद्ध चल बसे और स्त्री वर्ग भी अंग्रेज़ी शिक्षा से प्रभावित होने लगा और परिवारों में भारतीयता लोप होने लगी।

अंग्रेज़ी के आने से पहले शिक्षा राज्याधीन कभी नहीं रही थी। शिक्षा दी जाती थी पढ़े-लिखे विद्वानों से। शिक्षा का उद्देश्य होता था, मानव में मन और बुद्धि का विकास। राज्य इन शिक्षकों से राज्य कार्य चलाता था। अंग्रेज़ के इस देश में आने पर शिक्षा का ध्येय मन और बुद्धि का विकास न रहकर, राज्य-कार्य चलाना हो गया। मन और बुद्धि पिछड़ने लगी और पढ़ने वालों का ध्यान सांसारिक उन्नति की ओर लगने लगा। मन और बुद्धि मलीन होने लगी। संस्कार विकृत बनने लगे। परिणामस्वरूप बुद्धि मार्ग-दर्शन के अयोग्य हो गई है।

जहाँ इस शिक्षा ने भारतीयों में चरित्र की महिमा कम की, पढ़े-लिखों में शराब पीने तथा पुरुष स्त्रियों में मिश्रित नाच का रिवाज डाला, वहाँ उनको गोमांस खाना भी सिखाया। मैकॉले ने भारतीय जीवन-मीमांसा की खिल्ली उड़ाने के लिए भारतीय शास्त्रों का विकृत अर्थ करवाना भी आरम्भ कर दिया।

मैकॉले ने ही मैक्समुल्लर को बुलाया। उससे बातचीत की और उसे ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में नौकर करवा कर वेदादि शास्त्रों के विकृत अर्थ कराने आरम्भ कर दिए। मैक्समुल्लर ने वेदों के ऐसे अर्थ किए कि उनसे ईसाई मन प्रसन्न हो गया। इस प्रसन्नता का एक नमूना, मैक्समुल्लर के एक मित्र रैवरेंड ऐडवर्ड बौनवीरि पुसे, डॉक्टर ऑफ डिविनिटी का मैक्समुल्लर को यह लेख है—

तुम्हारा (हिन्दू शास्त्रों का अनुवाद करने का) काम हिन्दुस्तान को ईसाई बनाने के प्रयासों में एक नया युग निर्माण करेगा। इसके लिए ऑक्सफोर्ड तुम्हारा सदा कृतज्ञ रहेगा। तुमको अपने यहाँ स्थान देकर ऑक्सफोर्ड ने एक ऐसे कार्य में सहायता दी है जो भारत को ईसाई बनाने में चिरस्थायी और प्रारम्भिक प्रभाव उत्पन्न करेगा।

Your work will form a new era in the efforts for the conversion of India, and Oxford will have reason to be thankful for that : by giving you a home, it will facilitate a work of such primary and lasting importance for the conversion of India.[3]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैक्समुल्लर के काम की प्रतिक्रिया एक हिन्दू विद्वान के मन में उत्पन्न हुई थी। यह विद्वान थे स्वामी दयानन्द सरस्वती।

स्वामी दयानन्द ने मैक्समुल्लर के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"यह धारणा कि जर्मनी में संस्कृत के बहुत बड़े विद्वान हैं और प्रोफेसर मैक्समुल्लर के बराबर कोई संस्कृत पढ़ा ही नहीं, एक सफेद झूठ है। जहाँ कोई पेड़ नहीं होता, वहाँ एरेण्ड ही पेड़ माना जाता है। यूरोप में संस्कृत का अध्ययन सर्वथा शून्य के समान है। यही कारण है कि वहाँ जर्मन विद्वान और मैक्समुल्लर संस्कृत भाषा के विद्वान माने जाते हैं।"[4]

यह बात मैक्समुल्लर को पता चल गई थी और उसने स्वामी जी से बातचीत करने के स्थान, उनकी निन्दा आरम्भ कर दी।

मैक्समुल्लर के विषय में, एक अन्य हिन्दू विद्वान पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी यह लिखते हैं, "मैक्समुल्लर का वेदों का अनुवाद न केवल दोषपूर्ण है, वरन मिथ्या भी है।"[5]

अंग्रेज़ी शिक्षा का परिणाम ही था कि जब जवाहरलाल जी अपनी अंट-संट बातें करने लगे, तो उनके सुन्दर 'रथ' के पीछे अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग चल पड़े। एक सुन्दर रथी को एक सुन्दर रथ में सवार देख, बिना जाने कि रथ किधर जा रहा है, वे लोग उसके पीछे हो लिये।

:: 3 ::

इस शिक्षा की उपज ही कांग्रेस है। आरम्भ में कांग्रेस अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों की ही सभा थी। इसकी स्थापना के समय यह नियम बना दिया गया था कि इसमें वे लोग ही सम्मिलित हो सकेंगे, जो अंग्रेज़ी बोल और समझ सकते हों।

कांग्रेस की स्थापना देश के अंग्रेज़ी राज्य को हटाने के लिए नहीं हुई थी। इसके दो मुख्य उद्देश्य थे। एक यह कि अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों में, उन्नति की भावना रखने वालों को उन्नति करने का एक मार्ग, उच्च नौकरियाँ पाना, दिखा दिया जाए। उस समय तक हिन्दुस्तान के कुछ लोग शिक्षा के लिए इंग्लैंड और यूरोप के अन्य देशों को जाने लगे थे। वे उन देशों के लोगों को अपने अधिकारों के लिए यत्न करते देखकर आते थे। इन लोगों को अधिकार प्राप्त करने की दिशा दिखाने के लिए कांग्रेस की स्थापना की गई थी। यह दिशा थी सरकारी नौकरियाँ पाने की।

कांग्रेस की स्थापना का एक दूसरा उद्देश्य भी था। इसके द्वारा पढ़े-लिखे लोगों की राजनीतिक भावनाओं के प्रकटीकरण के लिए एक मंच प्रस्तुत करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। कोई बात भीतर ही भीतर सुलगती रहने के स्थान इस मंच पर प्रकट होती रहे, यह उद्देश्य था।

कांग्रेस के प्रवर्तक सर ए.ओ. ह्यूम एक उदार विचार के ईसाई थे और सरकारी अधिकारी रह चुके थे। इनके मन में भी वही भावना कार्य कर रही थी, जो लॉर्ड मैकॉले के मन में थी अर्थात् 'जाहिल' हिन्दुस्तानियों को यूरोपियन आचार-विचार सिखाना। इन्होंने कांग्रेस की स्थापना की थी भारतीय समाज के आचार-विचार में सुधार करने के लिए, परन्तु ये अपने आन्दोलन का नेतृत्व देना चाहते थे अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों और यूरोप से शिक्षा-दीक्षा पाए लोगों के हाथ में।

सर ए.ओ. ह्यूम अपनी योजना बना और सैक्रेटरी ऑफ स्टेट का उस पर आशीर्वाद ले हिन्दुतान में आए तो वायसराय ने उसे स्वीकार नहीं किया। वे चाहते थे कि हिन्दुस्तान में एक राजनीतिक संस्था होनी चाहिए, जिसमें केवल अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे नेता हों। वे इस संस्था के द्वारा हिन्दुस्तान की राजनीति उन लोगों के हाथ में देना चाहते थे, जो यूरोपियनों के रहन-सहन और विचारधारा को पसन्द करते हों।

वायसराय का एक उद्देश्य यह भी था कि अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे और यूरोप की हवा का स्वाद लिये हुए हिन्दुस्तानी अपने विचार किसी मंच पर से कह सकें, जिससे उनके विचारों का पता चलता रहे।

कांग्रेस के निर्माण में यह विशेष ध्यान रखा गया था कि इसमें केवल वे ही सम्मिलित हो सकें, जो अंग्रेज़ी पढ़ना-लिखना और बोलना जानते हैं।

सन् 1886 से लेकर 1907 तक कांग्रेस सर्वथा अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों की और अभारतीय मानस वालों की संस्था रही।

देश में एक अन्य शक्ति का भी प्रादुर्भाव हुआ था। वह शक्ति स्वामी दयानन्द द्वारा उत्पन्न की हुई थी। स्वामी जी संस्कृत और वेदों के ज्ञाता थे। उन्होंने भी देश की दुर्दशा देखी थी, परन्तु अपनी शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव से स्वामी जी को देश और जाति के उद्धार का उपाय वह प्रतीत नहीं हुआ था, जो कांग्रेसी नेताओं को प्रतीत हुआ था।

जहाँ कांग्रेस अंग्रेज़ी के माध्यम में बोलती थी, वहाँ स्वामी दयानन्द की आर्यसमाज हिन्दी में बात करती थी। जहाँ कांग्रेस कुछ लोगों के लिए सरकारी पदवियाँ प्राप्त करने को देशोन्नति मानती थी, वहाँ स्वामी दयानन्द और उनसे स्थापित आर्यसमाज स्वराज्य से ही देशोन्नति मानते थे। जहाँ कांग्रेस यूरोपियन आचार-विचार और वेशभूषा को देश में लाना चाहती थी, वहाँ स्वामी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी और उनकी आर्यसमाज भारतीय आचार-विचार तथा वेशभूषा को प्रोत्साहन देते थे।

दुर्भाग्य से स्वामी दयानन्द का कांग्रेस की स्थापना से पहले ही स्वर्गवास हो गया। इस पर भी वे देश में बीज डाल गए थे और वह बीज श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा बाल गंगाधर तिलक के रूप में प्रकट हुआ। श्यामजी कृष्ण वर्मा शिक्षा के लिए विलायत जाने से पूर्व स्वामी जी से मिले थे और कई विषयों पर उन्होंने विचार-विनिमय किया था। जब स्वामी जी पूना में गए थे, तब तिलक जी पढ़ते थे। स्वामी जी का पूना जाना एक भारी आन्दोलन उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ था। उसका प्रभाव तिलकजी के मन पर हुए बिना नहीं रहा होगा। तिलक जी कट्टर सनातन धर्मावलम्बी थे। इस पर भी वे हिन्दू समाज में भारतीय ढंग पर सुधार के इच्छुक थे। वे स्त्रीशिक्षा और विधवा विवाह के पक्ष में थे। पंजाब में तो सन् 1907 तक पूर्ण राजनीतिक आन्दोलन आर्यसमाज के आश्रय चलता रहा।

1907 में, सूरत कांग्रेस में तिलक समर्थकों और पुरानी प्रवृत्ति वाले फिरोज शाह मेहता इत्यादि में संघर्ष हो गया। पुराने कांग्रेसी, मंच पर से स्वराज्य की माँग करना नहीं चाहते थे। तिलक आदि स्वराज्य प्राप्ति को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे। इतिहास लिखने वाले, फिरोज शाह मेहता इत्यादि को नरम दल का नाम देते हैं और तिलक तथा डाक्टर मूंजे इत्यादि को गरम दल का। हमारा मत है कि यह स्थिति का मिथ्या विश्लेषण है। ये दोनों दल नरम और गरम नहीं थे। वास्तव में एक दल अंग्रेज़ी राज्य के पक्ष में था और दूसरा दल हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों का राज्य चाहता था।

यदि हम इनको नाम दें तो हम फिरोज शाह इत्यादि के दल को अंग्रेज़ी राज्यभक्तों का दल कहेंगे और तिलक आदि के दल को स्वराज्य दल कहेंगे। सूरत में अंग्रेज़ी राज्य के भक्तों की विजय हुई। तिलक आदि की पराजय हुई। यह इस कारण नहीं कि अंग्रेज़ी राज्य के पक्ष वाले बहुमत में थे। वरन यह विजय-पराजय चतुराई-सरलता की थी। इसी पराजय को और भी तीव्र करने के लिए सरकार ने तिलक तथा उनके साथियों को पकड़कर कैद कर दिया।

इन दिनों की कांग्रेस जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में इस प्रकार वर्णन की गई है—

मैं 1912, क्रिसमस के दिनों में बांकीपुर के अधिवेशन में प्रतिनिधि बनकर गया था। यह, बहुत सीमा तक, अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे, धनी-मानी लोगों का समागम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

I visited, as a delegate, the Bankipore Congress during Christmas 1912. It was very much an English-knowing upper class affair, where morning coats and well-pressed trousers were greatly in evidence. Essentially it was a social gathering with no political excitement or tension.[6]

था, जिसमें खूब 'प्रैस' किए हुए कोट-पतलून दिखाई देते थे। वास्तव में यह एक मेल-मुलाकात का अवसर था। इसमें न राजनीति थी, न ही किसी प्रकार का उत्साह।

श्री बाल गंगाधर तिलक ने कांग्रेस में देश के लिए स्वराज्य का भाव भरने का यत्न किया था और उनको धक्के दे-देकर उससे बाहर निकाल दिया गया था।

कांग्रेस के सत्तारूढ़ दल के एक नेता थे श्री गोपाल कृष्ण गोखले। इन्हीं के शिष्य थे मोहन दास कर्मचन्द गांधी, पंडित मोतीलाल जी नेहरू विशेष रूप में और श्री जवाहरलाल नेहरू सामान्य रूप में।

इतना तो मानना पड़ेगा कि जवाहरलाल जी उग्रवादी कभी भी नहीं रहे। न तो वे उद्देश्यों में कभी उग्रवादी थे, न ही उन उद्देश्यों की प्राप्ति में वे वैसे थे। उनकी क्रान्तिकारियों से सदा असहमति रही है। वे जीवनभर सुभाष चन्द्र बोस का विरोध करते रहे। भगत सिंह इत्यादि को वे दूर से भी देखना पसन्द नहीं करते थे। वे डाक्टर सप्रू, सी.वाई. चिन्तामणि और गोखले आदि के प्रशंसक थे।

यह पूछा जा सकता है कि यदि वे उग्रवादी नहीं थे तो फिर वे मेरठ षड्यन्त्र के मुकदमे में किस प्रकार सहायक हो गए? इसी प्रकार वे कम्युनिस्ट कैसे हो गए? इसमें हमारा मत यह है कि कम्युनिस्ट विचारधारा उद्देश्यों में सदियों पिछड़ी हुई है और कम्युनिस्टों के उपाय भी तानाशाहों के काल के हैं। मेरठ केस में फँसे कैदी भी पिछड़े युग की तानाशाही लाने वाले थे। यह पिछड़ापन ही जवाहरलाल जी को पसन्द आता था, इसी कारण वे आगे की ओर जाने के स्थान के बजाय पीछे जाने में ही रुचि लेने लगे थे।

लैनिन और स्टालिन का विधान तो हलाकू खां और तैमूर के काल की राजनीति थी। अर्थात् राज्य ही सर्वोपरि है। यही बात सोवियत विधान में है। सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं आ जाता, यदि राजा एक के स्थान पर जनता का एक-दो प्रतिशत अंश हो जाए। तैमूर लंग भी तानाशाह था और लैनिन तथा स्टालिन भी। शेष बात थी अपने साथी बनाने का प्रयास। यदि जवाहरलाल जी मेरठ केस के कैदियों के सहायक थे और कम्युनिज़्म के अनुयायी थे तो केवल इसलिए कि इसमें उनको तानाशाह बनने के लिए अवसर था। इस पर भी देखने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बात यह है कि पिछड़ने में भी वे क्रान्तिकारी नहीं थे। जो कुछ लैनिन ने दो-तीन वर्ष में किया, वह श्री नेहरू जी सत्तर वर्ष में भी नहीं कर सके। हमारा यह दावा है कि वे विचारों से भी क्रान्तिकारी नहीं थे। विचारों में नरम और कार्य में धीमे। उनके कार्य की नीति सैकड़ों वर्ष पिछड़ी हुई थी।

जवाहरलाल जी के राज्यकाल में जहाँ आसफ अली और देशबन्धु गुप्ता जैसे साधारण कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के बड़े-बड़े बुत राजधानी में लग गए थे, वहाँ सुभाष चन्द्र बोस, खुदी राम बोस, सावरकर और भगतसिंह इत्यादि के छोटे-छोटे स्मृति चिह्न भी स्थापित नहीं हो सके।

नेहरू जी राष्ट्रवादी भी नहीं थे। वे आचार-विचार और भावनाओं में सर्वथा विदेशीय थे। इन सब विषयों पर हम प्रमाण सहित मुख्य विवरण में लिखेंगे।

वे उस शिक्षा की उपज थे, जिसने हिन्दुस्तान में हिन्दू विरोधी, देशद्रोही और अनीश्वरवादी उत्पन्न किए हैं। गांधी और तिलक के विपरीत, इनके घर का वातावरण सर्वथा अभारतीय, धर्म-विहीन, अहंकारयुक्त और सर्वोच्च में रत था।

:: 4 ::

अत: गांधी जी नेहरू जी के संरक्षक। इस कारण नेहरू जी को समझने के लिए गांधी जी के विषय में जानकारी दूर तक सहायक सिद्ध होगी।

गांधी जी का बाल्यकाल भी अंग्रेज़ी ढंग की शिक्षा ग्रहण करने में व्यतीत हुआ था। धर्म तथा शास्त्र का इनको भी ज्ञान नहीं था। केवल घर का वातावरण था, जिससे इनके हिन्दू संस्कार बने थे। गांधी जी की माताजी हिन्दू धर्म में अगाध श्रद्धा रखती थीं। वे स्वयं धर्मनिष्ठ थीं। जो कुछ भी हिन्दुत्व गांधी जी में था, उसका बीज उनके इन संस्कारों के कारण ही था।

एक बार गांधी जी ने मांस खाया। वे स्वयं लिखते हैं कि रात भर उनके पेट में बकरा में-में करता सुनाई देता रहा। शिक्षा के लिए विलायत जाने से पूर्व उनकी माता ने उनसे वचन ले लिया कि वे पर-स्त्री-गमन नहीं करेगे, न ही मद्य का सेवन करेंगे।

इस पर भी गांधी जी एक साधारण वैष्णव से अधिक धर्म के विषय में नहीं जानते थे। वैष्णव मत के भी गूढ़ तत्वों का उन्हें ज्ञान नहीं था।

गांधी जी के विषय में, उनके जीवन चरित में श्री एच.एस. पोलक लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आयु के निर्माणात्मक वर्षों में भी ऐसे अवसर आते थे जब अनीश्वरवादिता का उभार होता था, तथा मन में धर्म पर संशय उत्पन्न होता रहता था। इस पर भी वे धार्मिक सहनशीलता का स्वभाव बना चुके थे। वे अपने माता-पिता के साथ शिव और विष्णु के मंदिरों में जाते थे, परन्तु उनको किसी देवी-देवता के लिए आकर्षण नहीं था। वे कभी भी परम्परागत विचार से हिन्दू नहीं थे।

Even in his formative years, though he had moments of agnosticism and religious questioning he had obtained a grounding in religious tolerence. With his parents he visited the temples of the two main cults of Shiva and Vishnu, but he does not appear ever to have been attracted to temple-worship, nor was he ever in fact an orthodox Hindu.[7]

गीता तो गांधी जी ने विलायत में जाकर और वह भी अंग्रेज़ी में पढ़ी थी। लंदन की एक सभा में किसी अंग्रेज़ ने इनसे पूछ लिया कि गीता में क्या लिखा है? गांधी जी उत्तर नहीं दे सके। गीता में लिखी आत्मा की अमरता की बात तो हिन्दुओं के बच्चों को भी मालूम है। गांधी जी ने उसी दिन गीता खरीदी और पढ़नी आरम्भ कर दी। गांधी जी पर जैन मत का पर्याप्त प्रभाव था। उनके पिता जी के पास बहुत-से जैन गुरु आते रहते थे।

गांधी जी में दो विशेष गुण थे। एक सत्य भाषण और दूसरे अहिंसा। ये दो बातें बहुत बड़ी बातें होते हुए भी हिन्दू जीवन की पूर्ण मीमांसा नहीं हैं।

कुछ भी हो, यह अधूरी मीमांसा भी जवाहरलाल जी को हिन्दू जीवन की ओर नहीं खींच सकी थी। कुछ बातें गांधी जी और जवाहरलाल जी में साझी थीं और उनके कारण जब वे एक मंच पर आए, तो पृथक् नहीं हो सके।

गांधी जी गोखले दल की उपज थे और अन्त तक वे उनके जीवन को आदर्श मान अपना जीवन चलाते रहे। प्रायः लोग कहते हैं कि सन् 1919 की घटनाओं ने गांधी जी को उग्र बना दिया था। वास्तव में ऐसा था नहीं। गांधी जी में उग्रता कभी नहीं आई। इनका उद्देश्य गोखले जी के उद्देश्य से भिन्न हो गया था। गोखले इत्यादि अंग्रेज़ी सरकार के भक्त थे और अंग्रेज़ी आचार-विचार के प्रशंसक थे, वे अंग्रेज़ी राजनीतिक संस्थानों (Political institutions) को अनुकरणीय मानते थे। गांधी जी ने उनकी केवल एक बात छोड़ दी थी। वह थी सरकार-भक्ति। नेहरू जी भी ऐसे ही थे। दोनों ब्रिटिश आचार-विचार और संसदीय प्रजातन्त्रात्मक पद्धति और उनकी नीति के प्रशंसक थे। अतः गांधी जी और नेहरू जी दोनों अंग्रेज़ भक्त माने जा सकते हैं। दोनों अंग्रेज़ की ईमानदारी पर विश्वास रखते थे। दोनों नरम दल की प्रवृत्ति रखते थे। नरम और गरम प्रवृत्ति का सम्बन्ध कार्य से है। इनका सम्बन्ध उद्देश्य और सिद्धान्तों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-G
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। एक सरकार का भक्त उच्च पदवी के न मिलने पर भी अपने अफसर की हत्या करने वाला हो सकता है। अर्थात् एक सरकार का भक्त भी उग्र (गरम) आचरण रख सकता है। इसी प्रकार पूर्ण स्वराज्य चाहने वाला भी वकीलों की भाँति बहस कर इसके प्राप्त करने की आशा कर सकता है।

अभिप्राय यह कि नरम और गरम प्रवृत्ति कार्य-पद्धति से सम्बन्ध रखती है। अत: गांधी और जवाहरलाल नरम दल की प्रवृत्ति ही रखते थे।

गांधी जी के उपाय भी नरम दल वालों जैसे ही थे। नरम से नरम प्रवृत्ति वाला व्यक्ति, थोड़ा साहस रखने से, गांधी जी के साथ हो सकता था।

तिलक जी उद्देश्यों में आगे थे। वे न तो अंग्रेज़ी शासन चाहते थे, न ही उनका आचार-विचार। वे भारतीय परम्पराओं और मान्यताओं से यहाँ की समाज का निर्माण करना चाहते थे। इससे वे उच्च (advanced) विचार के कहे जा सकते हैं। वे अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किसी भी सीमा तक कार्य करने को पाप नहीं मानते थे। उनका सिद्धान्त भगवान कृष्ण के इस कथन के अनुकूल था—

ते चेदभिवेक्ष्यन्तो नाभ्युपैष्यन्ति मे वचः
कुरवो युद्धमेवात्र घोरं कर्म भविष्यति।[8]

Central Library
167953
Gurukula Kangri (Deemed University) Haridwar

अर्थात्—यदि कौरवों ने मेरी बात नहीं मानी और युद्ध का ही आग्रह दिखाया अर्थात् संधि का प्रस्ताव ठुकरा दिया तो युद्ध जैसी भयंकर बात करनी ही होगी। तिलक जी ऐसा ही मानते थे। इससे हम मानते हैं कि वे उद्देश्यों से उन्नत और कार्य पद्धति में उग्र थे।

गांधी जी इस सीमा तक जाने से डरते थे। इस सीमा तक जाने वाले की वे निन्दा करते थे। यही नेहरू जी करते थे। अत: ये दोनों उग्रवादी तो थे नहीं। इस कारण नरम दल के ही कहे जा सकते हैं। ये अंग्रेज़ियत लाने वाले थे। अत: उद्देश्य से भी हीन ही थे।

गांधी जी का सत्याग्रह तो बाल हठ से कुछ भी अधिक नहीं था और बाल हठ भी ऐसा, जो जबरदस्त के सामने नरम पड़ जाए।

देश को स्वराज्य मिलने में दो बाधाएँ थीं। एक थी इंग्लैंड का टोरी दल और दूसरे भारत के मुसलमान। गांधी जी ने अपने दोनों आन्दोलनों के समय दोनों बाधकों के सामने देश के हितों को निछावर करने की रुचि दिखाई है। कृष्ण जैसी 'अन्तिम भयंकर' बात के लिए उनका मस्तिष्क कभी तैयार नहीं हुआ। उसकी तैयारी को ही वे पाप मानते थे। वे सदा झुक जाने में ही कल्याण मानते थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी इस प्रवृत्ति का परिणाम ही था कि नेहरू जी भारत के नेता बन सके। पाकिस्तान भी इसी प्रवृत्ति का परिणाम था और साथ ही साढ़े चार करोड़ मुसलमानों का भारत में रह जाना भी इसी का कारण था। वस्तुतः गांधी जी और जवाहरलाल जी नरम प्रवृत्ति के नेता थे। जवाहरलाल जी अपने को उग्र दल का लिखते हैं। यह बात घटनाओं से सिद्ध नहीं होती।

1916 में नरम (सरकार-भक्त) दल दुर्बल पड़ने लगा। स्वराज्य दल (तिलक आदि का) प्रबल होने लगा था। तिलक आदि कांग्रेस पर अधिकार पा जाने वाले थे। इस कारण सरकार-भक्तों ने मुसलमानों से समझौता किया और उनको अपने साथ ले लिया। गांधी जी को भी अफ्रीका से बुलाया गया। इस पर भी स्वराज्य की माँग कांग्रेस को स्वीकार करनी पड़ी। यह तिलक आदि की विजय थी, इस पर भी उनको इस विजय का दाम देना पड़ा। मुसलमानों को विशेषाधिकार देने पड़े।

सरकार-भक्तों ने अपने को बचा लिया। अपना प्रतिष्ठित स्थान कांग्रेस में सुरक्षित रखा। साथ ही औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग से अपनी सरकार-भक्ति का नाम रख लिया। कांग्रेस में मुसलमानों के आ जाने से अंग्रेज़ी सरकार के हाथ सुदृढ़ हो गए। 1916 के समझौते से तिलक दल दुर्बल पड़ने लगा और गोखले भक्त गांधी कांग्रेस पर छा जाने लगे।

गांधी जी का सत्याग्रह (बाल हठ) तो सर्वथा असफल रहा। केवल 1930 में सामयिक और सीमित सफलता मिली थी। जो सफलता गांधी जी को अफ्रीका, चम्पारण और बारदोली में मिली थी, वह केवल आर्थिक विषयों तक सीमित थी। अफ्रीका में तीन पौंड कर का प्रश्न था और हिन्दुस्तानी तरीके से विवाह की राजकीय स्वीकृति का प्रश्न था। चम्पारण में भी भूमि-कर का ही प्रश्न था। ऐसे झगड़ों में कोई भी, सरकार अथवा मालिक, जब न मानने से होने वाले लाभ की तुलना में, मान जाने से होने वाली हानि अधिक समझता है तो तुरन्त मान जाता है। यह तो व्यावसायिक बात होती है, परन्तु राजनीति में इस प्रकार की बात कभी स्वीकार नहीं हुई। 1930 में भी सरकार मानी थी नमक-कर की बात। परन्तु वह इस कारण कि नमक-कर भंग आन्दोलन को दबाने में जो खर्च सरकार का हो रहा था, कर उससे बहुत कम था। गांधी-इरविन-पैक्ट में न तो कोई राजनीतिक बात कही गई, ना ही कुछ देने के लिए माना गया। जो कुछ आन्दोलन से पहले कहा जा रहा था, वही आन्दोलन के उपरान्त लिख दिया गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ अधिकार हिन्दुस्तानियों को कभी भी मिलते रहे हैं, वे गांधी जी के सत्याग्रहों से अतिरिक्त कारणों से हैं। सन् 1905 से 1909 तक क्रान्तिकारी आन्दोलन उग्र हो रहा था और परिणाम 1909 के सुधार थे। 1911 से 1916 तक पुनः क्रान्तिकारी आन्दोलन उग्र हुआ* तो 1919 के सुधार मिल गए। 1921 में प्रथम सत्याग्रह हुआ और उसका कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। जो कुछ 1935 में मिला, वह 1925 से 1931 तक के क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण मिला। 1942 में तोड़-फोड़ जिससे गांधी जी का कुछ भी सम्बन्ध नहीं था, 1942-43 में आज़ाद हिन्द सेना का संगठन और आक्रमण, 1946 में आज़ाद हिन्द सेना के विषय में सेनाधिकारियों से गुप्त मत संग्रह और नौसेना का विद्रोह, ये सभी बातें स्वराज्य प्राप्ति में कारण हुई थीं। इनके अतिरिक्त स्वराज्य प्राप्ति में बहुत सीमा तक अमेरिका का अंग्रेज़ों पर दबाव, स्टालिन का युद्ध में विजयी होना भी कारण हो गए।

गांधी जी और नेहरू जी में समानता कुछ तो हमने ऊपर बताई है। कुछ और भी बातें हैं, जिनका उल्लेख हम पुस्तक के मुख्य प्रकरणों में करेंगे।

यह पुस्तक न तो गांधी जी तथा नेहरू जी के जीवन चरित्र हैं और न ही यह हिन्दुस्तान का इतिहास है। इस पुस्तक का विषय है गांधी तथा नेहरू जी की विचारधारा और उनके कार्यों की विवेचना। इस विवेचना को स्पष्ट करने के लिए ही उस काल की, और नेहरू तथा गांधी जी के जीवन की कुछ घटनाओं का उल्लेख आया है।

एक बात यहाँ और लिख देनी ठीक प्रतीत होती है। अंग्रेज़ी सरकार द्वारा चलाई शिक्षा अभी भी देश में चल रही है। परिणाम यह हो रहा है कि अपने देश और देश के नेताओं के विषय में हम हिन्दुस्तानी अपनी आँखों और कानों से अधिक यूरोपियन एवं विदेशीय लेखकों के लेखों पर विश्वास रखते हैं। श्री जवाहरलाल की प्रशंसा विदेशों में होती देख, हम उनको प्रशंसनीय मानने लगे हैं। देश की अवस्था यह है कि यहाँ चोरी, डाके, ज़िनाकारी, बेईमानी, दगा, फरेब, रिश्वत, कुन्बापरवरी व्यापक हो रही है। देश महान ऋण के नीचे दब रहा है। देश की रक्षा करने में असमर्थता, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में नित्य अपमानित होना और पड़ोसियों के आक्रमणों पर दुर्बलता, प्रत्यक्ष दिखाई देने लगी है। इस पर भी अंग्रेज़ और अमेरिकियों से जवाहरलाल जी और गांधी जी की प्रशंसा सुन हम

---

* देखें रॉलेट कमेटी की रिपोर्ट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश की यह अवस्था करने वाले पर मुग्ध होने लगते हैं।

यह मानसिक दासता के लक्षण ही हैं। हम स्वयं स्वतन्त्र रूप में विचार करने में सर्वथा अशक्त हैं और विदेशीय पर्यटकों के अज्ञानतापूर्ण कथनों से प्रभावित हो जाते हैं।

वास्तव में विदेशी लेखक न तो इस देश का इतिहास जानते हैं न ही उनको देश के हित-अहित का विचार है। उनको तो वह व्यक्ति पसन्द रहता है जो उनके आचार-विचार और वेषभूषा को पसन्द करता है। जवाहरलाल जी ने अपने राज्य-काल में भारत को जितना यूरोप और रूस बनाने का यत्न किया है उतना अंग्रेज़ों ने भी नहीं किया। इस कारण विदेशियों द्वारा जवाहरलाल जी की प्रशंसा समझ में आने वाली बात है। परन्तु भारतीयों को तो देश की आवश्यकताओं और परिस्थितियों पर विचार कर ही जवाहरलाल जी के काम का मूल्यांकन करना होगा। नेहरू राज के बीस वर्षों में भारत क्या से क्या हो गया, बिना इसको जाने इस काल के शासक की नीतियों का मूल्य कैसे लगाया जा सकता है ?

भारत की वर्तमान दशा के विषय में और उसमें उन्नति एवं ह्रास की दिशा के सम्बन्ध में हम पुस्तक के मुख्यांश में लिखेंगे। यहाँ हम इतना बता देना चाहते हैं कि गांधी और जवाहरलाल जी ने देश का नेतृत्व लिया भारत के राष्ट्रीय जीवन में, पीछे के द्वार से घुस कर।

अंग्रेज़ी शिक्षा के कारण देश में भारी संख्या में शिक्षित लोग, पूर्ण रूप से नहीं तो एक बड़े अंश में बिना धर्म परिवर्तन के, अहिन्दू हो चुके थे। इन लोगों को हिन्दुत्व की शिक्षा से वंचित रखकर इनकी मान-प्रतिष्ठा बढ़ाई जा चुकी थी। इन अर्ध-हिन्दू, अर्ध-राष्ट्रीय और प्रायः अनैतिक व्यवहार रखने वालों की प्रतिष्ठा एक तो अंग्रेज़ी सरकार ने, दूसरे कांग्रेस दल के लोगों ने विशेष रूप में कांग्रेस के नरम दल के लोगों ने बना रखी थी। सरकारी संरक्षण प्राप्त होने से अंग्रेज़ी भाषा में समाचार-पत्र खूब चलते थे। इन समाचार-पत्रों और अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों के कंधों पर चढ़ कर गांधी जी और पीछे जवाहरलाल जी नेता बने।

देश के अंग्रेज़ी के समाचार-पत्रों ने इन नेताओं का नाम उभारा और फिर कांग्रेस ने स्वराज्य फंड के एक करोड़ रुपये के बल से गांधीवादियों का नाम जनता के सब स्तरों तक पहुँचा दिया। गांधी जी का यह घोष कि वे एक वर्ष में स्वराज्य ले देंगे, एक ओर तो एक करोड़ रुपया एकत्रित करने में सहायक हुआ, दूसरी ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तविक राष्ट्रवादियों और सही दिमाग के नेताओं को इसने पछाड़ कर रख दिया। वे लोग इतना बड़ा झूठा दावा कि एक वर्ष में स्वराज्य ले देंगे, नहीं कर सके।

जनसाधारण तो भव्य रथों पर चढ़े इन विशिष्ट आत्माओं के संकेत पर उधर ही चल पड़ा है, जिधर इनके दूषित संस्कारों में पले मन (सारथि) और बुद्धि (लगाम) इन रथों को ले जा रहे थे।

ज्योंहि जवाहरलाल जी प्रधान मन्त्री बने, इनका रथ तीव्र गति से अंग्रेज़ी आचार-विचार की ओर भागने लगा और जनसाधारण इनके साथ था।

यह पुस्तक जनसाधारण को उसकी भूल प्रकट करने के लिए लिखी गई है। पुस्तक की ख्याति की चिन्ता नहीं की गई।

राजनीति में यह कहना अति कठिन है कि यदि यह न होता तो क्या होता? इतिहास तो इतना ही बता सकता है कि अमुक कार्य कैसे हुआ और फिर उसका क्या परिणाम हुआ? यदि कोई घटना कृत्रिम कारणों से अस्वाभाविक रूप में हो जाए तो उसका स्वाभाविक परिणाम होना असम्भव है। इससे उलट, यह भी इतिहास बताता है कि जब अनिश्चित परिणाम निकलते दिखाई दें तो निःसंदेह कार्य ठीक ढंग से नहीं हुआ। संसार में अकारण कुछ नहीं होता। बुद्धिमान लोग इतिहास पढ़ कर उससे यही सबक लेते हैं कि अमुक परिस्थिति में अमुक कार्य क्यों शुभ अथवा अशुभ परिणाम उत्पन्न कर सका है। बिना इतिहास का ठीक-ठीक अध्ययन किए जो लोग राजनीति में हस्तक्षेप करते हैं, वे उसे ठीक ढंग पर चला नहीं सकते।

महात्मा गांधी और श्री जवाहरलाल इतिहास, विशेष रूप में हिन्दुस्तान के इतिहास, से सर्वथा अनभिज्ञ थे और ये दोनों नेता बनने में सफल हो गए। परिणाम हमारे समक्ष है।

आज स्वराज्य के बीस वर्ष व्यतीत होते-होते देश में असंख्य समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं। यह भी स्पष्ट है कि समस्याएँ राजनीतिक ही नहीं, वरन आर्थिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक, भाषा सम्बन्धी, शान्ति-व्यवस्था सम्बन्धी, नैतिक, चरित्र सम्बन्धी, विदेश नीति सम्बन्धी, अभिप्राय यह कि उन सब विषयों के सम्बन्ध में हैं, जिन-जिन में सरकार ने अपना हाथ डाला है।

यदि संकेत के लिए मोटी-मोटी राजनीतिक समस्याओं के नाम लिखें, तो हमारा कथन कुछ स्पष्ट हो सकेगा।

1. कश्मीर में मुसलमानों की समस्या; 2. पंजाब में अकालियों की समस्या; 3. हरियाणा में जाटों और ब्राह्मणों की समस्या; 4. दिल्ली में विदेशियों के षड्यंत्र;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5. राजस्थान में स्वार्थियों का डेरा; 6. गुजरात में कच्छ की समस्या; 7. महाराष्ट्र में शिव सेना; 8. तमिलनाडु में अंग्रेज़ी वालों का षड्यंत्र; 9. मैसूर और केरल में ईसाइयों की समस्या; 10. उड़ीसा और नागालैंड में ईसाई पादरियों का षड्यंत्र, 11. बंगाल और असम में चीन का जाल; 12. बिहार और उत्तर प्रदेश में असन्तुष्ट कांग्रेसियों की समस्या; 13. पूर्वी और पश्चिमी सीमा पर पाकिस्तान का भय और देशभर में रूसी और चीनी पंचमार्गियों के अड्डे। समस्याएँ तो इतनी हैं कि उनकी गणना सुगम नहीं। परिणाम यह है कि भारत सरकार डाँवाँडोल है। पाकिस्तान लड़ाई के लिए लंगोटा कस रहा है। अमेरिका और इंग्लैंड भारत को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। भारत विश्व में किसी का भी मित्र नहीं और विश्व में कोई इसका मित्र नहीं।

देश में व्यापार ठप्प है, महँगाई जनता की जेबें खाली कर चुकी है और खाने-पीने का स्तर गिर रहा है। अस्पतालों में चिकित्सक नहीं और चिकित्सकों के पास ओषधियाँ नहीं। एक ओर कपड़ा महँगा हो रहा है और दूसरी ओर बिक्री न होने से कपड़े के कारखाने बन्द हो रहे हैं।

हमारा यह कहना है कि यह सबकुछ हुआ है एक दुर्बल बुद्धि रखने वाले, दूषित संस्कारों में पले और इतिहास तथा मनोविज्ञान से अनभिज्ञ, परन्तु अपने को महा-विद्वान मानने वाले प्रधान मन्त्री के इस देश में सत्रह वर्ष तक तानाशाही चला सकने के कारण।

यह तानाशाही इतनी प्रबल थी कि उन सत्रह वर्षों में कोई भी इस तानाशाह की प्रशंसा के अतिरिक्त चर्चा नहीं कर सकता था। ऐसे लोग थे जो श्री नेहरू जी की नीतियों के दुष्परिणामों की सम्भावना प्रकट करते थे, परन्तु उनके प्रशंसकों के कलरव में उनकी कोई सुनता ही नहीं था।

लेखक ने एक बार नई दिल्ली में, एक व्याख्यान देते समय श्री नेहरू जी के कुछ-एक कार्यों की व्याख्या करते समय यह कह दिया कि उन्होंने देश के साथ द्रोह किया है। इस पर अपने ही दल वाले लेखक की निन्दा करने लगे थे। कदाचित् दल के नेताओं को भय था कि जनता नेहरू जी की चर्चा सुनकर दल का ही बहिष्कार न कर दे। इतनी मानसिक विकृति थी भारत की जनता की।

भारत की इस मानसिक विकृति का कारण भी वही था, जो देश के नेताओं की विकृति में कारण था अर्थात् देश में पिछले लगभग एक सौ वर्षों से फैलाई जाने वाली दूषित शिक्षा। इस दूषित शिक्षा ने प्रायः सब पढ़ी-लिखी जनता के मस्तिष्क में यह घुसेड़ दिया है कि—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1. भारत में अशोक से पहले सब जाहिल रहते थे। अशोक भारत का सबसे महान् सम्राट हुआ है।
2. आर्य, हिन्दुओं के पूर्वज देश के बाहर से आए और वे आक्रमणकारी थे।
3. यहाँ के आदि निवासी भील, गोंड, नाग, द्रविड़ इत्यादि लोग हैं, जिनको आर्यों ने उत्पीड़ित किया था।
4. हिन्दू एक अति घिनौना मज़हब है। इससे इस्लाम और ईसाइयत श्रेष्ठ हैं।
5. भारतवर्ष का कोई इतिहास नहीं है। यहाँ के लोगों को इतिहास लिखना नहीं आता था।
6. हिन्दुस्तान एक महाद्वीप है, जिसमें अनेक देश हैं और अनेक जातियाँ रहती हैं। यहाँ के लोगों के अनेक मज़हब हैं और अनेक संस्कृतियाँ हैं।
7. भारतवासियों को जो भी बुद्धि प्राप्त हुई, है, वह देश के बाहर से, अधिकतर अंग्रेज़ जाति और अंग्रेज़ी साहित्य से प्राप्त हुई है।
8. हिन्दुओं में सबसे बुरे लोग मराठा, ब्राह्मण और आर्यसमाजी हैं।
9. इस्लाम एक उदार जीवन-मीमांसा है। सभ्यता के विचार से ईसाई मुसलमानों से अच्छे हैं।
10. वेदों में किस्से-कहानियाँ लिखी हैं। उनमें अनेक देवी-देवताओं की पूजा लिखी है और वेदों को मानने से ही हिन्दुओं का पतन हुआ है।
11. संस्कृत एक पिछड़ी हुई भाषा है। इसमें पूजा-पाठ और मिथ्या गल्पों का साहित्य ही है।

इसी प्रकार की भ्रान्तियाँ थीं जो मैकाले साहब की कृपा से और तत्कालीन पढ़े-लिखे हिन्दू नेताओं के विपुल प्रयास से इस देश में प्रचलित की गई थीं। परिणाम हुआ स्कूल-कालेजों में पढ़े-लिखे लोगों में देश और जाति से विद्रोह की भावना, इन देश के साथ विद्रोह की भावना रखने वालों की मान-प्रतिष्ठा बनाई अंग्रेज़ी सरकार ने और इन्होंने जनता पर थोप दिया गांधी और नेहरू जी को।

यह एक मिथ्या बात है कि इन अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों के अतिरिक्त सब मूर्ख और अनभिज्ञ हैं। यह भी मिथ्या लाञ्छन है कि शेष हिन्दू लोग देशभक्ति और जातीय-प्रेम से रहित हैं। ऐसा था नहीं और न है। उनमें ऐसे लोग थे, जो बुद्धि, कार्य-पटुता और देश-प्रेम में इतने ऊँचे थे कि उनके सम्मुख गांधी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाहरलाल प्रभृति बौने प्रतीत होते हैं। राज्य अंग्रेज़ के हाथ में होने से वे लोग अपमानित और हेय माने जाते थे।

अंग्रेज़ी सरकार में एक अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे अध्यापक का वेतन पचहत्तर से डेढ़ सौ रुपये महीना होता था और उसी योग्यता के संस्कृत अध्यापक को पचीस-तीस रुपये मासिक मिलते थे। अच्छी अंग्रेज़ी बोलने वाले से वायसराय, गवर्नर और अंग्रेज़ी सरकार के अधिकारी हाथ मिलाते थे और अंग्रेज़ी शिक्षा की आलोचना करने वालों के पीछे खुफिया पुलिस लगा दी जाती थी। स्वामी दयानन्द तो एक इतिहास का विषय बन चुके हैं। ये महापुरुष प्रथम हिन्दुस्तानी थे जिन्होंने अंग्रेज़ी शिक्षा और ईसाइयों के हिन्दू शास्त्रों के दूषित अनुवाद करने के षड्यन्त्र का पर्दाफाश किया था और यह कहा जाता है कि सरकार ने ही इनको विष देकर मरवा डाला था।

देश से प्रेम करने वाले श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह तथा अन्य अनेकों, देश में आ नहीं सकते थे। यहाँ मान था गोपाल कृष्ण गोखले, एम.जी. रानाडे, दादा भाई नौरोजी का तथा अंग्रेज़ी आचार-विचार के भक्तों का।

इस सब कथन का अभिप्राय यह है कि गांधी तथा जवाहरलाल की प्रतिष्ठा बनी थी इन अंग्रेजी पढ़े-लिखों में और इन्होंने इनको थोप दिया भारत की जनता पर।

हिन्दुस्तान के, 1919 से लेकर 1964 तक बने रहे इन नेताओं के विपरीत, बिना किसी प्रकार के विद्वेष के, जनता को वैसी ही भूल में पुनः पड़ जाने से बचाने के लिए, यह पुस्तक लिखी जा रही है। कैसे बचा जा सकता है, यह मूल पुस्तक में लिखने का यत्न किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम खण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

जवाहरलाल नेहरू की छाया

'Child is the father of man' अंग्रेज़ी की एक कहावत है। इसका अर्थ है कि मनुष्य विचारों और संस्कारों तथा कर्मों से अपने बाल्यकाल की ही उपज है। जवाहरलाल जी के विषय में यह बात सर्वथा सत्य सिद्ध हुई है।

मान्यता है कि कश्मीर के संस्कृत भाषा के एक विद्वान राजकौल सन् 1716 ईसवी के लगभग अपनी जन्म-भूमि को छोड़ दिल्ली चले आए थे। तत्कालीन मुग़ल बादशाह फर्रुखसीयर के वे दरबारी बन गए। यह कहा जाता है कि जब फर्रुखसीयर कश्मीर भ्रमण के लिए गया हुआ था, वहाँ वह राजकौल की विद्वत्ता से प्रभावित हो उसको दिल्ली आने का निमन्त्रण दे आया था। दिल्ली में राजकौल को एक भूमि और एक मकान नहर के किनारे मिला। इस कारण राजकौल 'नहर वाला' तथा कालान्तर में 'नेहरू' प्रसिद्ध हो गया।

राजकौल के परिवार के लोग अन्त तक मुग़लों की नौकरी में रहे। राजकौल नेहरू के परिवार में एक गंगाधर नेहरू सन् 1857 में दिल्ली के कोतवाल थे। इस स्वतन्त्रता संग्राम में नेहरू परिवार दिल्ली छोड़कर भाग गया था। इसमें कारण यह प्रतीत होता है कि गंगाधर के पिता लक्ष्मी नारायण नेहरू दिल्ली दरबार में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के वकील थे। जब कम्पनी के विरोध में बग़ावत हुई, तो नेहरू परिवार अपना सबकुछ छोड़कर आगरा चला गया।

गंगाधर नेहरू जवाहरलाल नेहरू के बाबा थे। जवाहरलाल के पिता मोतीलाल नेहरू का जन्म सन् 1861 में आगरा में हुआ। उस समय गंगाधर नेहरू का देहान्त हो चुका था। मोतीलाल जी का पालन-पोषण उनके बड़े भाई ने किया था। मोतीलाल के बड़े भाई वंशीधर उस समय अंग्रेज़ी सरकार की अदालत में नौकरी करते थे। मोतीलाल अपने ताऊ नन्दलाल के साथ रहे। वे राजस्थान में एक रियासत खेतरी के दीवान थे और पीछे वे आगरा में आकर वकालत करने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाईकोर्ट पहले आगरा में बना था, परन्तु पीछे इलाहाबाद चला गया। इस पर नन्दलाल भी अपना परिवार लेकर इलाहाबाद चले गए। मोतीलाल जी उनके साथ थे।

मोतीलाल जी फ़ारसी और कुछ-कुछ अरबी पढ़े थे। अपने पिता के विषय में जवाहरलाल जी लिखते हैं—

But in spite of this early precocity his school and college career was chiefly notable for his numerous pranks and escapades. He was very far from being a model pupil and took more interest in games and novel adventures than in study. He was looked upon as one of the leaders of the rowdy element in the college.[9]

अकाल प्रौढ़ता (समय से पूर्व परिपक्व हो जाने) पर भी उनका स्कूल और कालेज का जीवन शरारतों और प्रमत्त कामों के लिए विख्यात था। वे एक आदर्श विद्यार्थी नहीं थे। उनकी रुचि पढ़ने के स्थान पर खेल-कूद और नवीन प्रकार के साहसी कामों में अधिक थी। वे शरारतियों के सरदार समझे जाते थे।

बी.ए. की परीक्षा में मोतीलाल प्रथम परीक्षा-पत्र के लिखने के पश्चात् निराश हो, शेष परीक्षा देने ही नहीं गए। परीक्षा आगरा में हो रही थी और वे ताजमहल की सैर करते रहे।

पीछे उनके मन में स्थिर जीवन के लिए लालसा उठी तो हाईकोर्ट से वकालत की परीक्षा उत्तीर्ण कर वकील बन गए।

इनकी वकालत खूब चली और इन्होंने खूब धन कमाया और जीवन का रस लेने में खूब व्यय किया। ये थे जवाहरलाल जी के पिता मोतीलाल नेहरू।

:: 2 ::

जवाहरलाल का जन्म मार्गशीर्ष बदी 7 सम्वत् 1946 को इलाहाबाद में हुआ। अंग्रेज़ी सम्वत् के अनुसार नवम्बर 14, सन् 1889। जवाहरलाल नेहरू अपने बाल्यकाल के विषय में लिखते हैं—My childhood was thus sheltered and uneventful-one. (मेरा बाल्यकाल सुरक्षित और घटनारहित रहा है।)

वास्तव में जवाहरलाल जी को जो कुछ इस काल में मिला, वह ही उनके जीवन के अन्तकाल तक उनके साथ रहा था।

नेहरू जी का परिवार अपने काल की अपेक्षा अधिक पढ़ा-लिखा परिवार माना जाता था। पढ़े-लिखे का अभिप्राय फ़ारसी, अंग्रेज़ी तथा अरबी पढ़ें-लिखे से है। ये लोग आत्माभिमानी थे। उस काल (सन् 1893 के लगभग) में प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेज़ हिन्दुस्तानियों से बहुत घृणा करते थे। हिन्दुस्तानी ईसाई और अन्य यूरोपियन लोग अपने को सरकार के सम्बन्धी मान, इस घृणा में अंग्रेज़ों के साथ सम्मिलित होते थे। इस कारण हिन्दुस्तानी पढ़े-लिखों को इनके हाथों भारी अपमान सहना पड़ता था। प्रायः हिन्दुस्तानी परिवार इसको कड़वा घूँट समझकर पी जाते थे, परन्तु नेहरू परिवार की यह विशेषता थी कि ये प्रायः उनसे भिड़ जाया करते थे।

परिवार का एक सदस्य शारीरिक बल में दूसरों से कुछ अधिक था, और वह ही इन अभिमानी अंग्रेज़ों से भिड़ जाया करता था। घर आकर वह अपने कारनामे परिवार के सदस्यों को सुनाया करता था। उसकी बातों को सुन सब बच्चे गर्व अनुभव किया करते थे। ये झगड़े प्रायः रेलगाड़ी में हुआ करते थे। नेहरू परिवार सम्पन्न था और रेलगाड़ी की उच्च श्रेणी में यात्रा किया करता था। इससे उस श्रेणी के अंग्रेज़ और यूरोपियन यात्रियों से झगड़ा प्रायः हो जाता था।

इस प्रकार की घटनाओं की जवाहरलाल जी के मन पर प्रतिक्रिया इस प्रकार हुई थी। आप लिखते हैं—

Much as I began to resent the presence and behaviour of the alien rulers, I had no feeling whatever, so far as I can remember, against individual Englishmen, I had an English governess and occassionally I saw English friends of my father's visiting him. In my heart I rather admired the English.[10]

यद्यपि विदेशी शासकों के विपरीत मेरे मन में रोष था, परन्तु जहाँ तक मुझे स्मरण है, मेरे मन में व्यक्तिगत अंग्रेज़ों के विपरीत कोई भावना नहीं थी। मेरी संरक्षिकाएँ अंग्रेज़ स्त्रियाँ थीं और पिता जी के अंग्रेज़ मित्र घर पर आते रहते थे। हृदय में अंग्रेज़ों की मैं प्रशंसा करता था।

मोतीलालजी खुलकर हँसने वाले व्यक्ति थे। उनकी हँसी परिचितों में खूब विख्यात थी। इसके साथ उनका अंग्रेज़ों के लिए आदर और मान, अंग्रेज़ी पहिरावे के प्रति मोह और अंग्रेज़ी रहन-सहन के प्रति रुचि इलाहाबाद में विख्यात थी। उन दिनों मोतीलाल जी राजनीति में रुचि नहीं रखते थे। वे एक सफल वकील थे। जीवन को सब प्रकार से रसमय बनाने में सामर्थ्यवान थे और उसमें रुचि रखते थे। वे वहाँ की सभ्य समाज में एक रसिक माने जाते थे।

स्वाभाविक रूप में मोतीलाल जी का घर, जवाहरलाल जी की शिक्षा और स्वभाव-निर्माण में प्रभाव पैदा करने वाला हुआ। जवाहरलाल जी का बचपन का एक चित्र उनके बाल्यकाल के वातावरण को प्रकट करने में सहायक होता है। गम्भीर चिन्तित आँखें हैं। जरीदार स्लीपर पहने हुए हैं, फूल-बूटों से कसीदा की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई पतलून और नाविकों की टोपी और स्कॉट घघरे की भाँति का कोट है।

परिवार हिन्दुस्तानी रहन-सहन से दूर था। बालक जवाहरलाल किसी स्कूल में नहीं पढ़ा। सोलह वर्ष की आयु तक उसकी पढ़ाई घर पर ही हुई। पहले अंग्रेज़ औरतों द्वारा, पीछे अंग्रेज़ शिक्षकों से। इन शिक्षकों में एक फर्डेनेंड टी ब्रुक्स थे। ये थियौसोफिस्ट थे।

मिस्टर ब्रुक्स मिसेज़ ऐनी बिसेन्ट की सिफारिश पर रखे गए थे। वे संस्कृत पढ़े थे परन्तु जवाहरलाल जी को अंग्रेज़ी पढ़ाते थे। इस पर भी जवाहरलाल जी के मन पर इनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।

ब्रुक्स के कहने पर जवाहरलाल जी थियौसोफिस्ट हो गए। वे उनकी सभाओं में जाते थे। इस पर भी, इस विषय में आप लिखते हैं—

I did not understand much that was said, but it all sounded very mysterious and fascinating and I felt that here was the key to the secrets of the universe.[11]

Soon after F.T. Brooks left me, I lost touch with Theosophy, and in a remarkably short time....Theosophy left my life completely.[12]

जो कुछ वहाँ कहा जाता था, वह मैं कुछ भी नहीं समझता था। इस पर भी यह बहुत ही रहस्यमय और मोहक लगता था और मैं अनुभव करता था कि यहाँ है ब्रह्माण्ड का रहस्य।

मिस्टर ब्रुक्स के जाते ही मैं थियौसोफी से असम्बद्ध हो गया और शीघ्र ही थियौसोफी मुझे बिल्कुल छोड़ गई।

थियौसोफी गीता की जीवन-मीमांसा से घना सम्बन्ध रखती है और वास्तव में नेहरू जी के घर के संस्कार इतने प्रबल थे कि उनमें किसी प्रकार के हिन्दू अथवा हिन्दुस्तानी संस्कार टिक नहीं सकते थे। घर के संस्कार, पिता के विचार तथा उनका व्यवहार, उनसे मिलने के लिए आने वाले मित्र और सम्बन्धी और उनकी हिन्दू तथा हिन्दुस्तानी रहन-सहन से पृथकता, सब-के-सब जवाहरलाल को एक दिशा विशेष की ओर ले जा रहे थे।

जवाहरलाल अभी तीन वर्ष के ही थे कि पिता नगर की सघन गली वाला मकान छोड़कर एक भाड़े के बंगले में चले आए। यह बगला अंग्रेज़ी बस्ती में था। श्री मोतीलाल लगभग सात वर्ष इस भाड़े के बंगले में रहे और तब ये अपने मकान में चले गए। यह मकान 'आनन्द भवन' के नाम से विख्यात है।

पन्द्रह वर्ष की आयु तक का काल जवाहरलाल जी का, अंग्रेज़ी गवर्नेसों, अंग्रेज़ी ट्यूटरों, और उनकी माता स्वरूप रानी की ही संगत में व्यतीत हुआ था। उनके चचेरे भाइयों की आयु उनसे बहुत बड़ी थी। ये उनकी बातों को सुनते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु न तो वे उनकी बातों को समझ सकते थे और न ही उनके कामों तथा खेल-कूद में साथी बन सकते थे। इसका उनके मन पर कुछ अच्छा प्रभाव नहीं हुआ।

मोतीलाल जी की अपने मित्रों से होने वाली खुली बातों और किलकारियों को वे पर्दे के पीछे छिप-छिप कर सुना करते थे।

जहाँ तक धार्मिक विचारों का सम्बन्ध है, जवाहरलाल जी अपने विषय में लिखते हैं—

मज़हब के विषय में मेरे विचार सर्वथा धुँधले थे। मुझको यह औरतों का काम समझ में आता था। मेरे पिता और चचेरे भाई धर्म के प्रश्न को गम्भीरता के स्थान पर हास्यास्पद मानते थे।

कभी-कभी मैं माँ तथा अपनी ताई के साथ गंगा-स्नान को जाया करता था। हम इलाहाबाद, बनारस और अंन्य स्थानों के मन्दिरों में भी जाते थे। कभी किसी प्रसिद्ध संन्यासी के दर्शन करने भी जाते थे, परन्तु इन सबका मेरे मन पर कोई प्रभाव नहीं रहा।

Of religion I had very hazy notions. It seemed to be a woman's affair. Father and my older cousins treated the question humorously and refused to take it seriously....I accompanied my mother or aunt to the Ganges for a dip, sometimes we visited temples in Allahabad itself, or in Benares or elsewhere or went to see a *Sanyasi* reputed to be very holy. But all this left little impression on my mind[13]

इस आयु की एक घटना जवाहरलाल जी के मन पर एक विशेष प्रभाव छोड़ गई थी।

आप टट्टू पर घूमने जाया करते थे। एक दिन टट्टू भड़क उठा और जवाहरलाल को भूमि पर फेंककर घर लौट आया। पिता और पिता के मित्रों ने टट्टू को खाली घर लौटते देखा तो भयभीत सब एक बड़े-से जलूस में पुत्र को ढूँढ़ने चल पड़े। जलूस के आगे-आगे पिता थे और पीछे सब प्रकार की सवारियों में मित्र वर्ग था। जवाहरलाल जी सड़क पर वापस लौटते मिल गए और सबने ऐसा व्यवहार किया मानो वह कोई दुर्ग विजय कर आए हैं।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में एक घटना घटी थी, जिसका एशिया के लोगों पर गहरा प्रभाव हुआ था। रूस पर ज़ार का शासन था। जापान ने रूस को पराजित किया था। जवाहरलाल जी पर भी इस घटना का प्रभाव हुआ था। भारत के सब पढ़े-लिखों की सहानुभूति जापान के साथ थी। रूस गोरों का देश था और भारत के शासक भी गोरे थे। कुछ भी बुद्धि रखने वाला हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ों से घृणा करता था और यह घृणा रूसी गोरों के भाग में भी आई थी।

इसी प्रकार दक्षिण अफ्रीका में बोर युद्ध के समय भी हिन्दुस्तानियों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहानुभूति बोरों के साथ थी।

यह व्यवहार संस्कार-जन्य था। इस सहानुभूति और घृणा में किसी प्रकार का बुद्धि से विचार किया व्यवहार नहीं था।

हमने इस अध्याय में कुछ उन संस्कारों का उल्लेख किया है, जो जवाहरलाल नेहरू के मन पर उनके बाल्यकाल में पड़े। हमारा यह कहना है कि नेहरू जी के पूर्ण जीवन के कार्य इन तथा अन्य संस्कारों के अधीन ही चलते रहे हैं। इनके जीवन में ऐसे कम ही अवसर आए हैं, जब इन्होंने अपने पूर्व संचित संस्कारों को छोड़कर बुद्धि से विचार कर कार्य किया हो।

अभी तक हम उन संस्कारों का ही उल्लेख कर रहे हैं जो बाल्यकाल में जवाहरलाल के मन पर पड़े। इनका मिलान इनके जीवन के कार्यों से किया जाएगा तो यह स्पष्ट हो जाएगा। पुस्तक के अगले अध्यायों में हम स्पष्ट करने का यत्न करेंगे कि कितना प्रबल प्रभाव इन संस्कारों का उनके जीवन पर पड़ा था।

:: 3 ::

जब बालक जवाहरलाल ग्यारह वर्ष का हुआ तब इसके पिता के घर में एक लड़की का जन्म हुआ। जवाहरलाल जी के जीवन में यह विशेषता रही है कि घर पर इनकी आयु का कोई साथी नहीं रहा। इनको किसी स्कूल में भरती नहीं कराया गया। पन्द्रह वर्ष की आयु तक इनका संसार घर में ही रहा था। घर पर कोई मित्र नहीं था। कोई बहिन-भाई खेल का साथी नहीं था। पिता के धनवान होने के कारण नौकर थे और नौकरों के बच्चे थे। पिता स्वाभाविक रूप में घर का पुरखा होने के कारण सब पर शासन करते थे।

पिता सुखी और रसमय जीवन व्यतीत करने वाले थे। मज़हब उनके लिए कोई बंधन नहीं था। मुसलमान और ईसाइयों से मेल-मुलाकात थी। अंग्रेज़ी भाषा, साहित्य तथा रहन-सहन के साथ इनका मोह था। इन सबका जवाहरलाल जी के बाल मन पर प्रभाव पड़ा था।

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि जवाहरलाल जी मज़हब और धर्म में भेद नहीं करते थे। यह उनके पिता के घर के वातावरण और उनके शिक्षकों के सीमित ज्ञान के कारण ही था। वे जीवनभर मज़हब (Religion) को भी धर्म का ही नाम देते रहे हैं। 'धर्म' शब्द संस्कृत भाषा का है। इसका पर्याय किसी अन्य भाषा में है नहीं और नेहरू जी का हिन्दी और संस्कृत का ज्ञान शून्य के बराबर ही था। संस्कृत की शिक्षा के विषय में जवाहरलाल जी स्वयं ही लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The only other tutor I had at the time, was a dear old Pandit who was supposed to teach me Hindi and Sanskrit. After many years effort, the Pandit managed to teach me extraordinarily little. so little that I can only measure my pitiful knowledge of Sanskrit with the Latin I learnt subsequently at Harrow. The fault no doubt was mine. I am not good at languages and grammar has had no attraction for me whatever.[14]

इस काल में मेरा एक दूसरा शिक्षक भी था। वह एक वृद्ध पंडित जी थे, जो मुझको हिन्दी और संस्कृत पढ़ाने के लिए रखे गए थे। बहुत वर्षों तक प्रयत्न करने पर भी पंडित जी मुझे बहुत कम पढ़ा सके, इतना कम कि मैं अपने संस्कृत के ज्ञान का लेटिन के ज्ञान से ही मिलान कर सकता हूँ। लेटिन मैंने हैरो के स्कूल में पढ़ी थी। दोष मेरा ही है। मैं भाषा पढ़ने के लिए बना ही नहीं। व्याकरण मेरे लिए कभी भी रुचिकर नहीं हुआ।

जवाहरलाल जी अंग्रेज़ी तो अच्छी बोलते और लिखते थे, परन्तु यह भाषा इन्होंने संगत से ही सीखी थी। यह भी संस्कार और बुद्धि से सम्बन्धित बात है। जवाहरलाल जी कभी भी कोई बात बुद्धि से ग्रहण नहीं कर सके। जो कुछ भी इनके जीवन में हुआ है, संस्कारों के कारण ही हुआ है। संस्कृत तथा लेटिन भाषाएँ व्याकरण के द्वारा पढ़नी पढ़ती हैं। व्याकरण स्मरण करना पड़ता है तथा इसका प्रयोग बुद्धि बल से हो सकता है। अंग्रेज़ी तो ये घर के वातावरण के कारण और बाल्यकाल से अंग्रेज़ी शिक्षकों के सम्पर्क में रहने के कारण, अनायास ही सीख गए थे।

संक्षेप में उस काल के संस्कार इस प्रकार लिखे जा सकते हैं—

1. यह संगत-विहीन बालक था। किसी के साथ इसका मोह नहीं हुआ। बाल्यकाल में, विशेष रूप में दस वर्ष की आयु से अठारह वर्ष की आयु तक, व्यक्तित्व का विकास होता है। इस आयु में किसी आत्मीय और स्नेही के समीप न होने के कारण यह परम स्वार्थी हो गए थे।

2. घर पर पिता एक प्रभावशाली शासक होने के कारण, बालक जवाहरलाल भीरु प्रकृति का हो गया। एक बार बालक जवाहरलाल ने अपने पिता की कलम उठा ली थी और इस अपराध पर पिता ने बहुत बुरी तरह पीटा था। इस विषय में जवाहरलाल जी स्वयं लिखते हैं—

Father was very angry and he gave me a tremendous thrashing. Almost blind with pain and mortification at my disgrace. I rushed to mother, and for several days various creams and ointments were applied to my aching and quivering little body.[15]

पिता जी बहुत क्रोध में थे और उन्होंने बहुत बुरी तरह पीटा। पीड़ा से और अपने अपमानित होने की लज्जा से बेसुध मैं माँ के पास भाग गया। कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिन तक भाँति-भाँति की मरहमें और दवाइयाँ मेरे पीड़ा करते और काँपते हुए शरीर पर लगाई जारी रहीं।

जवाहरलाल जी का भीरु (timid) स्वभाव पिता जी के दबंग और क्रूर व्यवहार के कारण ही था।

3. घर पर मज़हब तथा धर्म, दोनों की प्रतिष्ठा नहीं थी। पिता मज़हब पर विश्वास नहीं रखते थे। स्त्री वर्ग में ताया नन्दलाल जी की विधवा और माता स्वरूप रानी मज़हबी रीति-रिवाज का पालन करती थीं और पुरुष वर्ग इन रीति-रिवाजों की खिल्ली उड़ाता था।

4. पिता के मित्र और नौकर-चाकर मुसलमान और अंग्रेज़ थे। घर में मुसलमान औरतों का भी आना-जाना था। इनका प्रभाव भी जवाहरलाल जी पर हुआ था।

5. मोतीलाल जी के मन में हिन्दुस्तान में दी जाने वाली शिक्षा के विषय में बहुत ही हीन विचार थे। इन्होंने जवाहरलाल की शिक्षा के लिए इंग्लैंड में एक पब्लिक स्कूल ढूँढ़ा। स्कूल हैरो (Harrow) में था।

:: 4 ::

सन् 1905 में जवाहरलाल को हैरो स्कूल में स्थान मिल गया। यह स्कूल लन्दन से दस मील के अन्तर पर स्थित था। इस स्कूल में धनी-मानी माता-पिताओं के लड़के ही प्रवेश पा सकते थे। उन दिनों महाराज गायकवाड़ और महाराज कपूरथला के लड़के वहाँ पढ़ते थे।

जवाहरलाल जी की, स्कूल के दिनों की कोई विशेष बात पता नहीं है। इन्होंने वहाँ कोई विशेषता प्राप्त नहीं की। अपने स्कूल जीवन के विषय में वे स्वयं लिखते हैं—

I was never an exact fit. Always I had a feeling that I was not one of them, and the others must have felt the same way about me. I was left a little to myself.

....I took my full share in the games, without in any way shining at them, and it was, I believe, recognised that I was no shirker.[16]

मैं स्कूल में कभी भी ठीक 'फिट' नहीं रहा। मेरे मन में सदा यह विचार रहा था कि मैं उन (स्कूल साथियों) में से नहीं हूँ। दूसरे भी मेरे विषय में अवश्य वैसा ही विचार करते होंगे।

मैं खेल-कूद में पूरा भाग लेता रहा था। इस पर भी किसी खेल में प्रख्यात नहीं हुआ। केवल इतना समझा जाता था कि मैं खेलों में चोर नहीं हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कूल के हेड-मास्टर थे रेवरेण्ड जोसफ वुड डाक्टर आफ डिविनिटी (Rev. J. W. Doctor of Divinity)। स्कूल के कई घर थे। जवाहरलाल जी हैडमास्टर के घर (hostel) में रहते थे। घर का सुप्रिन्टैण्डैन्ट रेवरेन्ड एडगर स्टॉडगन (Rev. Edgar Stodgan) था। ये सज्जन पीछे हैरो के धर्मोपदेशक (Vicar) नियुक्त हुए थे।

इस सबका अभिप्राय यह है कि नेहरू जी पर ईसाई धर्म की छाप लगाने का पूरा प्रबन्ध था। यह प्रभाव घर पर ही आरम्भ हुआ था और स्कूल में भी जारी रहा।

डाक्टर वुड, बहुत ही सामान्य भाव में जवाहरलाल जी के विषय में, स्कूल काल से पैंतीस वर्ष बाद लिखते हैं, 'मैं उन दिनों जब नेहरू जी 'हैरो' में थे, हाउस मास्टर था। उस हाउस में नेहरू एक अच्छा तड़का था, शान्त और सभ्य। वह शोख नहीं था। इस पर भी यह देखा जा सकता था कि उसमें चरित्र की दृढ़ता थी।'

नेहरू जी के जीवन चरित् में फ्रेंक मोरेस (Frank Moraes) नेहरू जी के अध्यापक के उक्त कथन के विषय में लिखते हैं : 'यह अनुमान स्पष्ट ही है कि इसमें कुछ छिपाकर रखा गया है। यह छिपाना इस कारण भी हो सकता है कि नेहरू जी और उनके साथियों के मानसिक विकास में अन्तर था।'

जवाहरलाल जी दो वर्ष से कुछ दिन कम स्कूल में रहे।

अक्टूबर 1907 में आप कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में प्रवेश पा गए। तीन वर्ष तक विश्वविद्यालय में रहे। विश्वविद्यालय में स्कूलों से अधिक स्वतन्त्रता रहती है। इसका अनुभव भी नेहरू जी को हुआ। वे लिखते हैं—'मैं बचपन की बेड़ियों से मुक्ति पा गया था और अनुभव करने लगा था अपने में स्वाभिमान को। तब मैं बड़ा हो जाने का दावा करने लगा था। मैं विश्वविद्यालय के बड़े-बड़े प्रांगणों में और कैम्ब्रिज की भारी गलियों में घूमता था और किसी परिचित से मिलकर प्रसन्नता अनुभव करता था।'

जवाहरलाल जी ने पढ़ाई में विज्ञान लिया था। विषय थे कैमिस्ट्री, जियालोजी और बोटोनी (रसायन शास्त्र, भूगभ शास्त्र और वनस्पति शास्त्र)। इस पर भी उनकी रुचि सामान्य साहित्य में ही थी। इसके प्रिय लेखक थे नीत्शे (Nietzsche), बर्नार्ड शॉ, चार्ल्स डिकन्ज इत्यादि।

जवाहरलाल जी का कॉलेज का जीवन अति साधारण प्रकार का था। इस जीवन में वे किसी प्रकार की ख्याति प्राप्त नहीं कर सके। जहाँ तक संगत का प्रश्न है, वे स्वयं मानते हैं कि वे उन दिनों भ्रान्त मन (confused brain) थे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथ्या विचारग्रस्त (सोफिस्टिकेटिड) ही थे।

वे यौन सम्बन्धी बातें करने में रुचि रखते थे। विषय पर पढ़ते भी थे। वे लिखते हैं—

हम (मित्र मण्डली) में से बहुत थे, जो प्रबल यौन आकर्षण अनुभव करते थे और मुझको सन्देह नहीं कि हममें से कोई भी इसको पाप नहीं समझता था। हम पर मज़हबी प्रतिबन्ध नहीं था। हम इसको ऐमौरल (amoral) न तो नैतिक (moral) और न ही अनैतिक (immoral) मानते थे।

'जीवन के विषय में एक अस्पष्ट सिरेनैसिज़्म' का-सा व्यवहार था। जवानी के कारण था अथवा 'आस्कर वाइल्ड' तथा 'वाल्टर पीटर' के पढ़ने के कारण था, कहा नहीं जा सकता।'

सिरेनैसिज़्म एक प्रकार की जीवन-मीमांसा है जिसमें यौन क्रियाओं को सबके सामने करने में हानि नहीं मानी जाती।

जवानी तो सबको आती है और प्रायः युवकों का मन विचलित करती रहती है, परन्तु जो कुछ श्री नेहरू जी ने अपने और अपने साथियों के विषय में लिखा है, वह तो पूर्ण मानव समाज को ही मूर्ख और मिथ्या पथगामी मानने के तुल्य है।

कम से कम यह भारतीय जीवन-मीमांसा के अनुकूल नहीं है। यह ठीक है कि भारत में छोटी आयु में विवाह होते रहते थे, परन्तु जीवन में शील का सदा मान किया जाता था। यदि यूरोपियन वैज्ञानिकों की पद्धति अर्थात् विकासवाद को भी स्वीकार कर लें तब भी मनुष्य ने उस पशुपन के व्यवहार को अस्वीकार कर दिया हुआ है, जिसको, उनके विचार के अनुसार भी, मनुष्य ने पशुओं से सीखा था। संसार भर के मानव, यहाँ तक कि बहुत असभ्य जातियों ने भी, सार्वजनिक यौन-क्रियाओं को त्यज्य माना है।

परन्तु श्री जवाहरलाल जी से किसी भारतीय परम्परा के अनुकरण की आशा की भी नहीं जा सकती थी। वे तो सोलह वर्ष की आयु तक पिता की कोठी में लगभग एक कैदी की भाँति रखे गए थे। कोठी में भी जो कुछ उन्होंने देखा था, वह पिताजी के आचरण को पर्दे के पीछे से तांक-झांक कर ही था।

जवाहरलाल जी कैम्ब्रिज के दिनों में राजनीति के अध्ययन में रुचि लेते रहे थे। इस विषय में भी उनके बाल्यकाल के संस्कार ही उनका पथ-प्रदर्शन करते रहे हैं।

बोर-युद्ध में अंग्रेज़ी सैनिक दुर्बलता, तत्कालीन रूस की सैनिक शक्ति का बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन और उसका एक एशियाई देश से पराजित होना, मध्य-पूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ईसाइयों का हत्याकाण्ड, ये कुछ घटनाएँ थीं, जिनसे एशिया के रहने वालों के मन में उत्साह भर रहा था। जवाहरलाल जी इस उत्साह में भागीदार थे। इससे उनके मन में राजनीति का अध्ययन करने की रुचि उत्पन्न हो गई थी।

इस समय जे.एम. ट्रेवेलिन द्वारा लिखी गेरीबाल्डी की जीवनी उन्होंने पढ़ी। इसको पढ़ने से उनके मन में राजनीति के लिए रुचि और भी अधिक हो गई।

इन दिनों इंग्लैंड की उदारदलीय सरकार के हिन्दुस्तान के वाइसराय, सेक्रेटरी आफ स्टेट लॉर्ड मिन्टो और लॉर्ड मार्ले द्वारा आयोजित राजनीतिक सुधारों ने भी इन पर प्रभाव उत्पन्न किया था।

इधर भारत में भारी हलचल थी। बंगाल प्रान्त के विभाजन के कारण और श्री बाल गंगाधर तिलक, श्री विपिनचन्द्र पाल तथा लाला लाजपतराय के क़ारण हिन्दुस्तान में एक नया राजनीतिक पक्ष तैयार हो रहा था। इनमें से दो नेता, श्री बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपतराय तो भारतीय धर्म और भारतीय संस्कृति से अति प्रभावित थे। तीसरे विपिनचन्द्र पाल बंगाल में हिन्दुओं की विक्षुब्ध अवस्था तथा बंकिम इत्यादि के लेखों के प्रभाव में थे। बंकिम चन्द्र द्वारा लिखित गीत 'वन्देमातरम्' चमत्कारक स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ था।

इन नेताओं के कार्यों का एक धीमा-सा भास जवाहरलाल जी को भी प्रतीत हुआ था। इस विषय में वे लिखते हैं—

News of Tilak's activities and his conviction, of Aurobindo Ghose and the way the masses of Bengal were taking the swadeshi and boycott pledge stirred all of us Indians in England. Almost without an exception we were Tilakites or Extremists as the new party was called in India.[17]

तिलक के कार्य और कैद होने का समाचार, अरविन्द घोष और बंगाल के जन-जन के स्वदेशी तथा विदेशी माल के बहिष्कार के समाचार, इंग्लैंड में रहने वाले हिन्दुस्तानियों के मन में भारी हलचल पैदा कर रहे थे। हम सब-के-सब, बिना एक भी अपवाद के तिलक के पक्ष में अर्थात् उग्रवादी थे। नया दल इसी नाम से पुकारा जाता था।

परन्तु उस समय हिन्दुस्तान में एक और पक्ष था। यह था श्री वीर सावरकर और उनकी 'अभिनव भारत' संस्था का। इसके साथ ही बंगाल में कई अन्य क्रान्तिकारी दल थे। इनके विषय में जवाहरलाल जी के मन में उस समय भी किसी प्रकार के अच्छे विचार नहीं थे। श्री सावरकर, उन दिनों इंग्लैंड में ही थे और लंदन में अपना क्रान्ति-विषयक कार्य कर रहे थे। उस समय के अंग्रेज़ी पत्र-पत्रिकाओं और सरकारी क्षेत्रों में सावरकर जी का आतंक-सा छा चुका था। इस आतंक का रूप क्या था, और लोग सावरकर जी के विषय में क्या सोचते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह निम्न घटना से पता चलता है।

सन् 1909 जुलाई मास में लंदन में एक विद्यार्थी मदन लाल ढींगरा ने सर कर्जन वाइली की, गोली मार कर, हत्या कर दी थी। इस हत्या से इंग्लैंड में भारी आतंक उत्पन्न हुआ था। और वहाँ के सब समाचार-पत्रों में इसकी चर्चा हुई थी। हिन्दुस्तानियों की घोर निन्दा भी की गई थी।

श्री धनंजय कीर, श्री सावरकर जी की जीवनी में लिखते हैं—

India was the subject in every British Cottage, in every paper, in trains, in trams, at public squares and in markets, palaces and the British Parliament. The atmosphere become tense.[18]

इस हत्या की घटना से प्रत्येक अंग्रेज़ी घर, समाचार-पत्र, रेल गाड़ियों, ट्राम गाड़ियों, सार्वजनिक स्थानों, दुकानों, महलों और ब्रिटिश पार्लियामेंट में भारत की चर्चा होने लगी थी। वायु-मंडल अत्यन्त तनाव का था।

इस घटना के सम्बन्ध में कुछ हिन्दुस्तानी सरकार-भक्तों ने ढींगरा की निन्दा करने के लिए और वाइली की स्त्री से सहानुभूति प्रकट करने के लिए एक सभा कैक्स्टन हॉल में बुलाई। इसमें सर मानचर जी भवानगरी, सर आगा खां, सर सुरेन्द्र नाथ बैनेर्जी, श्री विपिनचन्द्र पाल और श्री खापर्डे भी उपस्थित थे। इन सबने ढींगरा की निन्दा में एक प्रस्ताव पास करना चाहा। सभा के प्रधान, सर आगा खां ने प्रस्ताव पढ़कर सुनाया और घोषणा की कि प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया जाता है। इस पर उपस्थित लोगों में से एक ने बहुत ऊँची आवाज़ में कहा—'No! not unanimously!' (नहीं, सर्वसम्मति से नहीं)।

अध्यक्ष ने क्रोध में पूछा, ''कौन है, जो 'नहीं' कहता है।'

उत्तर मिला, 'मैं हूँ।'

अध्यक्ष ने नाम पूछा। इसपर कुछ लोग बोल उठे 'इसे बैठा दो। इसे बाहर निकाल दो।' मानचर जी भवानगरी मंच पर से कूद कर नीचे आ गए और उस तरफ को लपके जिधर से आवाज़ आई थी। इस शोर को सुन फिर आवाज़ आई, 'मैं बोल रहा हूँ। मेरा नाम सावरकर है।'

इससे हॉल में बैठे लोग काँपने लगे। लोगों के मन में विचार आया कि क्रान्तिकारी सभा में बम्ब फेंकेंगे। औरतें चीखने लगीं। कुछ लोग हॉल से बाहर को भागने लगे। दूसरे मुक्का-मुक्की करने लगे। एक यूरोपियन सावरकर जी पर पिल पड़ा। इस दंगे में सावरकर जी को बहुत चोटें आईं। पीछे पुलिस आ गई और सभा बिना प्रस्ताव पारित किए विसर्जित हो गई।

इस घटना का समाचार 'लंदन टाइम्स' में छपा और उसी में सावरकर जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अपने कार्य की सफाई भी छपी। सावरकर जी ने लिखा था 'मुझे श्रीमती वाइली कर्जन से पूरी सहानुभूति है। मेरा विरोध प्रस्ताव के दूसरे अंश के साथ था। उसमें अभियुक्त के काम की निन्दा की गई थी। मेरा विरोध इस कारण था कि ढींगरा के विरुद्ध मुकद्दमा अभी अदालत में (sub-judice) चल रहा है। इस अवस्था में अभियुक्त के विपरीत निन्दा का प्रस्ताव करना अदालत की मान हानि हो जाती।'

इस वक्तव्य पर समाचार-पत्र की टिप्पणी भी थी कि 'सावरकर ठीक था।'

इन दिनों जवाहरलाल जी कैम्ब्रिज में थे और वे लिखते हैं कि इंग्लैंड में हिन्दुस्तान के समाचार कम छपते थे।

परन्तु ऐसी बात नहीं थी। ऐसा प्रतीत होता है कि नेहरू जी को ऑस्कर वाइल्ड पढ़ने से अवकाश ही नहीं था। वास्तविकता यह है कि जवाहरलाल जी की रुचि नरम दल वालों में थी और ब्रिटेन के समाचार-पत्रों और वहाँ की जनता को उन नौकरी और पदवियों के भूखों में रुचि नहीं थी। न तो उनसे सहानुभूति थी और न ही उनका विरोध था। तिलक आदि की खबर, कभी-कभी छपती रहती थी। जिनके समाचारों की वहाँ धूम थी, उनके विषय में जवाहरलाल जी को रुचि ही नहीं थी।

जवाहरलाल जी को क्रांतिकारी दल का उस समय कुछ भी ज्ञान नहीं था। इनके पिता मोतीलाल जी तो तिलक आदि के भी विपरीत थे। जवाहरलाल जी ने लिखा है कि वे निस्संदेह 'Moderate of the moderates' (नरम दल वालों में भी नरम प्रवृत्ति वाले) थे। आप आगे लिखते हैं—

The Swadeshi and boycott movements did not seem to him to carry matters far. And then the background of these movements was religious nationalism, which was alien to his nature.[19]

पिताजी को स्वदेशी का आन्दोलन और विदेशी का बहिष्कार कुछ अधिक प्रभावी पग दिखाई नहीं देता था। साथ ही इन आंदोलनों की पृष्ठभूमि में मज़हबी राष्ट्रीयता थी और यह विचार उनकी प्रकृति के विपरीत था।

जवाहरलाल जी अपने पिता के विषय में और भी लिखते हैं—

He looked to the West and felt greatly by Western progress, and thought that this could come through an association with England.[20]

वे पश्चिमी देशों की उन्नति से बहुत आकर्षित हुए थे और विचार करते थे कि ऐसा ब्रिटेन की संगत में रह कर ही हो सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोतीलाल जी के इस प्रकार के विचारों का ही प्रभाव जवाहरलाल जी पर जीवनभर रहा है। जवाहरलाल जी की 'वंदेमातरम्' गीत के लिए घृणा, उनकी देश को यूरोप के पदचिह्नों पर ले जाने के लिए देश को पुनः दासता में फँसा देने का खतरा मोल ले लेना, उक्त विचारों का ही परिणाम है।

यही विचार थे जिनके कारण सावरकर इत्यादि देशभक्तों का उनके मस्तिष्क पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ।

जवाहरलाल जी अपने विषय में भी लिखते हैं—

In London, we used to hear also of Shyamji Krishna Varma and his India House but I never met him or visited that house. Sometimes we saw his 'Indian Sociologist'. Long afterwards in 1926, I saw Shyamji in Geneva. His pockets still bulged with ancient copies of 'Indian Sociologist' and he regarded almost every Indian who came near him as a spy sent by the British Government.[21]

लंदन में हम श्यामजी कृष्ण वर्मा और उनके 'इण्डिया हाउस' के विषय में सुना करते थे, परन्तु मैं उससे कभी नहीं मिला या इंडिया हाउस गया। कभी-कभी उनके 'इंडियन सोश्योलोजिस्ट' को देख लेता था। इसके बहुत पीछे सन् 1926 में, जनेवा में श्यामजी को देखा था। तब भी उनकी जेबों में सोश्योलोजिस्ट के पुराने पर्चे भरे रहते थे और वे प्रत्येक हिन्दुस्तानी को, जो उनसे मिलने आता था, अंग्रेज़ी सरकार का भेजा हुआ भेदिया मानते थे।

जवाहरलाल जी के अपने इन विचारों से पता चलता है कि वे हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारियों के विषय में कितनी घृणा रखते थे। वे श्यामजी कृष्ण वर्मा को पागल हो गया प्रकट करने का यत्न कर रहे हैं।

कालान्तर में जवाहरलाल जी का सुभाषचन्द्र बोस से व्यवहार उनके उक्त वाक्यों को पढ़ने के उपरान्त समझ में आ जाता है।

हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय आन्दोलन के विषय में आप लिखते हैं—

Socially speaking the revival of Indian nationalism in 1907 was definitely reactionary. Inevitably, a new nationalism in India, as elsewhere in the East, was a religious nationalism.[22]

सामाजिक विचार से हिन्दुस्तानी राष्ट्रवाद का पुनरुत्थान 1907 में निश्चय ही प्रतिक्रियावादी था। स्वाभाविक रूप में हिन्दुस्तानी-राष्ट्रवाद अन्य पूर्वी देशों की भाँति मज़हबी राष्ट्रवाद था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 5 ::

यदि यहाँ मज़हबी राष्ट्रवाद की व्याख्या कर दी जाए तो पाठकों को समझने में सुगमता रहेगी। एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि नेहरू जी तथा अंग्रेज़ी परम्पराओं में पले हुए व्यक्तियों का यह कहना अपने विपक्षियों को गाली देना है।

यह कहावत है कि 'Give the dog a bad name and kill it' अर्थात् कुत्ते को पागल कह दो और उसे गोली से मार डालो। यही कहावत श्री नेहरू जी चरितार्थ कर रहे हैं। श्री नेहरू जी ने अपनी स्वरचित जीवनी सन् 1935 के लगभग लिखी थी और उस समय वे पैंतालीस वर्ष के प्रौढ़ व्यक्ति थे। उसी पुस्तक में उन्होंने कांग्रेस में अपने से पहले उग्रवादी देशभक्तों के लिए ये शब्द प्रयोग किए हैं।

उनमें क्या मज़हबीपन था? यह उन्होंने बताया नहीं। श्री जवाहरलाल समझते थे कि वे मज़हब-विहीन हैं। यह बात सर्वथा अक्षम्य है। कुछ लोगों को दूसरों की आँख में एक तिनका भी दिखाई दे जाता है, परन्तु अपनी आँख में शतीर भी दिखाई नहीं देता। वास्तव में वे स्वयं कट्टर मज़हबी विचार रखते थे। हाँ, यह कहा जा सकता है कि नेहरू जी जहाँ दूसरों को समझने की योग्यता नहीं रखते थे, वहाँ वे अपने को भी समझ नहीं सके।

मज़हब एक मार्ग होता है, जिसके द्वारा मनुष्य किसी ध्येय तक पहुँचने का प्रयास करता है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि मज़हब का दूसरा नाम 'वाद' है। श्री जवाहरलाल भी एक वाद के अनुयायी थे। जिस समय आपने तिलक इत्यादि के लिए उक्त शब्द लिखे थे, आप कम्युनिज़्म के कट्टर अनुयायी थे। आपने उस समय तक कम्युनिज़्म के पक्ष में अपनी आवाज़ उठाई हुई थी। आप सोशलिज़्म को मानने की डुग्गी पीट रहे थे। उस समय आप गांधीवाद के भी अनुयायी थे। गांधीवाद के इतने कट्टर अनुयायी कि क्रान्तिकारियों को गालियाँ देते फिरते थे। उनका क्रान्तिकारियों को गाली देना और मुसलमानों का अमुसलमानों को काफिर तथा, दण्डनीय कहना दोनों में कुछ अन्तर है क्या?

हमारा यह कहना है कि वास्तविक अर्थों में तो गांधी और जवाहरलाल जी की राजनीति ही मज़हबी राजनीति थी। स्वयं दोषी होते हुए दूसरों को दोषी ठहराने की दुर्नीति जनता को भ्रम में डालने के लिए थी।

भला मौलाना मुहम्मद अली, शौकत अली तथा अन्य मुल्ला-मौलानाओं से मिलकर भारत की राजनीति में खिलाफत को लाने वाले, तिलक, अरविन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपिन इत्यादि को मज़हबी राजनीति चलाने वाले क्योंकर कह सकते हैं ?

इन्हीं जवाहरलाल जी की छत्रछाया में पलने वाले श्री लाल बहादुर शास्त्री ने ईसाइयों के गुरु रोम के पोप को, पोप के नाते, अपने मज़हब का प्रचार करने आने पर, राजसी सम्मान दिया था। तिलक इत्यादि को, जिन्होंने कभी एक शब्द भी ऐसा नहीं कहा था, जिससे हिन्दू-मुसलमान में तथा हिन्दू-ईसाई में भेदभाव की गन्ध पाई हो, नेहरू जी का मज़हबी राजनीति के चलाने वाले कहना एक महान पाप माना जाएगा। उस पाप का ही फल है कि जवाहरताल जी की छाया में बन रहे हिन्दुस्तान को, संसार के विद्वान् घृणा से देखने लगे हैं। विश्व भर के देश अब भारत के साथ सहानुभूति नहीं रखते।

सन् 1905 से चल रहे स्वदेशी आन्दोलन और विलायती माल के बहिष्कार के आन्दोलन को मज़हबी राष्ट्रवाद के नाम से पुकारा जाना, हमें भला प्रतीत नहीं हुआ। विशेष रूप में उन लोगों द्वारा जो स्वयं एक मज़हबी राजनीति चला रहे थे, यह कहा जाना कि स्वदेशी आन्दोलन मज़हबी राजनीति थी एक सफेद झूठ था। स्वदेशी आन्दोलन के चलाने वाले प्राय: हिन्दू थे और उससे लाभ अधिकतर मुसलमानों को हुआ था क्योंकि अधिकांश कारीगर (जुलाहे इत्यादि) मुसलमान थे।

नेहरू जी का यह वक्तव्य एक बात प्रकट करता ही है कि वे कितने अयुक्तिसंगत और इतिहास से अनभिज्ञ थे। इस प्रकार दूसरों की निन्दा करते हुए धोखाधड़ी से वे पेश के भोले-भाले लोगों के नेता बन गए थे।

यह हमारी चुनौती है कि श्री जवाहरलाल के गुणानुवाद गाने वाले, तत्कालीन नेताओं (बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी इत्यादि) के सार्वजनिक आचरण से कोई ऐसी बात बताएँ, जिससे किसी अन्य भारतीय समुदाय को हानि पहुँचाने की गंध भी आती हो।

कैम्ब्रिज में हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों की एक सभा थी। उसका नाम 'मजलिस' था। लड़के इस सभा में राजनीतिक समस्याओं पर विचार करते रहते थे। जवाहरलाल जी इसकी सभाओं में आया करते थे, परन्तु वे इसमें किसी प्रकार का भाग नहीं लेते थे। वे इसमें कभी नहीं बोले।

कैम्ब्रिज में एक वाद-विवाद सभा भी थी। इसका नाम 'मैगपाई एण्ड स्टम्प' (Magpie and Stump) था। जवाहरलाल इसमें भी कभी बोलते नहीं थे। इस सभा का नियम था कि जो इसके पूरे सत्र भर में एक बार भी न बोले, उसको दण्ड देना होता था और जवाहरलाल जी जुर्माना भरा करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने तब के विचारों के विषय में आप लिखते हैं—

I was influenced by my scientific studies in the University and had some of the assurance which science then possessed. For the science of the nineteenth and the early twentieth centuries, unlike that of to-day, was very sure of itself and the world.[23]

विज्ञान पढ़ने का मुझपर प्रभाव हो रहा था। मुझको विज्ञान के कुछ आश्वासन समझ में आ रहे थे। उन्नीसवीं और प्रारम्भिक बीसवीं शताब्दी का विज्ञान अपने विषय में और दुनिया के विषय में आजकल से भी अधिक निश्चयात्मक था।

यहाँ एक अन्य निरर्थक बात श्री जवाहरलाल जी ने लिख दी है। आप यह लिखते हैं कि सन् 1901 से 1911 का विज्ञान आज से अधिक निश्चयात्मक था। अर्थात् आज का वैज्ञानिक समझ गया है कि वह आत्मविश्वास करता हुआ भूल कर रहा है। इस पर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या नेहरू जी अपने उत्तर-जीवन में विज्ञान को छोड़ बैठे थे एवं इसके अतिरिक्त, मानव का आश्रय कुछ अन्य है, ऐसा मानने लगे थे?

यदि यह बात जवाहरलाल जी समझ गए होते तो भारत में शिक्षा की यह दुर्दशा न होती जो स्वराज्य काल में हुई है। इस शिक्षा का एक अच्छा-खासा नमूना भारत की राजधानी के कुछ एक पढ़े-लिखे लोगों ने 31 दिसम्बर 1967 की रात को, राजधानी के केन्द्र कनॉट सरकस में उपस्थित किया था। कुछ एक पढ़े-लिखे युवकों ने खुली सड़क पर पुलिस के देखते-देखते स्त्रियों की पकड़-धकड़ की थी, उनके कपड़े फाड़ डाले थे और उनके शील भंग का प्रयत्न किया था।

विज्ञान का भूत जवाहरलाल जी के मस्तिष्क पर मरण-पर्यन्त सवार रहा था। भारत की बहुत-सी मुसीबतें जवाहरलाल जी की विकृत मनोवृत्ति का ही परिणाम हैं। अपने राज्यकाल में भी अपने विपक्षियों का मुख बन्द करने के लिए वे कह दिया करते थे, 'यह एटमिक एज' है। मज़ेदार बात तो यह है कि एटम बम का नाम सुनते ही इनका पसीना छूटने लगता था।

उस समय जवाहरलाल जी क्या करते थे? इस विषय में भी आप लिखते हैं—

And we would sit by the fireside in the long winter evenings and talk and discuss unhurriedly deep in to the night till the dying fire drove us shivering to our beds.[24]

और हम आग के समीप बैठ, सर्दी की लम्बी रातों में बातें करते रहते थे। बिना हलबुली मचाए आधी रात तक, जबकि आग ठण्डी हो जाती थी और हम सर्दी से कांपते हुए अपने बिस्तरों में घुस जाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाहरलाल जी का विश्वविद्यालय का अधिकांश समय इसी प्रकार की बातों में ही व्यतीत होता था। इनका जीवन चरित लिखने वाले फ्रैंक मोरेस लिखते हैं—

'यह कहना गलत होगा कि नेहरू उन दिनों की घटनाओं के विषय में कुछ अधिक लिखते-पढ़ते थे। वे स्वयं मानते हैं कि उनकी रुचि प्रायः फूहड़ (superficial) होती थी। यद्यपि समय की कई बातों पर उनका मन आन्दोलित हो उठता था पर इस पर भी वे कभी भी उन पर गम्भीर विचार करने के लिए उद्यत नहीं हुए। वे बाहरी रूप-रंग को ही देखने का यत्न करते रहते थे।[25]

हैरो स्कूल से होकर कैम्ब्रिज पहुँचने के कारण, वे एक ऐसे वायु-मंडल और पृष्ठभूमि में रहे जो उनके समय के प्रायः हिन्दुस्तानियों से सर्वथा भिन्न थी। उनमें ऑस्कर वाइल्ड और वाल्टर पीटर का फूहड़पन उपस्थित था। वे स्वयं मानते हैं कि इन लेखकों का प्रभाव उनके मन पर था।

नेहरू जी के जीवन में एक बात विशेष प्रतीत होती है वे भावुक बहुत थे। यह भावुकता उनमें बाल्यकाल से ही थी जब वे अंग्रेज़ों और एंग्लो इण्डियन लोगों द्वारा हिन्दुस्तानियों का अपमान होता देखते थे, तो क्रोध और अपमान से जला करते थे। तब भी वह घर पर आने वाले अथवा अपने अंग्रेज़ शिक्षक को अन्य अंग्रेज़ों से भिन्न समझते थे। यह भावुकता ही थी। यदि बुद्धि से विचार करते तो वे समझे जाते कि अंग्रेज़ों का व्यवहार उनके जातीय अभिमान का हो प्रतीक है।

अंग्रेज़ों के इस व्यवहार का स्वाभाविक परिणाम यह होना चाहिए था कि अपने देश की संस्कृति, सभ्यता और साहित्य से प्रेम होता। वह नहीं हुआ। इसी प्रकार क्रांतिकारियों का अपनी मातृभूमि से माँ के समान प्रेम, उनको मज़हबी राष्ट्रवाद (religious nationalism) समझ में आता था, जिससे वे घृणा करने लगे थे। विश्वविद्यालय में साधारण-सा विज्ञान पढ़कर वे समझने लगे थे कि भूतल पर स्वर्ग खुलने वाला है। उन दिनों में ही 'सर आलिवर लॉज' प्रभृति विश्वविख्यात वैज्ञानिक उच्च स्वर से आत्मा-परमात्मा के विषय में घोषणा कर रहे थे। इस पर भी जवाहरलाल जी को मज़हब सारहीन प्रतीत हो रहा था।

वे आधी रात तक निष्क्रिय बैठे आवारा लड़कों से क्या बातें करते रहते थे, यह अनुमान लगाया जा सकता है।

जवाहरलाल जी के इंगलैंड के जीवन के विषय में फ्रैंक मोरेस लिखते हैं—

'इनका लज्जाकुल और सूक्ष्मग्राही स्वभाव, इनके मुख पर अभिमान की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुद्रा और इनका एकाएक बोलने का ढंग ऐसा था कि न तो इनके वहाँ मित्र बन सके और न ही ये किसी पर प्रभाव जमा सके। इन्होंने विश्वविद्यालय के जीवन पर किसी प्रकार का भी प्रभाव नहीं छोड़ा। उस समय एक सौ के लगभग हिन्दुस्तानी विद्यार्थी वहाँ पढ़ते थे। उन पर भी पंडितजी का किसी प्रकार का प्रभाव नहीं था। वहाँ से आने के उपरांत किसी को स्मरण भी नहीं रहा कि वे इनसे मिले भी हैं।[26]

कैम्ब्रिज से जवाहरलाल जी बैरिस्टर बनने लंदन चले गए। वे बैरिस्टर बन गए, न तो बहुत अच्छे अंक लेकर; न ही अनुत्तीर्ण हुए। उस समय की एक झलक जवाहरलाल जी के अपने शब्दों में इस प्रकार है—

यह जवाहरलाल जी को भ्रम हो गया था कि वे उग्रवादी (extremist) हैं। नरम और गरम अथवा उग्र होना व्यवहार से सम्बन्ध रखता है, विचारों से नहीं। व्यवहार से तो वे आई.सी.एस. की परीक्षा में बैठने का विचार कर रहे थे। यही बात उनके पूर्ण जीवन में चलती रही है। सन् 1946 में आप मंच पर खड़े होकर कह रहे थे कि 'पाकिस्तान महामूर्खता (fantastic nonsense) है'; परन्तु जब कार्य का समय आया तो पाकिस्तान मानने वालों में आप सबसे पहले व्यक्ति थे।

आप तो आई.सी.एस. बनने की अभिलाषा रखते थे, परन्तु योग्यता साथ नहीं दे रही थी। इनको उस परीक्षा में उत्तीर्ण होने की कुछ भी आशा नहीं थी।

It is curious that in spite of my growing extremism in politics, I did not then view with any strong disfavour the idea of joining the I.C.S. and thus becoming a cog in the British Government's administrative machine in India.[27]

उक्त उद्धरण का अर्थ है; *यह विचित्र बात है कि मैं राजनीति में उग्र विचार रखता हुआ भी आई.सी.एस. में जाने के विचार को नापसन्द नहीं कर सका। यदि उसमें जाता तो ब्रिटिश सरकार के शासन का एक पुर्जा बन जाता।*

उग्र कार्य करने वालों का एक उदाहरण लंदन में सम्पन्न हुआ था। उन दिनों लंदन में लॉर्ड लेमिंग्टन के सभापतित्व में एक सभा हुई थी। लॉर्ड लेमिंग्टन बम्बई के गवर्नर रह चुके थे। सभा का विषय था, 'क्रान्तिकारियों को कैसे नियंत्रण में रखा जाए?' इस सभा में भारी हलचल मची थी। एक सर ली वार्नर ने इस सभा में कह दिया कि कुंजबिहारी भट्टाचार्य एक जाहिल हब्शी (dirty nigger) है। इस पर वासुदेव भट्टाचार्य ने चट से सर ली वार्नर के मुख पर एक चपत जड़ दी। वासुदेव पकड़ा गया। उस पर मुकद्दमा चला और उसको बीस रुपये जुर्माना हो गया। इस घटना से लंदन में इंडिया हाउस की धूम मच गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरू की उग्रता किस बात में थी, यह तो समझ में आता नहीं। वास्तव में वे पूर्ण जीवनभर एक महान् भ्रम में फँसे हुए कार्य करते रहे हैं।

कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि कैम्ब्रिज और लंदन में जवाहरलाल जी किसी ऐसी दुनिया में रहते रहे थे, जो हिन्दुस्तानी थी ही नहीं। उसमें हिन्दुस्तान की भावनाएँ किसी प्रकार का भाग नहीं रखती थीं।

जवाहरलाल जी इंग्लैंड में सात वर्ष विद्यार्थी जीवन व्यतीत कर हिन्दुस्तान लौट आए। उस जीवन से इनको केवल मात्र अपने अंग्रेज़ी संस्कारों का समर्थन ही मिला। संक्षेप में, जवाहरलाल जी का यह जीवन नीरस, प्रभावहीन और बहुत ही साधारण (mediocre) ढंग का था। पिता के घर पर बने संस्कार पुष्ट ही हुए। हाँ, एक बात थी कि आप इंग्लैंड से एक धुँधला-सा विचार समाजवाद का लेकर आए थे।

यदि भाग्य प्रबल न होता तो जवाहरलाल जी का विद्यार्थी जीवन ऐसा नहीं था कि कोई इनसे किसी प्रकार की आशा कर सकता। ये 1912 में हिन्दुस्तान लौटे और सन् 1919 तक एक साधारण वकील का जीवन व्यतीत करते रहे। कोई इनसे किसी प्रकार की आशा नहीं रखता था और ये भी किसी बड़ी बात के लक्षण नहीं रखते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

हिन्दुस्तान और कांग्रेस

(1900 से 1919 तक)

देश की अवस्था दयनीय थी। सरकार का दमन-चक्र चल रहा था। यह क्यों था? इसका कारण यह बताया जाता है कि लॉर्ड कर्जन सन् 1868 में हिन्दुस्तान में वाइसराय बनकर आया था। वह अति क्रूर, अभिमानी और हिन्दू विरोधी व्यक्ति था। हिन्दुस्तान में आते ही उसने हिन्दुस्तानियों को सामान्य रूप में और हिन्दुओं को विशेष रूप में पद-दलित करने का आयोजन आरम्भ कर दिया। वह इंग्लैंड की टोरी दल का सदस्य था और अंग्रेज़ जाति के पूर्ण अभिमान से युक्त था।

उसने सन् 1902 की यूनिवर्सिटी कमिशन नियुक्त की थी। इस कमिशन ने विश्वविद्यालयों का ऐसा ढाँचा बनाया कि इससे देशभर की शिक्षा पर सरकारी आधिपत्य हो गया। वाइस-चांसलर प्रान्त का गवर्नर नियुक्त करता था और वह प्रोफेसरों और लैक्चरारों की नियुक्ति पर अवलोकन करता था।

लॉर्ड कर्जन ने देखा कि बंगाल के जमींदार अपने लड़कों को उच्च शिक्षा देकर सरकारी उच्च नौकरियों की माँग करने लगे थे। वह समझता था कि—

"By their environment, their heritage and their upbringing unequal to the responsiblities of high office under British rule and the highest rank of civil employment in India must therefore as a general rule be held by Englishmen."[28]

अपने वातावरण और परम्पराओं तथा शिक्षा-दीक्षा के कारण हिन्दुस्तानी ब्रिटिश राज्य तो उच्च पदवियाँ पाने के अयोग्य हैं। वे पदवियाँ स्वाभाविक रूप में अंग्रेज़ों के पास ही रहेंगी।

ये वाक्य कर्जन ने 1904 की बजट की स्पीच में कहे थे। उसने इसी भाषण में हिन्दुस्तानियों को झूठा बताते हुए कहा था कि हिन्दू इतिहास में सच्चाई की कुछ अधिक महिमा नहीं है। इन पुस्तकों में successful deception

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

practised by honest men" की प्रशंसा की गई है। हिन्दुस्तानी पढ़े-लिखों को वह "windbags, frothy patriots lacking in physical courage कहता है।"[29]

लॉर्ड कर्जन प्राय: कहता था कि हिन्दुस्तानी जाति नाम की कोई वस्तु नहीं है।

इन सब बातों के साथ उसने बंगाल के दो भाग कर दिए। एक भाग को आसाम के साथ मिला दिया। इस प्रकार बंगाल के ज़मींदारों पर गहरी चोट की।

लॉर्ड कर्जन यह समझता था कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राज्य ईश्वर की देन है। हिन्दुस्तानी और हिन्दुओं के विषय में ये सब विचार कुछ अंग्रेज़ लेखकों ने इंग्लैंड में बनाए थे और कर्जन जैसे अभिमानी के मन में बैठ गए थे। यही बात अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों में भी बैठी हुई थी।

श्री प्यारेलाल अपनी पुस्तक 'गांधी जी के जीवन चरित्र' के भाग प्रथम में लिखते हैं—

The first generation of the Congress patriarchs had accepted British rule in India as a sort of divine dispensation. Pherozeshah Mehta's 'inscrutable dipensations of Providence' which had brought India and England together....

....British rule, to these Congress leaders, was a condition of peace, stability and progress....

....At the Ahmedabad Congress, in 1902, Surendranath Banerjee declared from the Presidential Chair, "We plead for the permanance of British rule in India."[30]

कांग्रेस के पहले के प्रतिष्ठित नेताओं में यह बात मानी जाती थी कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राज्य भगवान की कृपा का प्रसाद है। फिरोजशाह मेहता ने यह कहा था कि यह भगवान की अज्ञात कृपा है, जिससे हिन्दुस्तान और इंग्लैंड साथ-साथ हो गए हैं।....इन कांग्रेसी नेताओं के लिए ब्रिटिश राज्य शान्ति, स्थिरता और उन्नति लाने वाला सिद्ध हो रहा था।.... 1902 में कांग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन पर प्रधान पद के भाषण में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने घोषणा की थी, "हम हिन्दुस्तान में ब्रिटिश राज्य के सदा रहने की माँग करते हैं।"

यह सब महिमा हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी शिक्षा का परिणाम ही थी। इस पर भी कुछ अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग अपने घरों के वातावरण के कारण और कुछ स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द इत्यादि साधु संतों के प्रभाव में एक दूसरी प्रकार की शिक्षा भी रखते थे। गांधी और जवाहरलाल जी के भक्तों का विचार है कि लॉर्ड कर्जन इत्यादि अभिमानी और मूर्ख अंग्रेज़ों के कार्यों और कथनों की प्रतिक्रिया में 1900 से 1911 की राष्ट्रीयता की लहर उठी थी। यह सत्य नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य बात यह है कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना बहुत पहले की है। मुसलमानों से भी पहले काल से यह भारत में उपस्थित थी। उस समय इसका रूप सांस्कृतिक था। राजनीति और शासन धर्म के विषय थे; राष्ट्रीयता देशव्यापी और सांस्कृतिक थी। परन्तु जब मुसलमान शासकों ने राजनीतिक शक्ति से सांस्कनिक मान्यताओं में परिवर्तन उत्पन्न करने का यत्न किया, तब भारत की सांस्कृतिक भावना ने राजनीतिक शक्ति का संचय आरम्भ किया। गुरु नानक से लेकर गुरु तेग बहादुर तक सांस्कृतिक उत्थान का यत्न होता रहा। तुलसी, कबीर, दादू राजनीति की ओर देखे बिना सांस्कृतिक उत्थान का यत्न करते रहे। परन्तु जब मुसलमान शासकों ने अपना बल इस्लाम के प्रचार में अधिक और अधिक लगाना जारी रखा, तो हिन्दुओं ने भी अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए राजनीति का आश्रय लेना आवश्यक समझा। परिणाम हुआ शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, बन्दा बैरागी, तदुपरान्त मराठा साम्राज्य और सिक्ख राज्य।

यही बात अंग्रेज़ों ने करनी चाही थी। अंग्रेज़ों के यहाँ आते ही पादरियों की सेना यहाँ आ पहुँची और सरकारी सहायता से ईसाई मज़हब का प्रचार करने लगी। मैकॉले और मैक्समुल्लर जैसे पादरी भारत की शिक्षा और साहित्य को दूषित करने लगे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सबसे पहले अपनी आवाज़ उठाई। उन्होंने मैक्समुल्लर इत्यादि को एक धोखा घोषित किया। उनके कथनों को चुनौती दी। परन्तु जब इस चुनौती को स्वीकार नहीं किया गया, उनके विचार प्रसार के लिए सरकारी सहायता जारी रही, तो स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह घोषणा कर दी कि बिना अपना राज्य प्राप्त किए हमारी संस्कृति भी बच नहीं सकती। स्वामी जी ने यह नारा लगा दिया कि देश में स्वराज्य होना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द जी के मन में भी यही बात थी। जब सरकार ने सरकारी मंच पर खड़े होकर यहाँ के धर्म और संस्कृति की निन्दा आरम्भ की तो देश के साधु, संत, महात्मा भी स्वराज्य प्राप्त करने की भावना प्रकट करने लगे।

यह ठीक है कि जो नीतियाँ लॉर्ड कर्जन ने चलाईं, उन्होंने विद्रोह की अग्नि में घी डाला। इस पर भी यह सत्य है कि विद्रोह की अग्नि यहाँ पहले उपस्थित थी।

लॉर्ड कर्जन की उत्पीड़न की नीति ने कांग्रेस में हलचल पहुँचाई। श्री बाल गंगाधर तिलक और उनके साथियों ने कांग्रेस का नेतृत्व अंग्रेज़ भक्तों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथों से छीनने का यत्न किया, परन्तु कांग्रेस के पुराने पट्ठों ने, 1907 में, सूरत कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर दंगल चलाया और सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, फिरोजशाह मेहता इत्यादि सरकार-भक्तों ने तिलक इत्यादि को धक्के दे-देकर निकाल दिया।

इस बात का प्रमाण कि कांग्रेस की स्थापना से पहले ही देश में व्यापक असंतोष था, सर ह्यूम ने प्रस्तुत किया है। वास्तव में उस असंतोष से डर कर ही सर ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना की थी।

सर ए.ओ. ह्यूम की जीवनी लिखने वाले सर विलियम वेडर बर्न ने लिखा है—

Some time before retirement, Hume came in possession of evidence, which convinced him that a situation fraught with grave peril obtained in India....

The evidence that convinced him of the imminence of the danger was contained in "seven large....volumes containing a vast number of entries.... from over thirty thousand different reporters."

....all going to show that these poor men were pervaded with a sense of the hopelessness of the existing state of affairs; that they were convinced that they would starve and die, and that they wanted to do something. Hume felt that a safety valve must be provided for the suppressed discontent....[31]

ह्यूम नौकरी से पृथक् होने से पूर्व ऐसे प्रमाण पा गया था, जिनसे पता चलता है कि हिन्दुस्तान में ऐसी स्थिति उत्पन्न हो रही थी, जो भारी भय से युक्त थी।

वे प्रमाण जिनसे उसे इस महान भय का ज्ञान हुआ था, उसके सात बड़े-बड़े खण्डों में दर्ज है। उनमें लगभग तीस हज़ार भेजी सूचनाएँ दर्ज की गई हैं।

इन सूचनाओं से यह सिद्ध होता है कि वे सब लोग निराशा से भर रहे थे। तत्कालीन स्थिति में उनको विश्वास हो रहा था कि वे भूखे मर जाएँगे और उन्हें कुछ करना चाहिए।

ह्यूम ने अनुभव किया कि यह असंतोष, भीतर ही भीतर सुलगने नहीं देना चाहिए। इसके निकलने के लिए 'सेफ्टी वाल्व' निर्माण करना चाहिए।

इस अर्थ सर ए.ओ. ह्यूम ने इण्डियन नैशनल कांग्रेस की स्थापना की।

सर ए.ओ. ह्यूम की जीवनी लिखने वाले ने लिखा है कि देशभर के साधु संत महात्मा इस प्रकार के असंतोष के फैलाने में लगे हुए थे।

हमारा यह मत है कि देश में से अंग्रेज़ी राज्य को उखाड़ फेंकने की उत्कट इच्छा कांग्रेस के जन्म से बहुत पहले ही उत्पन्न हो चुकी थी। सर ह्यूम की जीवनी लिखने वाला आगे लिखता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Some of the religious heads who had come in contact with Hume, told him that unless men like him who had access to Government could do something to remove the general feeling of despair.....would lead to some terrible outbreak.[32]

कुछ धर्मगुरु जो ह्यूम के सम्पर्क में आए थे, यह कहते थे कि उस जैसे आदमियों से कुछ किया जाना चाहिए, जिनकी सरकार तक पहुँच है। अन्यथा बहुत ही भयंकर उपद्रव खड़े हो जाएँगे।

कांग्रेस की स्थापना इस कारण हुई थी कि देश का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में चला जाए जो ब्रिटिश राज्य को हिन्दुस्तान के लिए ईश्वरीय देन मानते हों। यह नियम रखा गया कि कांग्रेस में केवल अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे और बोल सकने वाले ही सम्मिलित हो सकते थे। परन्तु जैसाकि हम ऊपर बता चुके हैं; देश में स्वराज्य की भावना हिन्दुस्तानियों की प्रकृति में ही थी। इसकी गूँज कांग्रेस में भी पहुँची। सूरत में पुराने और नए नेताओं में अर्थात् सरकार-भक्तों में और राष्ट्रवादियों में दंगल हो गया। सरकार-भक्तों ने राष्ट्रवादियों को निकाल बाहर किया। सन् 1908 में कांग्रेस का अधिवेशन मद्रास में हुआ। सरकार अपने भक्तों की रक्षा के लिए तैयार हो गई। इस विषय में श्री प्यारेलाल लिखते हैं—

At the 1908 session of the Congress, held in Madras, Congress *pandal* was honeycombed with one hundred spies dressed in plain clothes, besides twenty accredited ones. Everybody who was anybody in public life was shadowed, his mail was censored and his correspondence was liable to be intercepted. No body....[33]

सन् 1908 में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन के समय कांग्रेस पंडाल में एक सौ से ऊपर सफेदपोश खुफिया पुलिस वाले ताना-बाना करते दिखाई देते थे। नियमित पुलिस वाले इनसे अतिरिक्त थे। उन दिनों भी सार्वजनिक काम करने वाला पुलिस की छाया से बाहर नहीं था। उसकी डाक खोल कर पढ़ी जाती थी और उसके लिखे पत्र रोक लिये जाते थे।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि यह तिलक इत्यादि पर छाया और कृपा थी, श्री फिरोजशाह मेहता इत्यादि पर नहीं थी। वास्तव में यह उनकी, राष्ट्रवादियों से रक्षा के निमित्त था।

:: 2 ::

जवाहरलाल जी जब हिन्दुस्तान पहुँचे तो यहाँ नरम दल अर्थात् सरकार-भक्तों का बोलबाला था। तिलक जी जेल में थे। लाला लाजपतराय मांडले जेल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से लौटने के उपरान्त शान्त थे और अपने शैक्षणिक कार्य तथा आर्यसमाज के कार्य में लीन थे। बंगाल में भी उस समय शान्ति थी। सन् 1911 में बंगाल विभाजन रद्द कर दिया गया था और बंगाल के बहुत-से क्रान्तिकारी पकड़कर अण्डमान भेज दिए गए थे। विपिनचन्द्र पात्र जैसे व्यक्ति लंदन में मदनलाल ढींगरा की निन्दा का प्रस्ताव पास करते-फिरते थे। बंगाल के महान् कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ब्रिटेन के सम्राट के लिए, 'जन गण मन' गीत की रचना करने लगे थे। श्री अरविन्द संसार छोड़कर संन्यास की ओर अग्रसर हो रहे थे। इस प्रकार हिन्दुस्तान की राजनीति में रह गए थे गोखले, श्रीनिवास शास्त्री, फिरोजशाह मेहता और कुछ अन्य सरकार-भक्त।

जवाहरलाल जी अपने पिता की सुखद छाया में वकालत करने लगे। इस बीच अर्थात् सन् 1912 से 1919 तक कोई उल्लेखनीय घटना जवाहरलाल जी की नहीं हुई। वकालत में भी उनकी किसी प्रकार की विशेष प्रतिभा का भास दिखाई नहीं दिया। इस पर भी उनकी मिथ्या दृष्टि के प्रमाण तो मिलते हैं। आप 1912 में बांकीपुर कांग्रेस अधिवेशन में डेलिगेट के रूप में भाग लेने गए थे। वहाँ आपको श्री गोखले ही सबसे बड़े राजनीतिज्ञ दिखाई दिए थे। आप लिखते हैं—

Gokhale fresh from South Africa, attended it and was the outstanding person of the session. High-strung, full of earnestness and a nervous energy, he seemed to be one of the few persons present, who took politics and public affairs seriously and felt deeply about them.[34]

गोखले अभी-अभी दक्षिण अफ्रीका से आए थे और वे इस अधिवेशन में उपस्थित थे। वे वहाँ एक विशेष व्यक्तित्व वाले, सतर्क, सजग, और शक्तिमान दिखाई दिए थे। वे उन कुछ व्यक्तियों में से एक थे, जो राजनीति और सार्वजनिक कार्य को गम्भीरतापूर्वक और सत्य हृदय से अनुभव करते थे।

जवाहरलाल जी की गोखले साहब की प्रशंसा तो उनके इंगलैंड के जीवन का स्वाभाविक परिणाम ही प्रतीत होती है। गोपालकृष्ण गोखले तत्कालीन वाइसराय की कौंसिल के सदस्य थे। यह स्वाभाविक ही था कि वे राजनीति में रुचि लें। उनके कौंसिल के सदस्य होने से, यह उनका काम ही था। जो वास्तविक बात थी वह उस रुचि की दिशा की थी। अंग्रेज़ी शिक्षा की उपज और देश के लिए किसी प्रकार का भी भय सिर पर न ले सकने वाले ये गोखले साहब थे। देश में ऐसे और भी बहुत थे।

श्री गोखले के चरित्र की झलक निम्न घटना से स्पष्ट हो जायगी। सन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1898 में पूना में मिस्टर रांड और मिस्टर ऐमरिस्ट की, गोली मार कर हत्या कर दी गई थी। ये दोनों महानुभाव वहाँ प्लेग कमेटी के सदस्य थे। मिस्टर रांड कमेटी के चेयरमैन थे।

इस विषय में जुलाई, 1898 में 'मानचैस्टर गार्डियन' के एक संवाददाता ने गोखले साहब का एक वक्तव्य छपवाया। इस समाचार में पूना में रांड इत्यादि द्वारा किए गए अत्याचारों का उल्लेख था। इस वक्तव्य में ये शब्द थे—

I saw what was taking place before I came away. I have read the detailed accounts of oppression, which the Poona newspapers, avoiding general declamation, have been printing during the past three months and since I arrived in London, I have received many private letters from Poona, giving fresh instances of atrocious outrage and begging me to intervene in the matter.[35]

मेरे आने से पूर्व, जो कुछ वहाँ हो रहा था, मैंने देखा था। पिछले मास समाचार-पत्रों में सख्ती के जो समाचार छपे थे, मैंने पढ़े थे। मुझको बहुत-से निजी पत्र भी आए हैं जिनमें मुझे निर्दयता एवं बलात्कार के ताजे समाचार लिखे गए हैं और उनको दूर कराने के लिए लिखा गया है।

इसके आगे संवाददाता से उन्होंने उन कृत्यों का उल्लेख किया था, जो पूना में प्लेग-अधिकारियों ने किए थे।

समाचार-पत्र में छपे इस वक्तव्य पर पार्लियामेंट में प्रश्न पूछे गए। सैक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया लॉर्ड हैमिल्टन ने गोखले के आरोपों को गलत और निन्दा योग्य कहा। इस पर गोखले ने अपने वक्तव्य को वापस ले लिया और क्षमा माँग ली।

ऐसे थे श्री गोखले जिनको जवाहरलाल जी ने राजनीतिज्ञ और सार्वजनिक कार्य में रुचि लेने वाला कहा था।

जवाहरलाल जी के फूहड़पन का एक और उदाहरण दिया जा सकता है। आप अपनी स्वरचित जीवनी में लिखते हैं—

Mr. Sastri, however gave me a great shock in a little matter quite unconnected with politics. He was addressing a students meeting in Allahabad and he told them to be respectfull and obedient to their teachers and professors and to observe carefully all the rules and regulations laid down by constituted authority. All this goody-goody talk did not appeal to me much; it seemed

मिस्टर श्रीनिवास शास्त्री के इलाहाबाद में विद्यार्थियों की सभा में कहे वाक्यों से मुझको बहुत सदमा पहुँचा। ये वाक्य राजनीति के साथ सम्बन्ध नहीं रखते थे। उन्होंने कहा कि विद्यार्थियों को अपने शिक्षकों और प्रोफेसरों के प्रति आदरयुक्त व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

very platitudinous and somewhat undesirable, with all its stress on authoritarianism....

Mr. Sastri went on and called upon the boys to report each others sins of omission and commission immediately to the authorities. In other words they were to spy on each other and play the part of informers. These hard words were not used by Mr. Sastri but their meaning seemed to the clear, and I listened aghast to this friendly counsel of great leader.

रखना चाहिए और उनको उचित अधिकारियों द्वारा बनाए नियमोपनियमों का सावधानी से पालन करना चाहिए। ये सब चिकनी-चुपड़ी (goody-goody) बातें मुझे भली प्रतीत नहीं हुईं। मुझको ये वागाडम्बर और अनुचित लगीं। इसमें बल था अधिकारमयता पर....

मिस्टर शास्त्री ने यह भी कहा कि लड़कों को अपने साथियों के दोष और अपराध अधिकारी को तुरन्त बता देने चाहिए। दूसरे शब्दों में, उनको एक दूसरे पर खुफिया पुलिस का काम करना चाहिए और मुखबिरों का काम करना चाहिए। ये सख्त शब्द शास्त्री जी ने प्रयोग तो नहीं किए, परन्तु उनके अर्थ स्पष्ट थे। और मैं भौचक्का हो इस बड़े नेता की शिक्षा को सुनता रहा।

कोई भी भला मनुष्य श्री शास्त्री द्वारा विद्यार्थियों को दी सम्मति की निन्दा नहीं कर सकता। वास्तव में जवाहरलाल जी का मस्तिष्क इंग्लैंड के दूषित वातावरण में शिक्षा प्राप्त कर आया था। वहाँ विद्यार्थी सब प्रकार की बदमाशियाँ करते हैं और अधिकारियों को पता तक नहीं चलता; और उनकी बदमाशियाँ बढ़ती जाती हैं। वहाँ यदि किसी लड़के को कोई चोरी करते देख ले तो उस चोरी की बात न बताना, चरित्र की दृढ़ता मानी जाती है।

जवाहरलाल जी भी ऐसा ही मानते प्रतीत होते हैं। यह गलत बात है। और इस गलत मनोवृत्ति को लेकर ही वे भारत में राज्य चलाते रहे हैं। इसका परिणाम ही था कि इनके चारों ओर बेईमान, बदमाश, रिश्वतखोर, चोर और डाकू एकत्रित हो गए थे और ये अपने मन्त्रीत्व काल में ऐसे लोगों की भरसक रक्षा करते रहे हैं और उन पर आरोप लगाने वालों को चरित्रहीन मानते रहे हैं। स्वतन्त्र भारत में विद्यार्थियों में देखी जाने वाली उच्छृंखलता भी इसी मानसिक अवस्था का परिणाम है।

यहाँ तो इतना ही बताने से प्रयोजन है कि कितने भयंकर विचार लेकर जवाहरलाल जी भारत में आए थे। यहाँ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि श्रीनिवास शास्त्री का उक्त व्याख्यान राजनीति के विषय में नहीं था, प्रत्युत केवल चरित्र सम्बन्धी दोषों के विषय में था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 3 ::

जवाहरलाल जी के हिन्दुस्तान में आने के समय, यहाँ वे लोग जो देश को स्वतन्त्र देखना चाहते थे, क्रान्तिकारी कहाते थे। जो भी ऐसे लोग थे, उस समय वे या तो जेलों में थे अथवा पकड़े जाने के भय से देश छोड़कर भाग गए थे। इस परिस्थिति पर नरम दल के लोग बगलें बजा रहे थे। ये लोग अंग्रेज़ी राज्य को ईश्वर की देन मानते थे। इनमें मोतीलाल जी भी थे। जवाहरलाल जी अपने पिता के विषय में लिखते हैं :

'ये (मोतीलाल जी) स्वाभाविक रूप में नरम दल वालों में सम्मिलित हो गए थे। उनको ही वे जानते थे। वे उनके व्यवसाय के साथी थे। वे अपने प्रान्त के कांग्रेस अधिवेशन के प्रधान बने तो उन्होंने बंगाल और महाराष्ट्र के क्रान्तिकारियों की घोर निन्दा की थी।'[37]

जवाहरलाल जी के विषय में तो हमने बताया है कि वे गोखले के प्रशंसकों में थे। उनको, उस काल में देश में चल रहे क्रान्तिकारी आन्दोलनों का ज्ञान भी नहीं था। पंजाब में जिनका नाम बच्चे-बच्चे के मुख पर था, जवाहरलाल जी उनके विषय में सर्वथा अनभिज्ञ थे। जवाहरलाल जी स्वदेशी आन्दोलन इत्यादि को प्रतिक्रियावादी और मज़हबी राष्ट्रवादी मानते थे।

इस पर भी, देश के विचार बदल रहे थे। तत्कालीन समाचार-पत्र देश-विदेश के समाचार प्रकाशित करते थे। सावरकर जी का मारसेल्ज बन्दरगाह में खड़े हुए जहाज़ से छलांग लगा कैद से भाग जाना और समुद्र में तैरते हुए किनारे पर पहुँच लापता हो जाने का यत्न करना और फिर पकड़कर हिन्दुस्तान में लाया जाना, यहाँ उन पर मुकदमा चलाकर उनको पचास वर्ष का निरन्तर चलने वाला कठोर दण्ड—ये समाचार पढ़े जाते थे और देशभक्तों के सिर गर्व से ऊँचे हो जाते थे। जवाहरलाल जी ने इतना कुछ लिखा, परन्तु अपने देश पर परवानों की भाँति बलि होने वालों के विषय में उनके पास दो शब्द भी नहीं थे।

यों तो इस समय भी देश में ब्रिटिश राज्य का विरोध चल रहा था। इन दिनों तक उतना उग्र नहीं था, जितना सन् 1905 से 1909 तक था। 1912 में लॉर्ड हार्डिंग पर दिल्ली में बम्ब चला था। लाहौर में दो स्थानों पर बम्ब फटे थे। इस पर दिल्ली में बम्ब केस के नाम से मुकद्दमा चला था, जिसमें अवधबिहारी तथा बसन्त कुमार इत्यादि अभियुक्त थे। भारत की सब अनर्गल बातों को लिखने वाले जवाहरलाल इसके विषय में कुछ नहीं लिख सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस काल की अपनी एक बात जवाहरलाल जी इस प्रकार लिखते हैं, ''मैंने दिल बहलाने के लिए शिकार में रुचि लेनी आरम्भ की। इस खेल के लिए न तो मुझमें रुचि थी, न ही योग्यता। मैं बाहर जंगल में घूमना पसन्द करता था, परन्तु जानवरों को मारना नहीं। सत्य तो यह है कि मेरी ख्याति यह थी कि मैं बिना रक्त बहाए शिकारी हूँ। एक बार कश्मीर में मैंने घटनावश एक छोटे-से रीछ को मार गिराया था। एक और घटना हुई। एक छोटा-सा हिरण मारा गया और उसने मेरा रहा-सहा साहस शीतल कर दिया। वह छोटा-सा जन्तु मरणासन्न मेरे पाँवों के पास पड़ा था और अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू भरे हुए मेरी ओर देख रहा था। ये आँखें अनेक बार मुझको स्मरण आती रहती हैं।''[38]

ऐसे सज्जन चीनी आक्रमण के समय क्या विचार करते होंगे, यह वर्णनातीत है।

:: 4 ::

वर्तमान मुसलमान प्रवृत्ति का जन्म-स्थान अलीगढ़

यह हम ऊपर बता आए हैं कि इण्डियन नेशनल कांग्रेस के प्रारम्भिक नेतागण सरकार-भक्त, अंग्रेज़ी सभ्यता के भक्त, अंग्रेज़ी राज्य के भक्त और अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तान में ईश्वर की देन मानने वाले थे।

यह बात सर ह्यूम के ही समय में कांग्रेस ने स्वीकार कर ली थी कि मुसलमानों को कांग्रेस में सम्मिलित करने के लिए उनके डेलिगेटों की संख्या पूर्ण डेलिगेटों की संख्या के दशांश अवश्य होगी।

यह क्यों था? इसका उत्तर है। मुसलमानों में मुसलमानों के नाते विशेष अधिकार पाने की प्रवृत्ति इस्लामी राज्य काल से ही चली आ रही है। इस्लामी राज्य तो गया, परन्तु यह प्रवृत्ति नहीं गई। कांग्रेस के नेता यह जानते थे। सर ह्यूम ने उनको एक सुझाव दिया होगा, तभी तो यह स्वीकार किया गया। यह भी सम्भव है कि कुछ उपस्थित मुसलमान डेलीगेटों ने यह सुझाव दिया हो और यह स्वीकार कर लिया गया हो। कांग्रेस में यह दूषित प्रवृत्ति इसके जन्म-काल से थी और आज तक उपस्थित है।

इस विषय में 'वहाबी' आन्दोलन, जो 1857 से भी पहले आरम्भ हुआ था, का ज्ञान लाभकारी सिद्ध होगा। महात्मा गांधी की जीवनी लिखने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री प्यारेलाल लिखते हैं कि 'वहाबी' आन्दोलन की सिक्ख आन्दोलन के साथ तुलना की जा सकती है। यह नहीं लिखा कि कौन-सा सिक्ख आन्दोलन? हमारा मत है कि यह तुलना मिथ्या है।

वास्तव में वहाबी आन्दोलन हिन्दुस्तान में इस्लामी राज्य वापस लाने के विचार से था। मुसलमानों में मज़हब और राजनीति में भेदभाव नहीं है। उनके लिए ये दोनों, एक ही समस्या के दो पक्ष हैं। इस्लाम राजनीति का पोषक है और राजनीति इस्लाम की।

'वहाबी' इस्लाम में सुधार का नाम लेकर राजनीति में आए थे। मुसलमान इस्लामी राज्य में, मुसलमान के नाते विशेष अधिकार रखते थे। राज्य बदल जाने से उनके विशेष अधिकार विलुप्त हो गए थे। 'वहाबी' आन्दोलन उनको वही विशेष स्थिति वापस लाने के लिए था। सर सैयद अहमद भी 'वहाबी' मानसिक अवस्था रखते थे।

श्री प्यारेलाल लिखते हैं—

The existence side by side of these hostile creeds (Hindu and Muslim) is one of the strong points in our political position in India. The better classes of Mohammedans are a source to us of strenght and not of weakness. The Mohammedans constitute a comparatively small but energetic minority of the population whose political interests are identical with ours.[39]

हिन्दू मुसलमान दो परस्पर विरोधी मज़हबों का हिन्दुस्तान में होना हिन्दुस्तान की राजनीतिक स्थिति में हमारा बहुत सहायक है। मुसलमानों में उच्च श्रेणी के लोग हमारी शक्ति में सहायक हैं, दुर्बलता में नहीं। मुसलमान एक छोटा, परन्तु शक्तिशाली समुदाय है, जिसके राजनीतिक हित हमसे मेल खाते हैं।

ये शब्द तत्कालीन यू.पी. के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर जोन स्ट्रेची के हैं। श्री प्यारेलाल ने इन्हें अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है।

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मुसलमान हिन्दुओं के विरोधी थे और अंग्रेज़ भी समझ गए थे कि हिन्दू उनके विरोधी हैं। अतः उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध अपना सहायक बनाने का यत्न किया। उन्हें सर सैयद अहमद एक अच्छा पिट्ठू मिल गया और उसे प्रेरणा देकर उन्होंने अलीगढ़ में ऐंग्लो ओरिएन्टल कालेज खुलवाया और एक कर्नल बैक को उस कालेज का प्रिंसिपल बनाकर भेज दिया। कर्नल बैक ने सर सैयद को समझा दिया कि मुसलमानों के हित और अंग्रेज़ों के हित समान हैं। हिन्दुस्तान में हिन्दू दोनों के शत्रु हैं।

बस फिर क्या था! सर सैयद अहमद अंग्रेज़ों के भक्त तो पहले से ही थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब वे हिन्दुओं से भी तटस्थ रहने के लिए अपने भाई-बन्धुओं को कहने लगे।

सन् 1885 में सैयद साहब ने कांग्रेस की अवहेलना की और पीछे उसका विरोध आरम्भ कर दिया। सन् 1885 में उन्होंने अपने एक भाषण में मुसलमानों को उन्नति की योजना बताते हुए कहा—

Government will most certainly attend to it (jobs of colonels and majors in the Army) provided you do not give rise to suspicions of disloyalty.[40]

सरकार विशेष रूप से ध्यान देगी (सेना में मेजर व कर्नल रैंक आपको मिले) शर्त यह रहेगी कि आप अवज्ञा के सन्देह को न पनपने दें।

कर्नल बैक की प्रेरणा के उपरान्त सर सैयद साहब ने अपने मित्र कर्नल ग्राहम को लिखा था—

I have undertaken a heavy task against the so-called Indian National Congress and have formed an Association. The Indian United Patriotic Association.[41]

मैंने इण्डियन नेशनल कांग्रेस का विरोध करने का एक बहुत कठोर काम को उठाया है और इण्डियन युनाइटिड पैट्रिऔटिक नाम से एक संस्था बनाई है।

His (Sir Syed Ahmed's) education was wholly along orthodox lines. At the age of twenty-one he entered Government service. A man of marked ability and a prolific writer, he published several theological tracts, urging reform of Muslim religion somewhat along 'Wahhabi' lines, and some historical works.[42]

उसकी (सर सैयद अहमद की) शिक्षा पुराने (इस्लामी) ढंग की थी। इक्कीस वर्ष की आयु में वह सरकारी (अंग्रेज़ी सरकार की) नौकरी पा गया। वह प्रखर योग्यता रखता था। उसने कई मज़हबी पुस्तिकाएँ लिखी थीं, जिनमें उसने इस्लाम के सुधार को वही दिशा देने का यत्न किया था, जिस दिशा में वहाबी सुधार चाहते थे। उसने कुछ इतिहास के विषय में भी लिखा है।

इससे यह बात स्पष्ट है कि सर सैयद अहमद वही चाहते थे, जो वहाबी चाहते थे। वे चाहते थे कि मुसलमानों को मुसलमान होने के नाते विशेषाधिकार प्राप्त हों।

यह सन् 1940 के लगभग की बात है। उस समय वे सरकारी नौकरी में थे और मज़हबी पुस्तकें लिख रहे थे।

वहाबी आन्दोलन और सर सैयद अहमद के आन्दोलन में अन्तर यह था कि जहाँ वहाबी, सरकार से झगड़ा कर अपना उद्देश्य प्राप्त करना चाहते थे, वहाँ सैयद साहब सरकार के सहयोग से वही कुछ प्राप्त करना चाहते थे। ब्रिटिश सरकार हिन्दू कौम को विनष्ट करने का निश्चय कर चुकी थी। उसे इस बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विश्वास हो चुका था कि उनके राज्य को सबसे बड़ा भय हिन्दुओं से है। अत: वे इसकी जड़ों में तेल देने के लिए उस शताब्दी के आरम्भ से ही यत्न कर रहे थे। मैकॉले साहब की शिक्षा सम्बन्धी योजना और मैक्समुल्लर का धर्म-शास्त्रों का भ्रष्ट अनुवाद हिन्दुओं को सदा के लिए दास बना रखने की नीयत से ही था।

जब सर ह्यूम ने अपनी जाँच की रिपोर्ट उपस्थित की तो दो काम किए गए। एक तो इण्डियन नैशनल कांग्रेस की स्थापना की गई और दूसरे, मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध संगठित किया गया।

सन् 1871 में Sir W.W. Hunter ने अपनी प्रख्यात पुस्तक जो उन्होंने हिन्दुस्तानी मुसलमानों पर लिखी थी, में लिखा था कि हिन्दुस्तान में सब समुदायों को ब्रिटिश विरोधी रहने देना अत्यन्त भयानक है। सरकार की नीति मुसलमान के विषय में अति मूर्खतापूर्ण है। सरकार को चाहिए कि मुसलमानों को अधिक शिक्षा की सुविधाएँ देकर अपनी ओर खींचने का प्रयास करे।

इन सब उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि हिन्दू और मुसलमान परस्पर विरोधी मज़हबों को मानते थे। यह अंग्रेज़ों के आने से पहले से ही था। हिन्दुस्तान में इस्लामी राज्य के दिनों में मुसलमान विशेष अधिकार रखते थे। इस्लामी राज्य के चले जाने से वे अधिकार विलुप्त हो गए थे। उन अधिकारों को प्राप्त करना था और उनके लिए सर सैयद अहमद ने यत्न किया था।

सर सैयद चाहते थे कि मुसलमान युवक सरकारी नौकरियों में लिये जाएँ और सेना की उच्च पदवियाँ पाएँ। इसके लिए उन्होंने अलीगढ़ में एक कालेज खोला। इस कालेज के विद्यार्थियों के लिए, मुसलमान होने के नाते, सर सैयद विशेष पदवियों की माँग करने लगे। इण्डियन नैशनल कांग्रेस में इस प्रकार की माँग वे कर नहीं सकते थे। अत: पहले वे कांग्रेस से तटस्थ हो गए और पीछे उसका विरोध करने लगे।

सर सैयद अहमद का देहान्त सन् 1898 में हो गया, परन्तु उनसे चलाई परम्परा चलती ग़ई। उनसे खोला गया कालेज और इस्लाम की विशेष ढंग की शिक्षा दी जाती रही। उनकी विचारधारा को चलाने वालों में सबसे विख्यात अलीगढ़ कॉलेज के सैक्रेटरी मोहनसिंह-उल-मुल्क सैयद महदी अली थे। उन्होंने विख्यात मुस्लिम डेपुटेशन की योजना चलाई थी, जो 1906 के वायसराय लॉर्ड मिन्टो से मिला था।

इस डेपुटेशन के सरगना सर आगा खां थे। ये वायसराय लॉर्ड मिन्टो से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिमला में 1906 की पहली अक्तूबर को मिले। इस डेपुटेशन में ये शब्द उल्लेखनीय हैं—

....the Mohammedan community should be represented as a community ....The position of Mohammedans should be estimated, not merely on their numerical strength but in respect to the political importance....of the Community and the service it rendered to the Empire.[43]

मुसलमान समुदाय का प्रातिनिध्य समुदाय के आधार पर हो........इस समुदाय की, हिन्दुस्तान की राजनीति में स्थिति इसकी जनसंख्या के आधार पर न रखी जाए। यह इस समुदाय के देश में राजनीतिक महत्व और ब्रिटिश साम्राज्य के लिए इसकी सेवाओं के अनुरूप हो।

इस माँग के उत्तर में वायसराय का कहना था—

I can only say that the Mohammedan community may rest assured that their political rights and interests as a community will be safeguarded by any administrative reorganisation with which I am concerned.[44]

मैं केवल यह कह सकता हूँ कि मुसलमान समुदाय को विश्वास रखना चाहिए कि उनके राजनीतिक हित और अधिकार, भावी शासन सुधारों में सब प्रकार से सुरक्षित रहेंगे।

इस घटना को राजनीतिज्ञों ने भारत के भाग्य में एक महान करवट माना। इस दिन को ऐतिहासिक माना गया।

वायसराय के एक अफसर ने वायसराय की पत्नी को एक पत्र में यह लिखा—

I must send Your Excellency a line to say that a very big thing happened today, a work of statemanship that will affect India and Indian history for many a long year. It is nothing less than the pulling back of 62 millions of people from joining the ranks of the seditious opposition.[45]

मैं हुजूर को एक पंक्ति यह कहने के लिए लिखना चाहता हूँ कि यहाँ आज एक महान् बात हुई है। एक राज्य मर्मज्ञता का कार्य हुआ है, जिसका प्रभाव हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के इतिहास में दीर्घ-काल तक रहेगा। यह बासठ मिलियन (छः करोड़ से अधिक) लोगों को विरोधी बागियों के साथ मिलने से रोकने में सफल होगा।

बासठ मिलियन का अभिप्राय मुसलमान जनता से है और बागी विरोधियों से अभिप्राय हिन्दुओं से है।

इस डेपुटेशन के उपरान्त ही मुस्लिम लीग बनी और उसके उद्देश्यों में यह निश्चय किया गया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह सत्य है कि अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों ने 1-10-1906 को एक ऐसी गहरी चाल चली थी कि जिसका परिणाम आज 1968 में भी भोगा जा रहा है और कदाचित् सदियों तक भोगा जाएगा, परन्तु हमारा मत है कि इस चाल का फल ब्रिटिश साम्राज्य को नहीं मिला। मुसलमान अंग्रेज़ का मित्र नहीं बना। हिन्दुस्तान में वह अंग्रेज़ का मित्र बना रहा, परन्तु पाकिस्तान बनते ही वह भूमण्डल की बड़ी शक्तियों से लाभ उठाने लगा, बिना इस बात का विचार किए कि इंग्लैंड का हित किधर है।

To promote among the Mussalmans of India, feelings of loyalty to the British Government, to remove any misconception that may arise as to the intention of the Government with regard to any of the measure, to protect and advance the political rights and interests of the Mussalmans of India.[46]

हमारा यह कहना है कि मुसलमान प्रायः सब-के-सब, अपने लिए विशेषाधिकार के लिए लालायित थे। सर सैयद की खूबी यह समझने में थी कि वे विशेषाधिकार कैसे सुरक्षित किए जा सकते हैं। यह अंग्रेज़ों के प्रति सहानुभूति से इतना नहीं, जितना हिन्दुओं का विरोध करने से था। अंग्रेज़ हिन्दू के खिलाफ था।

कर्नल बैक ने यह दिशा सर सैयद को दी थी। यह दिशा विचार की गई सन् 1885 में। इसका रूप प्रकट हुआ सन् 1906 में। इसने कांग्रेस की मति भ्रष्ट की सन् 1915-16 में। इसका परिणाम समक्ष आया सन् 1941 में और इसकी आंशिक रूप में पूर्ति हुई सन् 1947 में।

विचार यह था कि मुसलमानों को विशेषाधिकार मिलने चाहिएँ, वैसे ही जैसे उनको इस्लामी राज्य में प्राप्त थे। ये मिल नहीं सकते थे, जब तक पुनः 'शरा' का राज्य स्थापित न हो जाए। यह पूर्ण हिन्दुस्तान में प्राप्त तो हो नहीं सका। हाँ, यह स्वप्न पाकिस्तान में बहुत सीमा तक प्राप्त हो गया है।

इस विचार को तो मुसलमानों ने चलाया। अंग्रेज़ों ने इसका समर्थन किया, और कांग्रेस ने अपनी दुर्बल नीति के कारण से माना। इन दुर्बल नीति के पिता और उसके प्रिय शिष्य ने इस विचार को अपने जीवन-काल में सफल कराने में क्या भाग लिया, यही इस पूर्ण पुस्तक का विषय है।

हमने श्री नेहरू के बाल्य-काल और विद्यार्थी जीवन का संक्षिप्त चित्र पिछले अध्याय में दिया है। उससे यदि कुछ बात स्पष्ट होती है तो यह कि श्री नेहरू जी एक कुण्ठित बुद्धि रखते थे। उनका बाल्य-काल ऐसा था कि उनको संसार का ज्ञान हो सकता ही नहीं था। वे अहमन्यता के पुंज, इतिहास तथा मनोविज्ञान से अनभिज्ञ थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वे नेता कैसे बने, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 5 ::

सन् 1914 में इंग्लैंड और जर्मनी का युद्ध हुआ। हिन्दुस्तान के निम्न कोटि की बुद्धि के लोग इस युद्ध में इंग्लैंड की पराजय सुन-सुनकर प्रसन्न होते थे। श्री जवाहरलाल जी भी इससे प्रसन्न थे। वे अपनी स्वरचित जीवनी में लिखते हैं—

There was little sympathy with the British in spite of loud professions of loyalty. Moderate and Extremist alike learnt with satisfaction of German victories. There was no love for Germany of course, only the desire to see our own rulers humbled. It was the weak and helpless man's idea of vicarious revenge. I suppose most of us viewed the struggle with mixed feelings.[47]

ऊँचे-ऊँचे सरकार-भक्ति के नारे लगाते हुए भी ब्रिटिश सरकार के साथ किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं थी। नरम दल और गरम दल वाले, दोनों अंग्रेज़ की पराजय के समाचार सुन प्रसन्न होते थे। यह सत्य है कि जर्मनी के साथ कोई प्रेम नहीं था। यह भावना अपने शासकों को अपमानित तथा पराजित होते देखकर उत्पन्न हुई थी। यह अपने शत्रु को किसी दूसरे से पिटते देख एक दुर्बल व्यक्ति की भावना थी। मैं समझता हूँ कि हममें से प्रायः इस युद्ध को मिश्रित भावनाओं से देखते थे।

यह बात कि नरम और गरम दल, दोनों इस युद्ध को एक ही भाव से देखते थे, गलत है।

लाला लाजपतराय उन दिनों, व्यावहारिक रूप में देश से निर्वासित, अमरीका में थे। वे वहाँ बैठे हुए भी हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज़ों के युद्ध प्रयास में सहायता देने को प्रेरणा दे रहे थे। श्री तिलक और गांधी जी भी युद्ध कार्य में सहायता देने की बात कर रहे थे। लाला जी का एक लेख 'मॉडर्न रिव्यू' में छपा था। उसमें उन्होंने हिन्दुस्तानी युवकों से अनुरोध किया था कि हिन्दुस्तान का भला इसमें ही है कि वे सेना में भरती हों।

1913 में लोकमान्य तिलक के जेल से छूटने पर, देश में पुनः चहल-पहल आरम्भ हो गई थी। देश में किसी प्रकार का आन्दोलन खड़ा करने के लिए होमरूल लीग (दो-दो) स्थापित हो गईं। एक तिलक जी ने चलाई और दूसरी मिसेज़ ऐनी बिसेन्ट ने। कांग्रेस पर अभी भी सरकार-भक्तों का अधिकार था और होमरूल लीग उसके विरोध में बनाई गई थी। तिलक जी जानते थे कि सरकार-भक्तों को अभी कांग्रेस से निकालना सम्भव नहीं। मिसेज़ ऐनी बिसेन्ट भी कुछ ऐसा ही अनुभव करती थीं। इसी कारण दोनों ने स्वतन्त्र रूप में होमरूल लीग चालू कर दी। ये दोनों 'लीग' परस्पर सहयोग से कार्य कर रही थीं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके एक हो जाने की आशा की जा रही थी।

इस समय सरकार-भक्तों ने देखा कि तिलक जी को अब कांग्रेस से बाहर रखना सम्भव नहीं। देश का वातावरण बदल रहा था। अब तो अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोग भी, कहे जाने वाले नरम दल वालों से अरुचि प्रकट करने लगे थे। इसके साथ ही फिरोज़शाह मेहता और गोखले का देहान्त हो गया। इससे तो इन सरकार-भक्तों की कमर टूट गई।

इस बदलती परिस्थिति में जर्मन-युद्ध ने अपना रंग चढ़ाया। यूरोप में टर्की जर्मनी की ओर हो गया और इंग्लैंड ने टर्की पर आक्रमण कर दिया। इससे हिन्दुस्तान के मुसलमान सरकार के विपरीत भड़क उठे। यह मुसलमानों की शिक्षा में है कि उनके लिए सब प्रकार के सम्बन्धों से इस्लाम का सम्बन्ध प्रबल है। सन् 1906 से लेकर 1915 तक मुसलमान, सरकार अंग्रेज़ी के वफादार बने रहे थे। ये हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारियों और तिलक इत्यादि के विरोधी हो रहे थे। इनको हिन्दुओं के साथ सहयोग करने की अपेक्षा सरकारी संरक्षण अधिक पसन्द था। अंग्रेज़ी सरकार मुसलमानों को स्वराज्यपंथियों का विरोध करने में प्रोत्साहन देती थी और इसी उद्देश्य से उनको राजनीतिक अधिकारों में अधिमान (preference) दिया जा रहा था।

अब अंग्रेज़ों के टर्की पर आक्रमण से हिन्दुस्तान के मुसलमान सरकार का विरोध करने लगे।

मुसलमानों में भी कुछ नए नेता उत्पन्न हो गए थे, मौलाना मुहम्मद अली, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, मौलाना मज़रूल हक़। ये सब कूक लगाने लगे थे कि मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ मिलकर साझा मोर्चा बनाना चाहिए।

मुसलमानों के इस विचार से नरम दल अर्थात् सरकार-भक्त कांग्रेसियों की जान में जान आ गई और उन्होंने 1915 में कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में एक कमेटी बनाई, जो हिन्दू-मुसलमानों का साझा मोर्चा बनाने पर विचार करे। इस कमेटी के कर्ता-धर्ता मोतीलाल जी नेहरू थे। इस कमेटी की बैठक इलाहाबाद में मोतीलाल जी के घर पर हुई और उसमें कांग्रेस की ओर से पहली बार मुसलमानों को पृथक् प्रतिनिधित्व देना स्वीकार किया गया।

एक ओर तो सरकार-भक्तों ने, कांग्रेस में मुसलमानों को लाकर उग्र दल वालों को नियंत्रण में रखने का प्रबन्ध कर लिया। मुसलमान उग्रपंथियों के साथ नहीं जा सकते थे। दूसरी ओर मुसलमानों को पृथक् प्रतिनिधित्व देकर सरकार की नीति को चालना दे दी। उग्र दल वालों को यह चुनौती दे दी कि यदि स्वराज्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त करना है तो मुसलमानों के साथ साझा मोर्चा बनाना होगा और इसके लिए उनको उन्हें पृथक् प्रतिनिधित्व देना होगा। इस प्रस्ताव का पं. मदन मोहन मालवीय ने विरोध किया था।

इस प्रकार नरम दल वालों ने एक पत्थर से दो शिकार किए। एक तो कांग्रेस में उनका प्रभुत्व बना रहा, तथा दूसरे, वे सरकार को प्रसन्न कर सके कि उन्होंने गरम दल वालों को मुसलमानों के प्रति वही नीति मानने पर तैयार कर लिया है, जो सरकार चाहती था।

यहाँ नरम दल और गरम दल की विवेचना कर देने से पाठकों को समझ आ जाएगा कि 1916 में नरम दल के लोगों ने कैसे गांधी आदि को नेता पद पर लाकर अपने को बचा लिया।

नरम दल वालों के विचार की एक झलक श्री आर.सी. दत्त की पुस्तक The Economic History of British India (Under British Rule) में मिलती है। श्री आर.सी. दत्त लिखते हैं—

I was brought up among those who had been in school and college in 1837 when the Queen ascended the throne; and I do not exaggerate facts when I state that nothing could exceed the appreciation of English literature, thought and character, nothing could exceed the loyalty to the British rule which these men felt and expressed, in their everyday conversation. ....and a faith in English truth was a part of their beliefs.[48]

मैं उन लोगों में रहता हुआ बड़ा हुआ हूँ जो 1837 में स्कूल और कालेज में पढ़ते थे, जब मलिका (विक्टोरिया) राजगद्दी पर बैठी थी और जब मैं यह लिखता हूँ कि वे लोग अंग्रेज़ी साहित्य, विचार और चरित्र की बहुत प्रशंसा करते थे तो अतिशयोक्ति नहीं करता। वे लोग ब्रिटिश राज्य के प्रति भक्ति की इतनी प्रशंसा करते थे कि उससे अधिक हो नहीं सकती थी और उनमें अंग्रेज़ी सच्चाई पर विश्वास और भरोसा था।

यह भावना नरम दल वालों में अन्त तक चलती रही थी। यदि हम कह सकते हैं कि यही बात जवाहरलाल नेहरू, पंडित मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी इत्यादि नेताओं में भी देखी जा सकती है यह हम गलत नहीं कह रहे। सन् 1916 के मुसलमानों से समझौते के उपरान्त कांग्रेस के नेताओं में अंग्रेज़ी साहित्य, अंग्रेज़ी विचार और चरित्र पर श्रद्धा कम नहीं हुई थी। इन्हीं विचारों की सीधी प्रतिक्रिया ही सत्याग्रह आन्दोलन थे। यहाँ तक कि 1942 में भी बिना किसी प्रकार की तैयारी के महात्मा गांधी जी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन चलाया जो अंग्रेज़ पर श्रद्धा, उनकी सच्चाई पर विश्वास और भरोसे का प्रतीक ही था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गरम दल वाले ऐसा विचार नहीं करते थे। वे अंग्रेज़ को मीठी बातें करने वाले, परन्तु तपेदिक की बीमारी समझते थे। वे स्पष्ट कहते थे कि उन्हें इन विदेशियों से मुक्ति पानी है। उनका यह विश्वास था कि अंग्रेज़ स्वराज्य स्वेच्छा से नहीं देंगे।

गरम दल वालों में दो पक्ष थे। एक क्रान्तिकारी थे, जो हिंसात्मक कार्यवाही करना पसन्द करते थे। इस परम्परा में 1857 के संग्राम में और उसके पीछे मृत्यु का आलिंगन करने वाले सहस्त्रों देशभक्त हैं। उनके उपरान्त वासुदेव बलवंतराय फड़के, कूका पंथ के गुरु रामसिंह, चाफेकर भाई, सेनापति बापट, होती लाल वर्मा, खुदीराम बोस, कन्हाईलाल दत्त और गदर पार्टी तथा कामागाटामारू के सहस्त्रों शहीद हैं। इनकी परम्परा सन् 1919 के उपरान्त भी चलती रही थी। श्री भगतसिंह, सुखदेव, राज गुरु और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस तक यह परम्परा चली है।

गरम दल वालों का एक दूसरा कार्य भी था। यह था क्रान्ति के लिए जनमत तैयार करने वालों का। इस परम्परा में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, श्री बाल गंगाधर तिलक, श्री वी.डी. सावरकर, लाला लाजपतराय, सरदार अजीतसिंह, लाला हरदयाल इत्यादि हैं। देश इन नेताओं का मान करता था, परन्तु नेता बने नरम दल वाले गांधी, जवाहरलाल इत्यादि। इसकी विवेचना आगे चलकर करेंगे।

लखनऊ में 1916 के निश्चय से सरकार-भक्त और स्वराज्य पंथी एक मंच पर आ गए। सरकार-भक्तों का विचार था कि मुसलमानों को साथ लेकर वे नरम दल वालों को नियंत्रण में रख सकेंगे। उनके विचार में मुसलमान सरकार-भक्त थे, परन्तु मुसलमान तो गरम दल वालों से भी अधिक सरकार विरोधी निकले। उनके लिए ब्रिटेन का टर्की पर आक्रमण उनके मज़हब पर आक्रमण था। परिणाम यह हुआ कि नरम दल वालों की अवस्था वह हो गई जो कड़ाही से उछलकर चूल्हे में कूदने वाले की होती है।

स्वराज्यपंथियों को भी, मुसलमानों की कांग्रेस से सुलह हो जाने से, स्वराज्य प्राप्ति में कुछ लाभ नहीं हुआ। उनके लिए 'नानी के विवाह' कर लेने वाली बात हो गई।

हमारा यह कहना है कि 1916 के मुसलमानों से समझौते के परिणामस्वरूप न तो नरम दल वालों को लाभ हुआ, न ही गरम दल वालों को। देश को अपार हानि हुई। यह पुस्तक के अगले अध्यायों में स्पष्ट करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन् 1916 के समझौते के उपरान्त महात्मा गांधी, जो उस समय मिस्टर गांधी मात्र थे, ख्याति प्राप्त करने लगे। ये उस समय ब्रिटिश सरकार के लिए सेना में भरती करा रहे थे। उनका उद्देश्य केवल यह था कि ब्रिटिश सरकार पर विपत्ति आई है और सब भले लोगों का यह कर्त्तव्य है कि उसकी सहायता करें।

तिलक जी भी हिन्दू युवकों के सेना में भरती होने के पक्ष में थे, परन्तु उनका उद्देश्य था कि हिन्दुस्तानी युवकों को अधिक से अधिक 'कमीशन' मिलनी चाहिए।

लाला लाजपतराय भी पढ़े-लिखे युवकों को सेना में भरती होने के लिए कह रहे थे। उनका कहना था कि सेना का काम क्षत्रिय धर्म का अंग है और यह काम देशभक्त युवकों को सम्हालना चाहिए। यह स्पष्ट था कि इनकी बात गांधी जी से भिन्न थी।

यह था नवीन युग, जिसका आरम्भ 1916 में हुआ माना जाता है। वास्तव में स्वराज्य देने की परिस्थिति में देश को दुर्बल रखने और उसमें अपनी टाँग अड़ाए रखने का ब्रिटिश सरकार का यह आयोजन था और सरकार-भक्त कहे जाने वाले नरम दल वालों ने इसमें सरकार की भारी सहायता कर दी थी। इस दिन के उपरान्त मुसलमान एक पृथक् जाति स्वीकार हो गई।

:: 6 ::

हमने लिखा है कि मोतीलाल जी सरकार-भक्त दल के मान्य सदस्य थे। प्रश्न उपस्थित होता है कि जवाहरलाल जी तब क्या थे? यह तो स्पष्ट ही है कि मोतीलाल जी और जवाहरलाल जी में अन्तर था। यह अन्तर जहाँ प्रतिभा, कानूनी ज्ञान, सांसारिक अनुभव और आयु में था, वहाँ हैरो और कैम्ब्रिज में पढ़े होने का भी था। जवाहरलाल जी की युवावस्था उनको कुछ काम करने को कहती थी। साथ ही एकदम अंग्रेज़ी आचार-विचार रखते हुए, प्रकृति से दब्बू (timid) और इतिहास का हीन ज्ञान रखने के कारण वे हिन्दुस्तान में कोई भी साथी नहीं पा रहे थे। क्रान्तिकारी तो वे अपनी दब्बू प्रकृति के कारण बना नहीं सकते थे। तिलक आदि का साथ वे दे नहीं सके। कारण यह कि वे उनको मज़हबी राष्ट्रवादी मानते थे और मज़हब से उनको घृणा थी। प्रकृति से वे नरम दल के समीप थे, परन्तु उस दल वालों की भाँति वे नौकरियों और पदवियों के इच्छुक नहीं थे। इनकी उनको आवश्यकता भी नहीं थी। न हो इसके योग्य थे। ऐसे समय में गांधी जी हिन्दुस्तान में आ गए। जवाहरलाल जी ने उनको प्रथम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार लखनऊ में देखा था। गांधी जी के अफ्रीका में आन्दोलन की बात जवाहरलाल जी ने पढ़ी थी। सन् 1913 में गांधी जी ट्रान्सवाल में 2500 सत्याग्रहियों के एक जत्थे को लेकर नटाल से गए थे। वहाँ उस सत्याग्रह को कुछ सफलता मिली थी। जवाहरलाल जी को यह सरल व उपाय सफल होने योग्य समझ में आया।

गांधी जी हिन्दुस्तान में गोखले जी के कहने पर आए थे। इन दोनों में अन्तर यह था कि जहाँ गोखले जी वाक्-कुशल थे, वहाँ गांधी जी कार्य-कुशल थे। अन्यथा दोनों एक ही विचारधारा के अनुयायी थे। गोखले जी ने गांधी जी को अफ्रीका में देखा था और उनको हिन्दुस्तान में आने का निमन्त्रण दिया। उनका उद्देश्य गांधी जी जैसे कर्मशील व्यक्ति की सहायता से नरम दल को सुदृढ़ करना था। गांधी जी हिन्दुस्तान में 9 जनवरी 1915 को आए और गोखले जी का देहान्त 19 फरवरी 1915 को हो गया। यदि वे जीवित रहते तो कांग्रेस का चित्र उससे भिन्न होता जो 1916 के बाद हुआ।

इन दिनों जवाहरलाल जी भी, गांधी जी की भाँति सेना में भरती का काम कर रहे थे। यह कार्य कुछ अधिक काल तक नहीं चल सका। श्रीमती ऐनी बिसेन्ट के पकड़े जाने पर, डाक्टर सप्रू इत्यादि ने यह काम बन्द किया तो जवाहरलाल जी को भी यह काम बन्द करना पड़ा। दोनों इकट्ठे काम कर रहे थे।

इस समय की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं कि हिन्दू शीघ्रातिशीघ्र, राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने की इच्छा रखते थे और मुस्लिम लीग तथा मुस्लिम समुदाय टर्की पर ब्रिटिश दबाव कम कराने की इच्छा रखता था। नरम दल वालों की इच्छा अपने पक्ष को सुदृढ़ करने की थी। वे देख रहे थे कि शासन में सुधार होने वाले हैं। उन सुधारों में और भी पदवियाँ और नौकरियाँ मिलने वाली थीं। वे अपनी स्थिति सुदृढ़ कर अधिक से अधिक लाभ उठाने का विचार रखते थे। तिलक आदि का विचार था कि औपनिवेशिक स्वराज्य अथवा उनके लगभग कुछ आ रहा है और उससे देश की स्थिति को सुदृढ़ कर अगले पग के लिए यत्न किया जा सकेगा।

परन्तु 1916 के मुसलमानों को पृथक् प्रतिनिधित्व देने से कांग्रेस केवल मात्र हिन्दुओं की संस्था रह गई थी। इसने हिन्दुओं की ओर से समझौता किया था। मुसलमानों की ओर से मुस्लिम लीग ने इसे स्वीकार किया था।

जवाहरलाल जी के मन में गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका के कारनामों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारी प्रभाव डाला था। इस कारण वे उनकी ओर आकर्षित हो गए। हम यह लिख चुके हैं कि नेहरू जी एक भावुक व्यक्ति थे। वे बुद्धिशील कभी भी नहीं रहे। यदि वे कुछ समझ रखते तो उनके मन में संदेह उत्पन्न हो जाता कि गांधी जी की अफ्रीका में सफलता हिन्दुस्तान के स्वराज्य आन्दोलन से कुछ भी तुलना नहीं रखती। वहाँ एक शुद्ध आर्थिक समस्या थी। यहाँ तो देश के राज्य का प्रश्न था। अंग्रेज़ एक देश के राज्य की बात किसी भी कीमत पर मानने वाले नहीं थे। परन्तु अन्य अनेक हिन्दुस्तानियों की भाँति जवाहरलाल जी को स्वराज्य प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह एक सरल व सिद्ध उपाय समझ में आया।

जवाहरलाल जी के मन पर गैरीबाल्डी और आयरलैंड के सिनफिन आन्दोलन का प्रभाव तो था, परन्तु वे दोनों आन्दोलन हिंसात्मक थे। इस विषय में भी जवाहरलाल जी इन आन्दोलनों की सफलता और गांधी जी की असफलता में कारण नहीं जान सके। इन्होंने बुद्धि से कभी विचार किया ही नहीं था। गांधी जी तो एक बूँद रक्त बहाने से भी डरते थे।

इस समय देश में भावनाएँ भड़क रही थीं। इनको भड़काने वाले कई कारण थे। एक तो युद्ध था। युद्ध में मित्र राष्ट्रों की प्रारम्भिक पराजयों से हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज़ों से मुक्ति की आशा होने लगी थी। इससे राजनीति से अनभिज्ञ हिन्दुस्तानी भिन्न-भिन्न प्रकार की अनहोनी कल्पनाएँ करने लगे थे। हिन्दुस्तान परमात्मा पर अन्धविश्वास रखने वालों का देश है। हिन्दुओं में वैष्णव सम्प्रदाय के लोग बिना पुरुषार्थ, केवल भगवान का नाम लेने से मोक्ष की प्राप्ति, सम्भव मानते हैं। ये लोग केवल जर्मनी की विजय से हिन्दुस्तान में स्वराज्य की आशा करने लगे थे। उनकी स्थिति उस दुर्बल व्यक्ति की भाँति थी जो मालिक के बदलने मात्र से सुख की आशा करने लगे।

जब अंग्रेज़ भारी पराजयों पर भी मैदान छोड़कर नहीं भागे तो कुछ हिन्दुस्तानी निराश हो क्रोध से भरने लगे। और क्रोध सदा बुद्धि भ्रष्ट करने वाला सिद्ध हुआ है। भावना प्रायः बुद्धि-रहित विचारों को ही कहते हैं।

मुसलमान, अंग्रेज़ों के टर्की पर आक्रमण से क्रोध में भर रहे थे। इस्लाम एक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक मज़हबी दल है। दुनिया भर के मुसलमान अंग्रेज़ों के सहायक थे। हिन्दुस्तान के मुसलमान तो स्पष्ट रूप में अंग्रेज़ी सरकार के भक्त थे। परन्तु टर्की पर आक्रमण के कारण सब-के-सब मुसलमान अंग्रेज़ों के विपरीत हो गए। हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने तो हिन्दुओं के साथ मिलकर अंग्रेज़ों का विरोध स्वीकार कर लिया। मुस्लिम लीग को कांग्रेस के साथ मिलकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वराज्य की माँग करना हिन्दुस्तान के हित में इतना नहीं था, जितना इस्लाम की रक्षा के हित में था। उस समय के मुस्लिम नेताओं का विचार था कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान इस्लाम की रक्षा के लिए होगा। दुनिया भर के मुसलमानों को इससे लाभ होगा।

भावनाओं के भड़कने में एक कारण यह भी था कि युद्ध के दिनों में हिन्दुस्तान को शान्त रखने के लिए अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ और अधिकारी हिन्दुस्तान को उत्तरदायी सरकार देने के वक्तव्य देते रहते थे। ये वक्तव्य सर्वथा अस्पष्ट होते थे। इन अस्पष्ट वक्तव्यों के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाए जा रहे थे। पूर्ण स्वराज्य से लेकर हिन्दुस्तानियों को गवर्नर इत्यादि बनाने तक की आशा की जाने लगी थी। जब 'मोन्टेग्यु चेम्सफोर्ड' सुधार घोषित हुए, तो कुछ नेताओं को ये बहुत ही भले प्रतीत हुए और कुछ को सर्वथा असन्तोषजनक समझ आए। जिनको आशा थी कि वे मन्त्री इत्यादि बनेंगे, वे संतुष्ट थे। दूसरे, जो इन सुधारों से वास्तविक अधिकारों की आशा करते थे, वे निराश थे। ये लोग जनता की भावनाओं को भड़काने में सफल हो रहे थे। इन सुधारों से मुसलमानों की समस्या सुलझ नहीं रही थी। इस कारण मुसलमान नेता भी जनता को भड़काने में लगे हुए थे।

एक और भी कारण था। युद्ध के दिनों में सेना में भरती करने का काम अनेक स्थानों पर बलपूर्वक किया गया था। इससे लोग, विशेष रूप में पंजाब और महाराष्ट्र के देहातों में, भड़के हुए थे।

इन सबसे अधिक भावनाओं को भड़काने वाला रौलेट ऐक्ट सिद्ध हुआ। सन् 1917 में सरकार ने एक कमेटी बनाई थी और उसको भारत के क्रान्तिकारियों की गतिविधियों की जाँच करने और उनको रोकने के उपाय बताने के लिए कहा था। इस कमेटी के चेयरमैन एक जस्टिस रौलेट थे। यह कमेटी रौलेट कमेटी के नाम से विख्यात हुई और इसने 1918 के आरम्भ में एक कानून बनाने का सुझाव दिया। यह कानून रौलेट ऐक्ट के नाम से विख्यात हुआ।

इस ऐक्ट के दो भाग थे। एक 'डिफेंस आफ इण्डिया रूल्ज़' की समाप्ति पर उसका स्थायी स्थानापन्न था। दूसरे भाग के अनुसार क्रान्तिकारियों पर नियंत्रण रखने के लिए शासन को स्थायी अधिकार मिल रहे थे। इन अधिकारों में उनको, बिना मुकद्दमा किए दण्ड देने का अधिकार भी था। इस भाग ने हिन्दुस्तान को भड़काने में सबसे अधिक योगदान दिया।

श्री जवाहरलाल जी ने इस कानून के विषय में लिखा है कि यह कानून

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ अधिक कठोर नहीं था। इससे अधिक कड़े कानून गांधी जी के आन्दोलन को दबाने के लिए बनाए गए थे। आप लिखते हैं—

Another interesting fact is this. To-day, fifteen years later, we have any number of laws on the statute book, functioning from day to day, which are far harsher than the Rowlatt Bills were. Compared to these new laws and ordinances, under which we now enjoy the blessings of British rule, the Rowlatt Bills might almost be considered a charter of liberty.[49]

एक अन्य रुचिकर बात यह है। पन्द्रह वर्ष उपरान्त कानून की किताब पर अन्य बहुत-से कानून आ गए हैं, जो दिन-रात कार्य कर रहे हैं और जो रौलेट ऐक्ट से अधिक सख्त हैं। इन कानूनों के मुकाबले में, जो आज ब्रिटिश सरकार की बरकत से हम भोग रहे हैं, रौलेट ऐक्ट तो स्वतन्त्रता का प्रपत्र ही प्रतीत होता है।

इन शब्दों से जवाहरलाल जी ने उन सब नेताओं की हँसी उड़ाई है, जिन्होंने रौलेट ऐक्ट के विरुद्ध आन्दोलन किया था और उनमें महात्मा गांधी अग्रणी थे।

जवाहरलाल जी का कानून की सख्ती का अनुमान सर्वथा गलत है। रौलेट ऐक्ट पास हुआ था सन् 1919 में और नेहरू जी दूसरे कानूनों की बात लिख रहे हैं सन् 1934 में। उन दिनों कुछ आर्डिनेन्स जारी किए गए थे, गांधी जी के कानून-भंग आन्दोलन को दबाने के लिए। उनमें कुछ अधिकार दिए गए थे, शासन को, परन्तु उनमें अधिक से अधिक दंड था छः मास का। रौलेट ऐक्ट में दंड पाँच वर्ष तक चल सकता था। साथ ही प्रान्त की सरकार की अनुमति से बिना मुकद्दमे के फाँसी तक के दंड का भी प्रबन्ध था।

जवाहरलाल जी के उक्त वाक्य से तो यही प्रतीत होता है कि कानून विषय में उनका मूल्यांकन बिल्कुल गलत था।

जवाहरलाल जी रौलेट एक्ट को आपत्तिजनक नहीं मानते थे।

::7::

गांधी जी ने रौलेट ऐक्ट के प्रकाशित होते ही वायसराय को कहा कि वे इसको कौंसिल में उपस्थित न करें। वायसराय नहीं माने। इस पर गांधी जी ने इसके विरुद्ध सत्याग्रह करने की घोषणा कर दी और इसके लिए एक सत्याग्रह कमेटी बना दी। जवाहरलाल जी इस कमेटी में सम्मिलित हो गए। मोतीलाल जी को भी यह ऐक्ट कानूनी विचारों का उल्लंघन करता प्रतीत हुआ। वे इसको गैर कानूनी कानून (illegal law) मानते थे। लोग गांधी जी से पूछते थे कि इस कानून पर सत्याग्रह कैसे हो सकेगा? गांधी जी कह देते थे—Once the Bill

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

becomes law, we offer satyagrah (एक बार ये बिल कानून बने तो हम सत्याग्रह करेंगे)।

जवाहरलाल जी के मन की प्रतिक्रिया उनके अपने शब्दों में इस प्रकार थी—

When I first read about this proposal in the news papers my reaction was one of tremendous relief. Here at last was a way out of the tangle, a method of action which was straight and open and possibly effective. I was afire with enthusiasm and wanted to join the Satyagrah Sabha immediately.[50]

जब मैंने इस प्रस्ताव (गांधी जी के सत्याग्रह) के विषय में पढ़ा तो प्रथम प्रतिक्रिया, जो मेरे मन पर हुई, वह एक भारी बोझा हलका होने की थी। तत्कालीन कठिनाइयों से निकलने का यह एक उपाय था। यह कार्य करने का ढंग था, जो सीधा, खुला और कदाचित् प्रभावी भी था। मैं जोश से भर गया था और तुरन्त सत्याग्रह सभा में सम्मिलित होना चाहता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि जवाहरलाल जी कुछ करना चाहते थे। परन्तु किस उद्देश्य से? वे नहीं जानते थे। रौलेट ऐक्ट के विषय में तो उनके विचार ऊपर लिखे जा चुके हैं। वे तो कुछ अधिक विरोध में नहीं थे। तो वे किस बात के लिए सत्याग्रह करने जा रहे थे। आप लिखते भी हैं कि ''और.... तुरन्त मेरा जोश ठंडा हो गया। मुझे समझ आया कि सब इतना कुछ सरल नहीं।....''[51]

पंडित मोतीलाल जी ने इस सत्याग्रह को पसन्द नहीं किया था। उनकी आपत्ति व्यावहारिक थी। नेहरू जी लिखते हैं कि ''जितना वे (पं. मोतीलाल) सत्याग्रह के प्रस्ताव पर विचार करते थे, उतना ही वे इसको नापसन्द करते थे।''

इतना स्पष्ट लिख देने के पश्चात् वे अपना अनुमान भी लिखते हैं—

Apart from these general considerations, what really moved him was the personal issue. It seemed to him preposterous that I should go to prison. The trek to prison had not then begun and the idea was most repulsive. Father was intensely attached to his children.[52]

इन सामान्य विचारों के अतिरिक्त सत्य बात यह थी कि इसमें उनका स्वार्थ निहित था। मैं जेल में जाऊँ, यह उनको अत्यन्त असंगत प्रतीत हुआ था। जेल जाने की प्रथा अभी बनी नहीं थी। यह विचार उनको सर्वथा अरुचिकर था। पिता जी अपने बच्चों से अत्यन्त मोह करते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि जवाहरलाल जी अपने पिता से भी न्याय नहीं कर सके। पिता का अपने बच्चों से मोह तो होता ही है। इसमें कुछ कहने की बात नहीं, इस पर भी कुछ विचार करने पर समझ पाएँगे कि मोतीलाल जी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्याग्रह पर आपत्ति इस मोह के कारण इतनी नहीं थी, जितनी इसके अव्यावहारिकपन के कारण थी।

जवाहरलाल जी ही उनके मन की बात इस प्रकार लिखते हैं—

What good would the gaol-going of a number of individuals do, what pressure could it bring on the Government?[53]

कुछ लोगों के जेल जाने से भला क्या होगा? सरकार पर वे क्या दबाव डाल सकते हैं?

एक वकील को ये कारण अधिक उपयुक्त प्रतीत हुए होंगे। परन्तु जवाहरलाल जी इनको गौण मानते हैं। सन्तान के लिए पिता के मोह को व्यर्थ में ले आए हैं।

कानून के विपरीत सत्याग्रह, सुगम बात नहीं है। यह सत्याग्रह तो तब ही किया जा सकता है, जब कानून का प्रयोग हो और फिर कानून का आघात जिस पर हो, वही तो सत्याग्रह कर सकता है। इस पर भी सत्याग्रह किस प्रकार होगा, समझ में नहीं आ रहा था।

लोग, जिन पर कानून का प्रयोग हो नहीं रहा, वे सरकार का विरोध तो कर सकते हैं, परन्तु कानून का नहीं। उस समय तक गांधी जी सरकार का विरोध करने को तैयार नहीं थे। इसी कारण मोतीलाल जी को रौलेट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह की बात समझ नहीं आ रही थी।

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है जवाहरलाल इस प्रकार की सूक्ष्म बात समझ नहीं सके। फिर आप सन् 1934 में लागू किए गए अध्यादेशों का मुकाबला करने लगे थे रौलेट ऐक्ट से। इस प्रकार की मोटी बुद्धि रखने वाले श्रीमान् भारत देश के सत्रह वर्ष तक प्रधान मन्त्री रहे। इसको देश का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है।

इस विषय पर मोतीलाल जी और गांधी जी में बातचीत हुई थी। गांधी जी मोतीलाल जी को समझा नहीं सके। इस वार्तालाप के पश्चात् गांधी जो ने जवाहरलाल जी को कह दिया कि वे सत्याग्रह सभा के सदस्य न रहें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय परिच्छेद

गांधी जी की छाया में

अब हम गांधी जी के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं। गांधी जी को श्री गोपालकृष्ण गोखले भारत में खींच लाए थे। इसलिए नहीं कि अफ्रीका में भारतवासियों की समस्याएँ सुलझ गई थीं। अफ्रीका में गांधी जी कुछ बाधाओं को दूर करने का वचन मात्र ही ले सके थे। इस पर भी रंग-भेद के कारण अधिकारों में भेद चलता ही था और वह आज तक चल रहा है। हिन्दुस्तानियों के विपरीत अब तो यह उन देशों में भी चलता है, जहाँ अफ्रीकनों का अपना राज्य स्थापित हो गया है।

गोखले जी ने गांधी जी को हिन्दुस्तान में आने की प्रेरणा इस कारण दी थी कि हिन्दुस्तान में उनकी स्थिति सुदृढ़ हो जाए। वे जान गए थे कि गांधी जी की, ब्रिटिश सरकार के प्रति, वैसी ही भक्ति है, जैसीकि किसी भी नरम दल के व्यक्ति की हो सकती है। इसके साथ सम्भवत: एक और भी कारण था। वह यह कि अफ्रीका से गांधी जी को निकालकर ले जाना ब्रिटिश सरकार को प्रसन्न करने की बात थी। गांधी जी ने अपने सत्याग्रह से ब्रिटिश सरकार को अपराधी के कटघरे में खड़ा कर रखा था।

गांधी जी के दादा उत्तमचन्द गांधी के विषय में एक कथा विख्यात है। वह छोटी अवस्था में ही अपनी चतुराई के कारण, अपने चाचा दमन गांधी के स्थान पर, पोरबन्दर राज्य के दीवान नियुक्त हो गए थे। उस समय पोरबन्दर के शासक राणा खिजोली थे।

कथा इस प्रकार है कि राणा खिजोली के देहान्त के उपरान्त राजमाता रूपाली शासक बनीं। उत्तराधिकारी अभी अल्पायु था। राजमाता का एक खजांची था खीमजी कोठारी। वह बहुत ही ईमानदार और कायदे-कानून का पाबन्द व्यक्ति था। राजमाता को उसके विपरीत भड़का दिया गया। इस पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजमाता ने उसको आज्ञा भेजी कि वह तुरन्त दरबार में हाज़िर हो।

कोठारी भयभीत था। उसको सूचना मिली थी कि उसे मृत्युदंड मिलने वाला है। इससे वह दीवान उत्तमचन्द गांधी के घर रक्षार्थ जा पहुँचा। वहाँ उत्तमचन्द की पत्नी लक्ष्मी माँ उपस्थित थी। कोठारी ने उनके पाँव पकड़ लिये। वह अपने साथ न्याय चाहता था। स्वाभाविक रूप में उत्तमचन्द की पत्नी ने वचन दे दिया कि उनके साथ न्याय किया जाएगा।

जब उत्तमचन्द घर आया तो लक्ष्मी ने कोठारी की बात बताई। यह सुन कि उसकी पत्नी ने यह वचन दे दिया है कि उसके साथ न्याय होगा, उत्तमचन्द परेशानी अनुभव करने लगा। वह जानता था कि राजमाता कोठारी को मरवा देना चाहती है। परन्तु लक्ष्मी का वचन था कि उसके साथ न्याय होगा यह वचन उसे अनुचित प्रतीत नहीं हुआ। उसने इसका अक्षरशः पालन करने का निश्चय कर लिया।

कोठारी दरबार में नहीं गया। इस कारण राजमाता ने दीवान उत्तमचन्द को आज्ञा दी कि कोठारी को बलपूर्वक पकड़कर दरबार में हाज़िर कर दिया जाए। दीवान ने कहा कि उसको पकड़कर हाज़िर तब किया जाएगा जब उस पर मुकद्दमा हो और उसे न्याय का आश्वासन दिया जाए। इस पर राजमाता ने कह दिया कि उनका हुक्म ही न्याय है। उत्तमचन्द चुप कर रहा।

न तो कोठारी दरबार में आया, न ही लाया गया। वह दीवान के घर में बैठा था। इस पर राजमाता ने उसे पकड़ने के लिए सिपाही भेजे। वे दीवान के घर में नहीं घुस सके। घर के सब द्वार बन्द थे। राजमाता ने दीवान के घर को तोपों से उड़ा देने की आज्ञा दे दी। रात के समय पोरबन्दर के सब द्वार बन्द रहते थे। द्वार की दो चाबियाँ थीं, एक राजमाता के पास रहती थी और एक दीवान के पास। दीवान के घर पर आक्रमण रात के समय होना था, जिससे कोठारी भाग न सके। नगर के द्वार बन्द होने के उपरान्त दीवान ने चाबी देकर कोठारी को भाग जाने का अवसर दे दिया और स्वयं घर के द्वार बन्द कर बैठ रहा। रात को तोपखाना आया। दो-तीन गोले ही दागे गए थे कि ब्रिटिश एजेंसी के सैनिक आकर दीवान की रक्षा में खड़े हो गए। इस पर भी घर की दीवार गिरनी आरम्भ हो गई थी; परन्तु समय पर सहायता से उत्तमचन्द और उसका परिवार जो उस समय घर में ही था, बच गया।

यह एक झलक है गांधी जी के परिवार की। इसकी तुलना की जा सकती है श्री जवाहरलाल के बाबा से जो 1857 में दिल्ली से भाग कर आगरा आ गए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तमचन्द गांधी के पाँचवें पुत्र थे कर्मचन्द गांधी और कर्मचन्द के तीन पुत्र थे जिनमें मोहनदास सबसे छोटे थे। कर्मचन्द ने चार विवाह किए थे। पहली दो पत्नियों से दो कन्याएँ थीं। तीसरी बीमार थी और संतान नहीं दे सकी। चौथी थी पुतली बा। इससे विवाह के समय कर्मचन्द चालीस वर्ष के थे। सबसे छोटे लड़के मोहनदास कर्मचन्द गांधी का जन्म सन् 1869 में हुआ था। ये ही महात्मा गांधी के नाम से विख्यात हुए। इनके नाम की ख्याति संसार भर में है। आज हिन्दुस्तान में कुछ लोग इनकी पूजा करते हैं जबकि बुद्धिशीलों के लिए ये सदा ही एक समस्या रहे हैं।

श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी के प्राय: सभी आन्दोलनों में श्री जवाहरलाल जी उनके साथी रहे हैं। अपने जीवन काल में गांधी जी जवाहरलाल जी को सदा ऊपर उठाने का यत्न करते रहे। इस कारण दोनों के जीवन का अध्ययन साथ-साथ करना ठीक रहेगा।

श्री जवाहरलाल नेहरू के बाल्यकाल की एक झलक हमने पिछले परिच्छेद में दिखाई है। यहाँ श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी के विषय में संक्षेप में लिख देना चाहते हैं; जिससे पाठकों को दोनों महानुभावों की समानता और भिन्नता का ज्ञान हो सके और पता चल सके कि दोनों महानुभावों में कौन बात सांझी थी जिससे दोनों में साथ रहा।

श्री मोहनदास के पिता कर्मचन्द गांधी के जीवन की एक घटना यहाँ लिख दें तो श्री जवाहरलाल के पिता श्री मोतीलाल जी से उनकी तुलना हो जाएगी।

कर्मचन्द गांधी 4 अप्रैल 1879 को दीवान के पद पर नियुक्त हुए। राजकोट के ठाकुर साहब शराब खूब पीते थे। इस पर भी वे अपने दीवान से डरते थे। कभी पीते समय वे आ जाते तो ठाकुर साहब जल्दी-जल्दी सब बोतल आदि वहाँ से हटवा देते थे।

एक बार ठाकुर साहब अजी नदी के किनारे घूमने गए थे कि उनकी दृष्टि एक युवती पर पड़ गई। ठाकुर साहब ने यह निश्चय किया कि रात को उसके घर में बलपूर्वक घुसकर उसका अपहरण कर लिया जाए। पुलिस सुप्रिण्टैंडेन्ट ने कर्मचन्द को इस बात की सूचना दे दी। दीवान साहब ने कह दिया कि पुलिस अधिकारी को अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए। पुलिस अधिकारी कर्मचन्द का एक सम्बन्धी था। वह कर्मचन्द की आज्ञा मानने को तैयार हो गया।

रात के समय पुलिस के सिपाही उस घर की रक्षा के लिए नियुक्त कर दिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए। ठाकुर साहब के साथी मकान में घुसने के लिए सीढ़ी लेकर रात को मकान पर पहुँचे तो उनमें से कुछ पकड़ लिये गए।

अगले दिन कर्मचन्द गांधी ने पूर्ण घटना का वर्णन कर ठाकुर साहब से कह दिया कि ब्रिटिश एजेन्सी नगर के समीप ही है और यदि ठाकुर साहब ने अपने को सुधारा नहीं तो राज्य बदनाम हो जाएगा और कदाचित् उसकी गद्दी भी चली जाए।

ऐसे थे श्री मोहनदास के पिता श्री कर्मचन्द गांधी। इनकी तुलना श्री मोतीलाल जी से की जा सकती है।

श्री मोहनदास गांधी का जन्म 1869 में पोरबन्दर की चारदीवारी के अन्दर, एक मकान के भूमि तल पर, एक अँधेरे कमरे में हुआ था। कमरा इतना अँधेरा था कि मध्याह्न के समय भी वहाँ बिना दिया जलाए कुछ दिखाई नहीं देता था। इस मकान में गांधी जी के परिवार के लोग पाँच पीढ़ियों से रहते थे। गांधी जी की माँ पुतली बा इसी अँधेरे कमरे में जीवनभर रही थी।

मकान के पिछवाड़े में एक मंदिर था और मोहनदास बाल्यकाल में भी उसमें जाने का स्वभाव रखता था।

बालक मोहनदास स्कूल में भरती हुआ तो पढ़ाई में सदा अच्छे अंक लेकर पास होता रहा। उसको मंदिर में हरि कथा सुनने का अवसर मिलता रहता था।

मोहनदास के विषय में उसके एक मित्र ने एक कथा सुनाई थी—"मैंने मोहन भाई को एक चपत लगाई परन्तु उसने मुझको पीटा नहीं। वह मुझको पकड़कर अपने पिता के पास ले गया और मेरी शिकायत कर दी। मोहन के पिता ने थोड़ा डाँट दिया और मुझे चला जाने दिया। मोहन मेरे पीटने से मुझसे नाराज़ भी नहीं हुआ।"

गांधी जी का जीवन चरित्र लिखने वाले इनके बाल्यकाल की एक और झलक दिखाते हैं—

About a furlong from the house, in which Moniya lived, there used to be a chowk, known as Shitala Chowk. On moonlit night parties of Hindu and Muslim boys assembled there from different quarters of the city and played games for an hour or so after dinner. Moniya also used to go there, but he had a temperamental dislike for boisterous games. He did not participate in them, but loved to

इसका अर्थ इस प्रकार है—घर *से एक फर्लांग के अन्तर पर एक चौक था, जिसे शीतला चौक कहते थे। चान्दनी रातों में रात के भोजन के उपरान्त नगर के विभिन्न भागों से हिन्दू और मुसलमान वहाँ खेलने एकत्रित हो जाया करते थे। मोहन स्वभाव से ही*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

officiate as umpire and saw to it that rules of the game were strictly observed by those who engaged in them.[54]

हल्ला-गुल्ला वाली खेलें पसन्द नहीं करता था। वह वहाँ जाता था, परन्तु खेलों में भाग नहीं लेता था। वह खेलों में, यह देखने के लिए कि खेलने वाले नियमों का पालन करते हैं अथवा नहीं, उनमें पंच बन जाया करता था।

मोहनदास का बचपन राजकोट में व्यतीत हुआ। वहाँ उसके पिता दीवान थे और वहाँ ही वह पढ़ा। जब वह तेरह वर्ष की अवस्था का था, इसका विवाह हो गया। पत्नी का नाम कस्तूर बा था। उसके माता-पिता समीप ही रहते थे।

विवाह के साथ ही मोहनदास का यौन-जीवन आरम्भ हो गया। उसका यह जीवन अत्यधिक वासनामय था। वे स्वयं इस जीवन पर पीछे पश्चात्ताप भी करते रहे थे। उनकी तानाशाही उनकी पत्नी धैर्य से सहन करती रही। गांधी जी स्वयं, लॉर्ड वेवल को लिखे अपने एक पत्र में, अपनी पत्नी के विषय में लिखते हैं—

She was a woman always of a very strong will, which in our early days I used to mistake for obstinacy. But that strong will enabled her to become, quite unwittingly, my teacher in the art and practice of non-violent non-cooperation.[55]

वह एक बहुत ही दृढ़ निश्चय वाली स्त्री थी और मैं अपने प्रारम्भिक जीवन में उसका यह उजड्डपना समझता, था। वह अपने दृढ़ निश्चय के कारण, अनजाने, मेरे अहिंसात्मक असहयोग में मेरी शिक्षक बन गई थी।

मोहनदास अपने पिता की सेवा-शुश्रूषा में रत रहने के कारण मैट्रिकुलेशन की परीक्षा थर्ड डिवीजन में पास कर सका। उनके पिता बहुत बीमार रहे थे और परीक्षा के कुछ ही पहले उनका स्वर्गवास हो गया था।

मैट्रिकुलेशन के उपरान्त वे भावनगर कालेज में भरती करा दिए, परन्तु उनकी पढ़ाई ठीक नहीं चल सकी। इस पर उनको विलायत बैरिस्टर की परीक्षा पास करने के लिए भेज दिया गया।

गांधी जी का विलायत में जीवन, श्री नेहरू जी के विलायत के जीवन से सर्वथा भिन्न रहा। श्री नेहरू जी के जीवन के विषय में उनका जीवन चरित्र लिखने वाले फ्रैंक मोरेस लिखते हैं—

It would be misleading to imagine that Nehru read and thought deeply on the intellectual developments of his day. His interest in them, he admits, was superficial, and although his mind was stirred by some of their

यह विचार करना भूल होगी कि जवाहरलाल के मन में उस काल में हो रही बौद्धिक प्रगति ने कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न की थी अथवा उसने उस पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

manifestations he was not sufficiently absorbed or stimulated to burrow deep below the surface....Most other Indian students, inured to more earnest ways of life, were immune to this pervasive influence but the aesthetic with its appeal to the senses and the imagination drew Jawahar Lal like a magnet.[56]

गम्भीरतापूर्वक विचार किया था। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि उनकी इन बातों में रुचि सर्वथा बाहरी थी। यद्यपि कुछ बातों के घटने से उनका मन आन्दोलित हो उठता था, परन्तु वह कभी भी उन बातों में पर्याप्त लीन नहीं हुए, न ही वह उन बातों की तह तक जा सके थे.... अन्य बहुत-से हिन्दुस्तानी विद्यार्थी जीवन के गम्भीर विषयों की ओर आकर्षित हो रहे थे और जीवन के फुहरपन से बचे रहते थे। परन्तु वे बातें जवाहरलाल की इन्द्रियों और कल्पना शक्ति को चुम्बक की भाँति आकर्षित कर लेती थीं।

अब हम गांधी जी के, विलायत में जीवन के विषय में, एक घटना का उल्लेख करते हैं।

ब्राइटन में रहते हुए एक दिन वे (गांधी) शाकाहारी भोजनालय ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक वृद्ध अंग्रेज़ विधवा से, एक होटल में मिल गए। वह स्त्री साधारण आर्थिक स्थिति की प्रतीत होती थी। उस भली औरत ने देखा कि यह युवक 'मीनो' कार्ड, जो फ्रांसीसी भाषा में था, पढ़ने का यत्न कर रहा है और पढ़ नहीं पा रहा। वह स्त्री दया के भाव में इसमें रुचि लेने लगी। वे दोनों शीघ्र ही मित्र बन गए। उसने गांधी को, लंदन में होने पर, प्रति रविवार रात का खाना खाने का स्थायी निमन्त्रण दे दिया।

लंदन लौटने पर गांधी जी उस स्त्री के निमन्त्रण का लाभ उठाकर उसके घर पर रविवार को रात का खाना खाने लगे। गांधी जी को अपनी लज्जा और झिझक से पार पाने में सहायता करने के लिए, उस वृद्धा ने कुछ युवा लड़कियों को, जो उसकी जान-पहचान की थीं, उसी समय बुलाना आरम्भ कर दिया।

कुछ दिन में ही गांधी की झिझक और लज्जा विलीन हो गई और रविवार के खाने रसमय प्रतीत होने लगे। एक लड़की उससे अधिक घनिष्ठता उत्पन्न करने लगी और वह वृद्धा उनको एकान्त में मिलने का अवसर देने लगी।

शीघ्र ही गांधी की आत्मा और स्वाभिमान ने उसे सचेत कर दिया। उसने घर पहुँच उस स्त्री को पत्र लिख दिया। उस पत्र में उसने लिखा—

अपने विवाह के विषय में मैंने कपटपूर्ण व्यवहार रखा है। वास्तव में मेरा विवाह हो चुका है। इस पर भी...

मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने उस युवती से स्वतन्त्रता का अनुचित प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

I assure you I have taken no improper liberties with the young lady....If on receipt of this you feel that I have been unworthy of your hospitality, I assure you I shall not take it amiss....If, after this, you.... continue to regard me of worthy as your hospitality....I shall....count it a further token of your kindness.[57]

नहीं किया....इस पत्र के मिलने पर यदि आप अनुभव करें कि मैं आपकी मेहमानदारी का पात्र नहीं तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इसे बुरा नहीं मानूँगा।....और यदि अभी भी आप मुझे आपका मेहमान बनाने का पात्र समझती हैं तो इसे मैं आपकी कृपा का एक और चिह्न मानूँगा।

ये थे मोहनदास गांधी। गांधी जी विलायत में अपने अनुभवो को बढ़ाने में लीन रहे और नए-नए विषयों पर परीक्षण करते रहे। इसके विपरीत जवाहरलाल अपने पिता का धन (व्यर्थ) व्यय कर हिन्दुस्तान लौट आए थे।

:: 2 ::

रौलेट ऐक्ट का विरोध हुआ और हिंसात्मक उपायों से। अमृतसर में और पंजाब के अन्य क्षेत्रों में, एक प्रकार का हिंसात्मक विद्रोह उत्पन्न हो गया था। इसको दबाया गया पंजाब के बहुत बड़े क्षेत्र में मार्शल-लॉ लगाकर और जलियांवाला बाग की घटना से।

यह कहा जाता है कि गांधी जी जलियांवाला बाग की घटना के उपरान्त नरम दल की मनोवृत्ति त्यागकर उग्र प्रवृत्ति के हो गए थे। इतना तो स्पष्ट है कि गांधी जी उक्त घटना से क्रुद्ध हो गए थे। इस पर भी हमारा मत है कि उनके विचार और कार्य की आधारशिला वही थी, जो 1916 से पहले कहे जाने वाले नरम दल वालों की थी।

पहला प्रश्न तो यह है कि क्या 1916 में कांग्रेस ग़रम दल की हो गई थी? अथवा क्या तिलक आदि नरम हो गए थे? इसमें हमारा मत है कि दोनों पक्ष ज्यों के त्यों रहे थे। उनमें अन्तर नहीं आया था। दोनों का अपना-अपना ध्येय बना था और उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दोनों अपने-अपने उपायों पर डटे थे।

इन उद्देश्यों और उपायों के विश्लेषण से हमारी बात सिद्ध हो जाएगी। 1916 से पहले कांग्रेस पर एकाधिकार रखने वाला दल और उसके नेता लोग राज्य सत्ता सम्पन्न पदवियों के लिए चिन्तित और इच्छुक थे। यही उद्देश्य सन् 1916 के उपरान्त भी बना रहा। अन्तर यह पड़ गया था कि भारत सरकार राजनीतिक सुधार करने वाली थी और यह आशा की जा रही थी कि उन सुधारों से, एक सीमा तक, पदवियाँ देश जनता के हाथ में होने वाली थीं। इस कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको अपने आपको जनता में सर्वमान्य बनाना आवश्यक हो गया था।

तिलक इत्यादि की जनता में ख्याति बहुत अधिक थी। इस कारण उनके मुकाबले में आने की आवश्यकता थी। सन् 1916 से 1918 तक वे यही करते रहे।

तिलक आदि तो उस समय भी स्वराज्य की कूक लगा रहे थे। वे औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वराज्य में कोई अन्तर नहीं मानते थे। साथ ही वे केवल वैधानिक उपायों के साथ बँधे हुए नहीं थे। वे किसी शुभ कार्य के लिए सब प्रकार के उपाय ठीक समझते थे।

1918 में मौन्टेग्यु चेम्सफोर्ड सिफारिशें छप गईं। उनसे भविष्य में होने वाले सुधारों का एक चित्र सामने आ गया था। उनसे यह समझ आया कि अभी भी सरकार के हाथ में बहुत कुछ देने को होगा। इस पर वे लोग तिलक आदि से मुकाबला छोड़कर पुनः सरकार के पग-चुम्बन में लीन हो गए। अब कांग्रेस में उनकी दाल गलती दिखाई नहीं देती थी। इस कारण उन्होंने एक पृथक् दल बना लिया। अपने दल का नाम उन्होंने 'उदार दल' रखा।

तिलक आदि और श्रीनिवास शास्त्री इत्यादि से अन्तर तो उद्देश्य में भी था। शास्त्री इन्यादि को जब अपने उद्देश्यों की पूर्ति सरकार के साथ रहकर होती दिखाई दी, तो वे सरकार से जा मिले; परन्तु कांग्रेस में गांधी जी और तिलक जी में विवाद छिड़ गया। मूल रूप में यह विवाद वही था जो सरकार-भक्तों में और तिलक आदि में 1916 से पहले था। इस विवाद की प्रथम झलक अमृतसर कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर प्रकट हुई।

इस अधिवेशन के पहले सरकार ने जलियांवाला बाग की घटना से और मार्शल लॉ से उत्पन्न रोष को शान्त करने के लिए 1919 के शासन सुधारों का बिल ब्रिटिश पार्लियामेंट से स्वीकार करा दिया। इस बिल की प्रतिक्रिया गांधी जी और तिलक जी पर भिन्न-भिन्न हुई थी। गांधी जी चाहते थे कि इन सुधारों के लिए ब्रिटिश सम्राट् का धन्यवाद किया जाए और सुधारों को प्रयोग करने का आश्वासन दिया जाए। इसके विपरीत तिलक जी चाहते थे कि धन्यवाद की आवश्यकता नहीं है। जितना हमारा अधिकार है अभी उतना नहीं दिया गया। इतने मात्र के लिए धन्यवाद की आवश्यकता नहीं। साथ ही तिलक जी चाहते थे कि सरकार को केवल 'अनुक्रियात्मक सहयोग' (Responsive Co-operation) का ही आश्वासन दिया जाए। दोनों के दृष्टिकोण में वही अन्तर था, जो 1916 से पूर्व नरम और गरम दल में था। मोतीलाल जी गांधी जी के समर्थक थे और गांधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी के विचार का प्रस्ताव पारित हो गया। इसका अर्थ यह था कि उस समय तक कांग्रेस पर कहे जाने वाले नरम दल का प्रभुत्व था।

गांधी जी के राजनीतिक क्षेत्र में आते ही मोतीलाल नेहरू का गठजोड़ उनसे बन गया। इस गठजोड़ का आधार यह था कि दोनों नरम दल के थे। नरम दल के होने के साथ दोनों राजनीति में हिन्दू को एक मज़हब मानते थे। दोनों तिलक जी के विरोधी पक्ष के थे। तिलक जी के मन में हिन्दू शास्त्रों की प्रतिष्ठा थी और वे क्रान्तिकारियों के तरीकों को निन्दनीय नहीं मानते थे। यही तिलक जी का गरम दल में होना कहा जा सकता है।

तिलक जी बुद्धिशील होने के कारण सबके साथ मिलकर काम करने का स्वभाव रखते थे। इस कारण वे स्वयं नरम दल के तरीकों को पसन्द न करते हुए भी, कांग्रेस में जाने के लिए तैयार थे। यह तो नरम दल वाले थे, जो तिलक जी को अपने में आने देना पसन्द नहीं करते थे। 1907 में भी यह नरम दल वाले ही थे जिन्होंने धोखे से तिलक जी को कांग्रेस में सम्मिलित होने नहीं दिया था। 1916 में तिलक इत्यादि का बल था। इस कारण नरम दल वालों ने मुसलमानों को अस्वाभाविक अधिमान देकर कांग्रेस में सम्मिलित कर, तिलक इत्यादि को दबाकर रखने का प्रयास किया था। जब इससे भी वे अपने प्रयास में सफल नहीं हुए तो कुछ नरम दल वालों ने अपनी एक 'लिबरल फैडरेशन' बना ली। वे गरम दल वालों से मिलकर काम नहीं कर सके। दूसरी ओर श्री मोतीलाल नेहरू और गांधी जी थे। इन्होंने कांग्रेस को ही नरम बनाकर रखने का यत्न कर दिया।

श्री मोतीलाल नेहरू का विचार था कि अमृतसर कांग्रेस के वे प्रधान बन गए हैं। इस कारण वे अपने साथियों को 'लिबरल फैडरेशन' पुनः कांग्रेस में ले आएँगे। जब वे नहीं आए तो उनको भारी निराशा हुई थी।

मोतीलाल जी ये समझ गए थे कि गांधी जी एक बहुत बड़ी शक्ति हैं। उनको साथ रखने से अथवा उनके साथ रहकर, वे नेतागिरी प्राप्त कर सकते हैं। यही कारण था कि मोतीलाल जी न केवल स्वयं तिलक जी से पृथक् रहे, वरन वे गांधी को भी तिलक से पृथक् करने में सफल हो गए।

अमृतसर में दो मुख्य प्रस्ताव थे। एक था पंजाब के विषय में। इसके दो भाग थे। प्रथम भाग में थी पंजाब की जनता, जिसने अप्रैल 1919 के प्रथम भाग में हिंसात्मक कार्य किए थे, की निन्दा। दूसरे भाग में मार्शल लॉ के अधिकारियों के अत्याचार की निन्दा थी।

इस प्रस्ताव के प्रथम भाग के विरुद्ध भारी संख्या में लोग थे। एक-एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर कई लोग इसके खिलाफ बोले। एक पंजाबी ने यहाँ तक कहा था कि इस प्रस्ताव के इस भाग को लिखने वाला कोई हिन्दुस्तानी माँ का पुत्र नहीं हो सकता। प्रस्ताव के प्रथम भाग को रद्द कर दिया गया और दूसरा भाग पारित हो गया। अगले दिन गांधी जी ने आग्रह किया कि पिछले दिन वाला प्रस्ताव पुनः विचारार्थ उपस्थित हो। उस दिन गांधी जी स्वयं प्रस्ताव के उस भाग पर ही बोले। तिलक जी प्रस्ताव के इस भाग को निकाल देने के पक्ष में थे, परन्तु गांधी जी का प्रभाव इतना अधिक था कि उस दिन पूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया। तिलक जी को इसमें करारी पराजय हुई।

अमृतसर अधिवेशन में दूसरा प्रस्ताव था हिन्दुस्तान के शासन-सुधार कानून पर। यह प्रस्ताव सी.आर. दास ने बनाया था। प्रस्तात्र इस प्रकार था—

1. यह कांग्रेस अपने पहले वर्ष में पारित प्रस्ताव पर सुदृढ़ है। इस अधिवेशन का यह मत है कि हिन्दुस्तान पूर्ण उत्तरदायी राज्य पाने के सर्वथा योग्य है और इसके विपरीत सब कथनों और कल्पनाओं को गलत समझता है।

2. यह कांग्रेस अधिवेशन अपने पहले प्रस्ताव पर सुदृढ़ है, जो दिल्ली में वैधानिक सुधारों के विषय में पारित किया गया था। इसकी सम्मति है कि वर्तमान सुधार का कानून अपर्याप्त, असंतोषजनक और निराशाजनक (inadequate, unsatisfactory and disappointing) है।

3. यह कांग्रेस आग्रह करती है कि पूर्ण उत्तरदायी सरकार स्थापित करने के लिए शीघ्र पग उठाए जाएँ, जिनमें स्व-निश्चय (self-determination) निहित हो।

इस प्रस्ताव पर श्री गांधी जी ने संशोधन उपस्थित किया था कि कण्डिका संख्या दो में निराशाजनक (disappointing) शब्द को निकाल दिया जाए। साथ ही प्रस्ताव में एक चौथी और एक पाँचवीं कण्डिका रख दी जाए। ये नई कण्डिकाएँ इस प्रकार थीं—

4. जब तक अगले पग नहीं उठाए जाते, कांग्रेस राजभक्तिपूर्ण निवेदन करती है कि सम्राट् की घोषणा में जो यह कहा गया हैं कि ''हमारी प्रजा और अधिकारियों में यह सांझा निश्चय हो कि वे सांझे कार्य के लिए मिलकर काम करेंगे।'' इसके प्रतिकार में विश्वास करती है कि अधिकारी और जनता परस्पर सहयोग करते हुए, इन सुधारों पर ऐसे कार्य करेंगे, जिससे पूर्ण उत्तरदायी सरकार शीघ्र स्थापित हो सके।

4. Pending such introduction, this Congress begs loyally to

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

respond to the sentiments in the Royal Proclamation, namely, 'Let the new era begin with a common determination among my people and my officers to work together for a common purpose,' and trusts that both, the authorities and the people will co-operate so to work the Reforms as to secure the early establishment of full Responsible Government.

5. यह कांग्रेस राइट-ऑनरेबल ई.एस. मौन्टेगु का उसके इन सुधारों पर परिश्रम के लिए अत्यन्त धन्यवाद करती है।

5. And this Congress offers its warmest thanks to the Rt. Hon. E.S. Montagu for his labours in connection with them.

इस पर तिलक जी ने यह संशोधन रख दिया कि चौथी कण्डिका में शब्द co-operate के स्थान पर offers responsive co-operation कर दिया जाए तथा कण्डिका पाँच, जिसमें धन्यवाद दिया गया है, निकाल दी जाए।

तिलक जी का आशय यह था कि यदि अफसर लोग जनता के प्रतिनिधियों से सहयोग करेंगे, जनता के प्रतिनिधि भी सहयोग करेंगे अन्यथा नहीं करेंगे।

यह अन्तर नरम दल और गरम दल का ही है। तिलक जी का संशोधन गिर गया। प्रस्ताव गांधी जी के संशोधनों के साथ पारित हो गया। सी.आर. दास ने बहुत समझाया, परन्तु गांधी जी के सामने किसी की नहीं चली।

यदि तिलक जी के प्रस्ताव पर व्यवहार किया जाता तो निःसन्देह दो दिशाओं में देश उन्नति करता। गांधी जी की ख्याति यदि ठीक ढंग के शिक्षा-मन्त्री और कृषि-मन्त्री भेजने में सहायक हो जाती, तो ये दो समस्याएँ आज तक सुधर जातीं। उस शैतानी शिक्षा के सुधार को भी हठधर्मी पर बलिदान कर दिया गया।

नेहरू इत्यादि को तो शिक्षा के विषय में कुछ ज्ञान था नहीं। वे अंग्रेज़ी बोलने-पढ़ने के बहुत शौकीन थे। अंग्रेज़ी ढंग की शिक्षा भारी अनैतिकता उत्पन्न कर रही थी, परन्तु मोतीलाल जी उस अनैतिकता को एक श्रेष्ठ व्यवहार मानते थे। वास्तविक सुधारों, जिनके लिए जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में अवसर आया था, का अवसर सत्याग्रह आन्दोलन चलाकर व्यर्थ गँवा दिया गया।

एक बालक की भाँति गांधी जी ने देश के हित की कूक लगाते हुए, हित करने के अवसर को व्यर्थ गँवा दिया। 1921 से लेकर 1947 तक सत्ताईस वर्ष तक भारत के युवकों को जी भर कर मिथ्या शिक्षा मिलने का परिणाम यह हुआ कि 1947 से 1968 तक, बीस साल के स्वराज्य काल में भी, शिक्षा में कुछ भी सुधार नहीं हो सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता ने गांधी जी को महात्मा समझा। पूर्ण बल से उनका समर्थन किया। परन्तु इन महात्मा जी ने कुनीति के कारण देश को अनैतिकता के गड्ढे में धकेल दिया। गांधी जी द्वारा यह एक महान् पाप सम्पन्न हुआ है। 1921 में अंग्रेज़ी सरकार ने शिक्षा को प्रान्तीय विषय बनाकर देश में फूट डलवाने का बीजारोपण किया था। यदि ठीक ढंग के लोग शिक्षा मन्त्री बनते तो परस्पर विचार-विनिमय कर पूर्ण देश में इस दिशा में समान नीति रख सकते थे। जो कुछ मिला था, उसका राष्ट्र हित में प्रयोग हो सकता था। गांधी जैसे प्रभावशाली लोगों को, कौंसिलों के बाहर रहकर जो कुछ भी मिला था उसका लाभ देश को पहुँचाने का यत्न करना चाहिए था।

इसके साथ ही और अधिक के लिए आन्दोलन को जारी रखा जा सकता था। गांधी जी ने अपनी ख्याति के बल पर बुद्धिशील तिलक को पराजित किया और गद्दी पर बैठा दिया मोतीलाल जी नेहरू को। 1920 से लेकर कांग्रेस और देश पर नेहरू आरूढ़ रहे। जब-जब कांग्रेस और नेहरू का प्रभाव कम होने लगता, गांधी जी दोनों को, अपने महात्मापन के प्रभाव से बचाते और देश को पतन की ओर धकेलते चले गए।

:: 3 ::

हम यह लिख चुके हैं कि श्री मोतीलाल नेहरू रौलेट ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह को व्यावहारिक नहीं मानते थे। ऐसा ही हुआ। वह आन्दोदन अहिंसात्मक नहीं रहा। अमृतसर और अन्य अनेक स्थानों पर हिंसा भड़क उठी थी। इसे देख गांधी जी भयभीत हो गए और उन्होंने आन्दोलन वापस ले लिया।

गांधी जी अपनी अहिंसात्मक नीति पर डटे रहे। उनका अंग्रेज़ की ईमानदारी पर विश्वास भी वैसा ही बना रहा था। ये सब बातें उस प्रस्ताव से सिद्ध होती हैं, जो गांधी जी ने कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन में उपस्थित किया था और पारित कराया था।

मोतीलाल जी के मन में इस अधिवेशन के उपरान्त परिवर्तन आरम्भ हो गया। यह परिवर्तन किन-किन कारणों से हुआ था, कहना कठिन है। मोतीलाल जी का तो यह कहना है कि उनको मार्शल लॉ के कुछ एक कैदियों से अन्याय होता देख अंग्रेज़ों की न्यायबुद्धि पर सन्देह हो गया था।

यह बात उनके एक पत्र, जो उन्होंने आरा (बिहार) से अपने पुत्र जवाहरलाल को लिखा था, प्रकट होती है। अमृतसर के बुग्गा इत्यादि को फाँसी की सजा हुई थी। पत्र इसी विषय में लिखा था। पत्र का एक अंश इस प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—

I was not altogether unprepared for the decision of the Privy-Council in the Bugga appeal as you might have learnt from my last letter. But the news of its dismissal gave me a shock. Whatever part the other appellants mights have taken in the disturbances there can be no shadow of a doubt that Bugga and Ratan Chand are as innocent as Indu. Every one in the punjab—official and non-official—knows it and yet they are to be hanged! However this is only one instance out of a million in which injustice is daily perpetrated in this country.[58]

मैं बुग्गा क। अपील में प्रिवी-कौंसिल के फैसले के लिए सर्वथा तैयार था। यह तुमको मेरे पिछले पत्र से ज्ञात हो गया होगा। इस पर भी अपील के अस्वीकार होने से मुझको धक्का लगा है। अपील के दूसरे प्राथियों ने हलचल में कुछ भी भाग लिया हो, इसमें तो किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं कि बुग्गा और रत्नचन्द इतने ही निर्दोष हैं जितनी कि इन्दु है। पंजाब में सरकारी और गैर-सरकारी प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि वे बेकसूर हैं। इस पर भी उनको फाँसी दी जा रही है। खैर, यह तो लाखों उदाहरणों में से एक है, जिनमें हम इस देश में नित्य अन्याय होता देखते हैं।

एक अन्य सम्भावना भी प्रतीत होती है। अमृतसर कांग्रेस के अधिवेशन में नरम दल के मुख्य-मुख्य नेता उपस्थित नहीं हुए थे और उन्होंने अपना एक नया दल बना लिया था। मोतीलाल जी उनके ही भरोसे कांग्रेस के प्रधान बने थे इस कारण उनका अमृतसर में न आना मोतीलाल जी को बहुत अखरा था। साथ ही अधिवेशन के उपरान्त गांधी जी उन्हीं नरम दल के नेताओं के पीछे घूमने लगे थे। इससे मोतीलाल जी बहुत बिगड़े और वे कुछ ऐसी बात करने का विचार करने लगे थे जिससे गांधी जी उनसे दूर रहें।

यह बात उनके ही एक पत्र से जो उन्होंने जवाहरलाल जी को उक्त पत्र के कुछ दिन पीछे लिखा था, पता चलती है। आप लिखते हैं—

As for the formulation of Gandhiji's political views, much as I respect him, I am not prepared to accept them simply because they come from him. I have already warned Das that we must be prepared for a big tussle. Gandhiji's going to Delhi for a talk with Shastri, his constant association and general agreement with Malaviya are no good omens for our party. Neither are they very good omens for Gandhiji himself....As at

जहाँ तक गांधी जी के राजनीतिक विचारों के ढंग का प्रश्न है, मैं उन्हें केवल गांधी जी के होने से, स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ। मैंने अभी से दास को सचेत कर दिया है और लिखा है कि शीघ्र ही गांधी जी से भारी झगड़ा होने वाला है। गांधी जी का शास्त्री जी से बातचीत करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

present situated I have no right to quarrel with anybody for his political views much less with persons of the eminence of Gandhiji and Malaviya, but I cannot shut my eyes to the manner in which the country is shaping itself. Any attempt to compromise with the authorities or the moderates is bound to result in disaster by whomsoever made. This is my reading of the situation.[59]

दिल्ली जाना, उनका निरतर मालवीय जी से मेल-मिलाप और सामान्य सहमति अच्छे लक्षण नहीं हैं। हमारे दल के लिए और गांधी जी के लिए भी.. । जो मेरी स्थिति इस समय है, मेरा कोई अधिकार नहीं कि मैं किसी के राजनीतिक विचारों से झगड़ा करूँ। गांधी जी तथा मालवीय जैसे ख्यातिप्राप्त नेताओं से तो मैं झगड़ा कर ही नहीं सकता, परन्तु मैं अपनी आँखें उस रूप से बन्द नहीं कर सकता, जो देश में बन रहा है। अधिकारियों से समझौता अथवा उदारों से मेल-मुलाकात भयानक हानि पहुँचाएगा। करने वाला कोई भी हो...

पत्र के बीच में से ये वाक्य जानबूझकर अलग लिखे जा रहे हैं। इसी पत्र में मोतीलाल जी आगे लिखते हैं—

There is such a thing as trusting too much to one's popularity. Mrs. Besant is paying for it, and others have done the same. It will be a great grief to me Gandhiji follows suit.[60]

अपनी ख्याति पर सीमा से अधिक भरोसा करना भी एक बात है। श्रीमती बिसेन्ट ने इसका मूल्य दिया है। दूसरों ने भी यह मूल्य दिया है। मुझको बहुत दुःख होगा यदि गांधी जी भी उसी मार्ग पर चल पड़े।

हमारे विचार में यह पेशीनगोई नहीं, वरन गांधी जी को धमकी थी। इस सूत्र से यह बात स्पष्ट होती है कि गांधी जी कांग्रेस के अमृतसर वाले प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के विचार से मालवीय जी इत्यादि से मिल रहे थे। मोतीलाल जी को यह क्यों पसन्द नहीं था? अनुमान यह है कि मोतीलाल जी देश का नेतृत्व मालवीय जी इत्यादि के हाथ में जा रहा देखने लगे थे। इस कारण वे पुनः सरकार से टक्कर लेने की योजना बनाने लगे थे। एक बात तब तक स्पष्ट हो चुकी थी कि सरकार हिंसा के सामने झुकती है।

इस पर भी मोतीलाल जी सत्याग्रह के लिए अभी तैयार नहीं थे। उन दिनों जवाहरलाल जी देहरादून के डिप्टी कमिश्नर की आज्ञा की अवहेलना कर स्वयं को बन्दी बनाना चाहते थे और मोतीलाल जी ने उन्हें मना कर दिया था।

जवाहरलाल जी अपनी रुग्ण माता जी को लेकर मसूरी गए हुए थे और घटनावश उन दिनों अफगानिस्तान का एक आयोग। भी उसी होटल में ठहरा हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था, जिसमें जवाहरलाल जी ठहरे थे। सरकार को संदेह हो गया कि उस आयोग के साथ बातचीत करने के लिए जवाहरलाल जी वहाँ ठहरे हैं। इस संदेह पर मंसूरी के सुप्रिन्टैन्डेन्ट ने जवाहरलाल जी से आश्वासन माँगा कि वे उनसे बातचीत नहीं करेंगे। जवाहरलाल जी ने आश्वासन देने से इन्कार कर दिया और सुप्रिन्टैन्डेन्ट ने इनको देहरादून जिला से निकल जाने की आज्ञा दे दी। जवाहरलाल जी ने आज्ञा की अवज्ञा करने से पूर्व अपने पिता से राय ली। मोतीलाल जी ने अवज्ञा करने की राय नहीं दी।

इस घटना से यह सिद्ध होता है कि मोतीलाल जी सत्याग्रह को सत्याग्रह के लिए पसन्द नहीं करते थे। वे तो रौलेट-ऐक्ट की भाँति का आन्दोलन चाहते थे, जो पीछे हिंसात्मक हो जाए। जवाहरलाल जी के कैद हो जाने से ऐसा सम्भव नहीं था।

:: 4 ::

जवाहरलाल जी को इन दिनों एक रामचन्द्र नाम के कथावाचक का पता चला। आप उनके विषय में अपने जीवन-चरित्र में लिखते हैं—

....(he) wandered about reciting *Tulsidas's Ramayana* and listening to tenants' grievances. He had little education and to some extent he exploited the tenantry for his own benefit, but he showed remarkable powers of organisation. He taught the peasants to meet frequently in *sabhas* to discuss their troubles and thus gave them a feeling of solidarity. Occasionally huge mass meetings were held and this produced a sense of power, *Sita Ram* was an old common cry but he gave it an almost a warlike significance and made it a signal for emergencies as well as a bond between different villages.[61]

वह इधर-उधर तुलसी रामायण की कथा कहता हुआ घूमता था और किसानों की कठिनाइयों को सुनता था। वह पढ़ा-लिखा नहीं था और एक सीमा तक किसानों को अपने निजी लाभ के लिए प्रयोग करता था। इस पर भी उसमें संगठन करने की अद्‌भुत शक्ति थी। उसने किसानों को सभाओं में एकत्रित होना सिखाया। अपना दुःख-दर्द कहना सिखाया और उसमें संगठन का भाव उत्पन्न किया। बहुत बड़ी-बड़ी सभाएँ होती थीं और उनमें शक्ति का अनुभव भी होता था। सीताराम एक पुराना और सर्वमान्य समाघोष भी है, परन्तु उसने इसको एक युद्ध-घोष का रूप दे दिया। यह भिन्न-भिन्न गाँवों के लोगों को एकत्रित होकर विपत्ति को टालने का संकेत बन गया था।

जवाहरलाल जी के दृष्टिकोण से रामचन्द्र बाबा में दोष यह ही था कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकथा कह–कहकर संगठन करता था। इतना यहाँ लिख दिया जाए तो और भी ठीक होगा कि बाबा रामचन्द्र के आन्दोलन के कारण ही सरकार को अवध के टेनेन्सी ऐक्ट में संशोधन करना पड़ा था। यह ठीक था कि वह सबकुछ नहीं हो सका जो नेहरूजी चाहते थे, इस पर भी यह सत्य है कि इस आन्दोलन के कारण कानून में सुधार हुआ था और उससे किसानों को बहुत सीमा तक आराम मिला था।

यह हम आगे चलकर बताएँगे कि जवाहरलाल जी कुरान की तलावत के इतने विरोधी नहीं थे, जितने रामायण के द्वारा आन्दोलन से वे भड़के थे। इनको अपनी शिक्षा का भारी अभिमान भी था। इसी कारण उन्हें, एक रामायण पढ़ने वाला समाजवादी आन्दोलन चलाता हुआ भला नहीं प्रतीत हुआ था।

श्री मोतीलाल जी को मालवीय जी का विरोध करते हुए हम ऊपर बता चुके हैं। यह देश का दुर्भाग्य था कि हिन्दू भावनाओं का विरोध करने वाले हिन्दुओं का नेतृत्वं सम्हालते जा रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ परिच्छेद

महात्मा गांधी और श्री मोतीलाल नेहरू

:: 1 ::

अमृतसर में गांधी जी और लोकमान्य तिलक की ख्याति देख मोतीलाल जी के मन में राजनीति में ख्याति पाने की लालसा जाग पड़ी और वे कांग्रेस में अपने पक्ष को प्रबल करने की इच्छा करने लगे। इस प्रवृत्ति को बुरा नहीं कहा जा सकता। इस इच्छा में मोतीलाल जी गांधी जी को अपने विचारों के विपरीत लोगों के साथ जाते देख नाराज़ हुए थे। उन्होंने श्रीयुत दास को अपने साथ रखने का यत्न किया प्रतीत होता है।

जवाहरलाल जी अभी किसी गिनती में नहीं थे। मोतीलाल जी के कांग्रेस के प्रधान बन जाने के कारण जवाहरलाल कांग्रेस के सेक्रेटरी का काम करने लगे थे। वे अपने पिता के पीछे-पीछे चल रहे थे।

मोतीलाल जी और गांधी जी को सरकार से और उदार दलवालों से सहयोग पसन्द नहीं आया। यह ठीक था कि सरकार ने मार्शल लॉ में अत्याचार करने वाले अधिकारियों को दंड नहीं दिया था। यह भी ठीक है कि 1919 के सुधारों से वह सबकुछ नहीं मिला था, जो कुछ लोग आशा करते थे; परन्तु ये इतने प्रबल कारण नहीं हो सकते थे, कि अमृतसर में तिलक आदि से लड़कर पास कराया प्रस्ताव कार्य में न लाया जाता। सुधारों में कमी तो अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन के समय पर भी विदित थी। तो फिर यह क्या हो गया कि एकदम सम्राट का, सुधारों के लिए धन्यवाद करते-करते सम्राट् की सरकार का विरोध आरम्भ कर दिया गया? कोई भी बुद्धि रखने वाला व्यक्ति इस कलाबाजी को समझ नहीं सका। ऐसा प्रतीत होता है कि मोतीलाल जी तथा गांधी जी अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन में जनता का जोश देख यह समझ गए थे कि ये एक ही हल्ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में स्वराज्य ले लेंगे। इसके साथ ही मुसलमानों पर भी बहुत आशा रखते प्रतीत होते थे।

परिणाम हुआ कांग्रेस का कलकत्ता में विशेष अधिवेशन। इस अधिवेशन के विषय में जवाहरलाल जी इस प्रकार लिखते हैं—

"पंजाब और खिलाफ़त के साथ अन्याय उन दिनों सर्वत्र चर्चा के विषय थे। और इस अन्याय को मिटाने का उपाय असहयोग (Non-co-operation) सबके दिमागों में छाया हुआ था। राष्ट्र की स्वतन्त्रता अर्थात् स्वराज्य के महान विषय पर उस समय जोर नहीं डाला जा रहा था।"[62]

जवाहरलाल जी, जो मोतीलाल जी के साथ रहते थे और जो गांधी जी के आन्दोलन के भक्त थे, दोनों बड़ों के मनोभावों को ठीक ही प्रकट करते प्रतीत होते हैं। उस समय शासन में सुधार मिले थे। उन सुधारों पर अभी कार्य होना आरम्भ भी नहीं हुआ था। अमृतसर कांग्रेस में इन सुधारों को कार्य में लाने का निर्णय हो चुका था। इस कारण राजनीतिक विषय पर आन्दोलन का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता था इस पर भी आन्दोलन आरम्भ किया गया। पंजाब के साथ अन्याय और खिलाफ़त के साथ अन्याय, क्या इतने प्रबल कारण थे कि पूर्ण देश की समस्या को पीछे छोड़ दिया जाता और देश को जीवन-मरण के संघर्ष में झोंक दिया जाता? बात वही थी जो हम ऊपर लिख आए हैं कि गांधी जी और नेहरू परिवार किसी कार्य (action) के लिए उतावले हो रहे थे। दोनों को दिशा का ज्ञान नहीं था।

कलकत्ता के विशेष अधिवेशन के विषय में जवाहरलाल जी इस प्रकार लिखते हैं—

In the autumn of 1920 a special session of the Congress met at Calcutta to consider what steps should be taken and, in particular, to decide about non-co-operation. Lala Lajpat Rai, freshly back from the United States after a long absence from home, was the President. He disliked the new-fangled proposal of non-co-operation and opposed it. He was usually considered an Extremist in Indian politics, but his general outlook was definitely constitutional and moderate. Force of circumstances and not choice or convictions had made him an ally of Lokamanya Tilak

1920 के पतझड़ में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। इसमें विचारार्थ विषय यह था कि आगे क्या पग उठाया जाए। विशेष रूप में असहयोग के विषय में। अधिवेशन के सभापति लाला लाजपतराय थे। वे अभी-अभी संयुक्त राज्य अमेरिका में एक लम्बे काल तक रहकर आए थे। वे नई निर्मित योजना को पसन्द नहीं करते थे और इसका विरोध करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

and other Extremists in the early days of the century. But he had a social and economic outlook, strengthened by his long residence abroad, and this gave him a broader vision than that of most Indian leaders.

वे हिन्दुस्तानी राजनीति में प्रायः उग्र विचारों के समझे जाते थे परन्तु सामान्य दृष्टि में वे वैधानिक और उदार विचारों के माने जाते थे। परिस्थितियों के कारण न कि विचारों के कारण, वे इस शताब्दी के आरम्भ में लोकमान्य तिलक और दूसरे उग्र-विचारधारा वालों के साथी बन गए थे। इस पर भी उनका सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण था, जो उनके चिरकाल तक विदेश में रहने के कारण सुदृढ़ हुआ था। ये अन्य हिन्दुस्तानी नेताओं से विशाल विचार रखते थे।

यह पूर्ण कथन जवाहरलाल जी में बुद्धि के दिवालियापन का सूचक है। प्रथम तो अमृतसर अधिवेशन के उपरान्त कांग्रेस का कोई अधिवेशन हुआ नहीं था और असहयोग आन्दोलन का प्रश्न ही उपस्थित नहीं था। कांग्रेस के इस विशेष अधिवेशन में यह निश्चय होना था कि पंजाब में हुए अत्याचार के निराकरण के लिए क्या पग उठाए जाएँ। यह ठीक था कि गांधी जी संकेत कर रहे थे कि इन प्रश्नों पर सत्याग्रह किया जा सकता है, परन्तु कौन बुद्धिशील व्यक्ति देश में नए सुधारों को प्रयोग में लाने के स्थान एक अन्याय की बात को लेकर एक देशव्यापी आन्दोलन आरम्भ करने के पक्ष में हो सकता था?

जब गांधी जी ने अपना प्रस्ताव विषय निर्धारिणी समिति में रखा तो सब-के-सब नेता उनके विपरीत हो गए। इसमें लाला लाजपतराय का प्रश्न कैसे आ गया?

साथ ही जवाहरलाल जी लिखते हैं कि घटनावश लाला लाजपतराय, तिलक जी तथा अन्य उग्र विचार के लोगों के साथ मिल गए थे। वास्तव में वे सर्वथा वैधानिक और उदार विचारों के थे। वे क्या थे और क्या नहीं थे, यह विचारणीय नहीं। विचारणीय यह है कि क्या ख़िलाफ़त के प्रश्न पर देश को एक महान् आन्दोलन में झोंक देना उग्र विचार की बात थी? जवाहरलाल जी के विचार विचित्र हैं। उनके दिमाग में कार्य ही मुख्य है। कार्य का उद्देश्य गौण रहा है। उग्रता देश को आगे ले जाने का नाम है अथवा व्यर्थ में एक असम्बद्ध कार्य के लिए देश के धन जन की होली करने का? जवाहरलाल जी स्वयं लिखते हैं कि स्वराज्य की बात दिमाग में नहीं थी। केवल पंजाब के साथ अन्याय और ख़िलाफ़त के साथ अन्याय ही विचाराधीन थे। भला कोई पूछे कि ख़िलाफ़त के विषय में क्या अन्याय हुआ था और किसके साथ हुआ था? जवाहरलाल जी 1907 के तिलक आदि के आन्दोलन और स्वदेशी आन्दोलन को तो मज़हबी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रीयता कहते हैं। भला वे इस खिलाफ़त के आन्दोलन को क्या नाम देते थे? वन्देमातरम् गीत गाते हुए फाँसी के तख़्ते पर चढ़ने वाले तो मज़हबी राष्ट्रवादी थे और खिलाफ़त के नाम पर जेलों को जाने वाले कहाँ के राष्ट्रवादी हो गए? इस सब में बुद्धिमत्ता का कहीं चिह्न मात्र भी दिखाई नहीं देता।

फिर लाला जी जवाहरलाल जी को समाजवादी और आर्थिक विचारों से विशाल विचार वाले दिखाई दिए थे। भगवान जाने जवाहरलाल जी किस-किस के विषय में क्या-क्या लिखते रहे हैं? लाला लाजपतराय जी स्पष्ट रूप में पैसे वाले आदमी थे। वे सरमायादारी को पाप नहीं मानते थे। पंजाब के एक विख्यात बैंक के मैनेजिंग डायरेक्टर रहे थे। यह ठीक है कि धार्मिक प्रवृत्ति रखने के कारण दान-दक्षिणा देते रहते थे। वे धन कमाने में विश्वास रखते थे और फिर दान देने में भी विश्वास रखते थे।

लाला लाजपतराय आर्यसमाजी और दयानन्द के भक्त थे। वे देश में पूर्ण स्वराज्य के इच्छुक थे और इस नाते उनके और तिलक जी के विचारों में समानता थी, तो विस्मय करने की कौन-सी बात थी?

इसी विशेषाधिवेशन के विषय में जवाहरलाल जी लिखते हैं :

Lala Lajpat Rai was not alone in his opposition ; he had a great and impressive company with him. Indeed, almost the entire Old Guard of the Congress opposed Gandhiji's resolution of non-co-operation. Mr. C.R. Das led the opposition, not because he disapproved of the spirit behind the resolution, for he was prepared to go as far or even farther, but chiefly because he objected to the boycott of the new legislatures.

Of the prominent leaders of the older generation my father was the only one to take his stand by Gandhiji at that time.[64]

इस प्रस्ताव (असहयोग) का विरोध करने में लाला लाजपतराय अकेले नहीं थे। उनके साथियों में बड़े-बड़े और प्रभावशाली नेता थे। सत्य ही सब-के-सब कांग्रेसी-नेता गांधी जी के प्रस्ताव का विरोध करते थे। श्रीयुत सी.आर. दास विरोधियों के नेता थे। उनका विरोध इस कारण नहीं था कि वे इस असहयोग के भाव के विरोधी थे। वे तो दूर तक, वरंच इस (गांधी जी) से भी आगे जाने के लिए तैयार थे। नई विधान सभाओं का बहिष्कार करने में उनको विशेष आपत्ति थी।

सब मुख्य-मुख्य नेताओं में से केवल मेरे पिता (मोतीलाल जी) उस समय गांधी जी के साथ थे।

वास्तव में उस इतिहास को जो अमृतसर अधिवेशन और कलकता अधिवेशन के बीच के काल का है, पढ़ा जाए तो पता चलेगा कि यह मोतीलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी ही थे, जिन्होंने गांधी जी को यह प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए उत्साहित किया था। उन्होंने गांधी जी को ऐसी प्रेरणा दी कि वे मालवीय जी के साथ रहने के स्थान, अली भाइयों के साथी बन गए थे।

बात यह हुई कि विषय-निर्धारिणी में तो गांधी जी का प्रस्ताव स्वीकार नहीं हुआ। गांधी जी ने अपने प्रस्ताव को खुले अधिवेशन में रखने की स्वीकृति माँगी। जब यह स्वीकृति दी गई तो गांधी जी के नाम की ख्याति और बहुत-से मुसलमानों की खुले अधिवेशन में उपस्थिति ने चित्र बदल दिया। गांधी जी की जय-जयकार का नारा लगाकर वोट ले लिये गए और असहयोग का प्रस्ताव पास हो गया। अन्य नेता अभी भी इस आन्दोलन की उपादेयता को स्वीकार नहीं करते थे।

अतः इस विशेषाधिवेशन के प्रस्ताव को पुनः नागपुर के अधिवेशन में पारित कराने की आवश्यकता अनुभव हुई। असहयोग योजना से असहमति रखने वाले, नागपुर में भारी तैयारी से गए थे। यद्यपि पिछले चार महीनों में गांधी जी को अपने मत के प्रचार का भारी अवसर मिल गया था, इस पर भी गांधी जी को सफलता में सन्देह होने लगा था। लाला लाजपतराय, श्री तिलक और बहुत-से पंजाबी, बंगाली, महाराष्ट्रियन तथा मद्रासी नेता भी विरोध के लिए तैयार होकर आए थे। यहाँ भी सी.आर. दास विरोध करने वालों का नेतृत्व कर रहे थे। पहले दिन की बैठक में ही गांधी जी का पक्ष ढीला दिखाई देने लगा था। इस पर गांधी जी ने एक ओर तो प्रस्ताव में संशोधन कर लिया। उन्होंने पंजाब और खिलाफ़त के विषय के साथ स्वराज्य प्राप्ति का विषय भी जोड़ लिया। दूसरी ओर गांधी जी उसी रात सी.आर. दास के कैम्प में पहुँचे और उनको समझाने लगे। जब दास की युक्तियों से गांधी जी निरुत्तर हो गए तो वे अपनी झोली दास बाबू के सामने फैला अपने समर्थन की भिक्षा माँगने लगे। रात के दो बज गए थे। अन्त में दास बाबू मान गए और अगले दिन सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित हो गया।

इस घटना का उल्लेख नेहरू जी ने नहीं किया। इस पर भी यह घटना सत्य है। इसका उल्लेख एक से अधिक विश्वस्त व्यक्तियों ने किया है।

इसके उपरान्त गांधी जी ने अपने भाषण में कहा था कि वे एक करोड़ रुपया और एक करोड़ स्वयंसेवक चाहते हैं और वे वचन देते हैं कि स्वराज्य एक वर्ष में ले देंगे।

इस अधिवेशन के उपरान्त बहुत-से पुराने नेता कांग्रेस छोड़ गए। इनमें एक मिस्टर जिन्ना थे। जवाहरलाल जी मिस्टर जिन्ना के विषय में भी अपने भ्रान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार लिखते हैं—

A few old leaders, however, dropped out of the Congress after Calcutta, and among these a popular and well-known figure was that of Mr. M.A. Jinnah. Sarojini Naidu had called him the "Ambassador of Hindu-Muslim Unity", and he had been largely responsible in the past for bringing the Moslem League nearer to the Congress. But the new developments in the Congress—non-co-operation and new constitution which made it more of a popular and mass organization—were thoroughly disapproved of by him. He disagreed on political grounds, but it was not politics in the main that kept him away. There were still many people in the Congress who were politically even less advanced than he was. But temperamentally he did not fit in at all with the new Congress. He felt completely out of his element in the khadi-clad crowd demanding speeches in Hindustani. The enthusiasm of the people outside struck him as mob-hysteria. There was as much difference between him and the Indian Masses as between Savile Row and Bond street and the Indian village with its mud-huts. He suggested once privately that only matriculates should be taken into the Congress........So he drifted away from the Congress.[65]

कलकत्ता अधिवेशन के उपरान्त कई नेता कांग्रेस से निकल गए। इनमें एक विख्यात और जाने-पहचाने व्यक्ति मिस्टर एम.ए. जिन्ना थे। एक बार सरोजिनी नायडू ने इनके विषय में कहा था कि ये हिन्दू-मुसलमान ऐक्य के अग्रदूत थे। ये मुस्लिम लीग को कांग्रेस के समीप लाने में बहुत सीमा तक जिम्मेदार थे। परन्तु कांग्रेस में नई प्रगति, असहयोग आन्दोलन और नया विधान जिसने कांग्रेस को अधिक विख्यात कर दिया था और इसे जन-जन की संस्था बना दिया था इनको बिलकुल पसन्द नहीं थे। वे कांग्रेस से राजनीतिक मतभेद रखते थे। परन्तु उनके कांग्रेस से पृथक् होने में राजनीतिक मतभेद कारण नहीं था। उस समय भी कांग्रेस में बहुत लोग थे जो राजनीतिक विचारों से मिस्टर जिन्ना से कम उन्नत थे। वास्तविकता यह थी कि स्वभाव से ये इस नई कांग्रेस के अनुकूल नहीं थे। खादी पहनी भीड़ से वे अपने को सर्वथा विलक्षण पाते थे। लोग हिन्दुस्तानी में भाषण चाहते थे। लोगों का जोश उनको पागलपन दिखाई देता था। उनमें और हिन्दुस्तानी जनता में इतना अन्तर था जितना लंदन की 'सिविल रो' की बस्ती या बांड स्ट्रीट और मिट्टी के झोपड़ों से युक्त एक हिन्दुस्तानी गाँव में है। इन्होंने एक बार बातों ही बातों में कहा था कि कांग्रेस में दसवीं श्रेणी तक के पढ़े ही सम्मिलित होने चाहिएँ।

यह वक्तव्य भी उतना ही भ्रांत दृष्टि का सूचक है जितना जवाहरलाल जी का कथन, लाला लाजपत राय जी के विषय में था। जिन्ना और गांधी जी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर स्वभाव इत्यादि का नहीं था। कम से कम पृथकता उस अन्तर के कारण प्रतीत नहीं होती। यह राजनीतिक विषयों के कारण ही थी। एक समय आया था; जब जिन्ना ने भी अपने को लगभग उतना ही विख्यात नेता सिद्ध कर दिखाया था। यदि जनता में ख्याति ही सच्चाई का माप-दंड होती तो जिन्ना को भी उतना ही ठीक मानना पड़ेगा जितना गांधी जी अथवा जवाहरलाल जी को। परन्तु यह गलत बात है। दो परस्पर विरोधी हों तो दोनों ठीक नहीं हो सकते। हकीकत यह थी कि जिन्ना और गांधी जी में राजनीतिक विषयों पर मतभेद हो गया था। भीड़ के हो-हल्ला से असत्य बात सत्य नहीं हो सकती। इतिहास इस बात का साक्षी है कि गांधी जी गलत थे और विरोधी नेता ठीक थे।

जिन्ना साहब का यह कहना कि कांग्रेस में दसवीं तक पढ़े ही सदस्य बन सकें, राजनीतिक दृष्टि में भेद ही बताता है। इसमें गरीब और अमीर का प्रश्न नहीं था यह तो योग्यता की बात थी। देश की राजनीतिक नीतियों का निश्चय करने वाली संस्था में यदि शिक्षा की योग्यता रखी जाती है तो यह स्वभाव (temperamental) विभेद नहीं कहा जा सकता। यह राजनीतिक विषयों में विचार-भेद ही कहा जा सकता है।

जवाहरलाल जी की और गांधी जी की हिन्दुओं में ख्याति एक पृथक् बात है, परन्तु जिन्ना साहब की मुसलमानों में ख्याति गांधी जी और जवाहरलाल जी के विरोध पर भी विचारणीय बात है।

शान्तिमय असहयोग आन्दोलन की तैयारी आरम्भ हो गई। नेतागण घूम-घूम कर लोगों को आन्दोलन के लिए तैयार करने लगे।

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है। वह यह कि कांग्रेस के कार्यकर्त्ता सर्वसाधारण को धोखा देने का भी यत्न करते रहे थे। जवाहरलाल जी उन दिनों संयुक्त प्रान्त के गाँवों में घूम रहे थे। और उन्होंने अपने अनुभव लिखे हैं। उन अनुभवों में आप लिखते हैं—

...the word 'Khilafat' bore a strange meaning in most of the rural areas. People thought it came from *khilaf*, an Urdu word meaning 'against' or 'opposed to' and so they took it to mean : opposed to Government! They discussed, of course, especially their own particular economic grievances.[66]

प्रायः देहातों में खिलाफ़त के विचित्र अर्थ लिये जाते थे। लोग समझते थे कि यह शब्द उर्दू के शब्द 'खिलाफ' से निकला है और वे इसका अर्थ लेते थे सरकार की मुखालफत करना। इससे वे अपनी सभाओं में अपनी शिकायतें रखते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि यह बात सत्य है तो निस्सन्देह कांग्रेस के कार्यकर्त्ता इन सरल चित व्यक्तियों को धोखा दे रहे थे। अधिक सम्भव यह है कि वे कार्यकर्त्ता न केवल इन देहातियों को धोखा देते थे, प्रत्युत नेहरू जी को भी झूठ बात बता रहे थे। वास्तविकता यह है कि जहाँ भी कोई मुसलमान रहता था, वह खिलाफ़त के विषय में ठीक-ठीक जानता था। खलीफा उनके मज़हब का एक अंग था और मुसलमान अपने मज़हब के विषय में हिन्दुओं की भाँति अनभिज्ञ नहीं होते। होता यह रहा है कि कांग्रेस के कार्यकर्त्ता हिन्दू देहातियों को खलीफा की बात बताने के स्थान पर खिलाफ़त को मुखालफत बताते रहे हैं।

यथार्थ बात तो यह थी कि नेहरू जी तथा उन जैसे कार्य करने वालों की अवस्था एक बुद्धिशील व्यक्ति की रही ही नहीं थी। वे स्वयं ही लिखते हैं—

Many of us who worked for the Congress programme lived in a kind of intoxication during the year 1921. We were full of excitement and optimism and buoyant enthusiasm. We sensed the happiness of a person crusading for a cause. We were not troubled with doubts or hesitation; our path seemed to lie clear in front of us and we marched ahead....[67]

हम में बहुत-से लोग जो कांग्रेस का कार्य कर रहे थे, एक प्रकार से नशे में काम कर रहे थे। हम उत्तेजना, असंतुलित जोश और आशा से भरे हुए थे। हम एक ऐसे आदमी की भाँति खुश थे, जो किसी उद्देश्य के लिए जी-जान की बाज़ी लगाए हुए हो। हमारे मन में संशय अथवा किसी प्रकार की झिझक नहीं थी और हमको अपना मार्ग सामने स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

मन की यह अवस्था श्लाघनीय मानी जा सकती है, परन्तु एक नेता के लिए नहीं, वरन युद्ध के एक सिपाही के लिए। सिपाही कार्य करता है। वह न तो विचार करने के लिए नियुक्त होता है, न ही वह विचार करने की योग्यता रखता है। ठीक यही अवस्था जवाहरलाल जी अपनी वर्णन करते हैं। इनके पूर्ण जीवन का अध्ययन करने से एक ही निष्कर्ष निकलता है कि ये विचारविहीन प्राणी थे। देश के दुर्भाग्य से वे मस्तिष्क के स्थान पर हाथ से काम करने लग गए थे।

:: 2 ::

जवाहरलाल जी सन् 1921 की देश की दशा का ठीक ही वर्णन करते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जनसाधारण ने तो नेताओं का साथ दिया था। जनसाधारण तो कार्य (action) करने वाले हैं। यदि उसमें किसी प्रकार की भूल थी, तो उस उद्देश्य में भूल थी, जिसके लिए कार्य करने के लिए कहा गया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही कार्य में कुछ ऐसी अस्वाभाविक शर्त लगा दी गई थी कि उसका पालन होना असम्भव था। पैंतीस करोड़ के देश के करोड़ों लोगों को, जोश से भरकर अहिंसात्मक रहने के लिए कहना मानव प्रकृति का मिथ्या अनुमान लगाना था।

इस पर भी हमारा तो कहना है कि यह विचार करना नेता का काम था। कार्यकर्त्ताओं का इससे कोई मतलब नहीं था। यह बात जवाहरलाल जी और उनके गुरु गांधी जी समझे नहीं। जो लोग देश के इतिहास का, थोड़ी-सी भी बुद्धि का प्रयोग कर अध्ययन करेंगे, वे जान जाएँगे कि इस प्रकार के बुद्धिविहीन कार्यों से देश का कल्याण नहीं हुआ।

इसमें बुद्धि-विहीनता यह थी कि खिलाफ़त के प्रश्न को देश की राजनीति में लाकर गलत लोगों को जन-जन का नेता बनने का अवसर दिया गया था। इस विषय में भी जवाहरलाल जी लिखते हैं—

Owing to the prominence given to the Khilafat movement in 1921, a large number of Moulvies and Muslim religious leaders took a prominent part in the political struggle. They gave a definite religious tinge to the movement, and Muslims generally were greatly influenced by it. Many a Westernised Muslim, who was not of a particularly religious turn of mind; began to grow a beard and otherwise conform to the tenets of Orthodoxy. The influence and prestige of the Moulvies, which had been gradually declining owing to new ideas and a progressive Westernisation, began to grow again and dominate the Muslim community. The Ali brothers, themselves of a religious turn of mind, helped in this process, and so did Gandhiji who paid the greatest regard to the Moulvies and the Maulanas.[68]

1921 में खिलाफ़त आन्दोलन को प्रधानता देने के कारण बहुत भारी संख्या में मौलवी और मुसलमान मज़हबी नेता उस काल के राजनीतिक संघर्ष में आगे आकर भाग लेने लगे थे। उन्होंने इस आन्दोलन को एक स्पष्ट मज़हबी रंग दे दिया और साधारण मुसलमान उनसे बहुत प्रभावित हुआ था। पाश्चात्य सभ्यता के अनुयायी बहुत-से मुसलमान, जो किसी प्रकार से भी मज़हबी नहीं रहे थे, अब वे भी इन नए नेताओं के प्रभाव में दाढ़ियाँ रखने लगे थे और मज़हबी रीति-रिवाजों का पालन करने लगे थे। मौलवियों का प्रभाव, जो यूरोपीय विचारों से ढीला होने लगा था, पुनः बढ़ने लगा। यह प्रभाव, पूर्ण मुस्लिम समुदाय पर छा गया। अली भाइयों और गांधी जी ने इस मज़हबी उभार को प्रोत्साहन दिया। ये मुसलमान मौलवियों का बहुत मान करते थे। अली भाई स्वयं भी मज़हबी विचार रखते थे।

यह महान् पापमय परिणाम निकला था गांधी जी के 1921 के आन्दोलन का। इस पाप का मूल कहाँ था, कहा नहीं जा सकता। श्री मोतीलाल जी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

21 फरवरी को लिखे पत्र से तो यही अनुमान लगाया जा सकता है कि मोतीलाल जी का इसमें हाथ था। जैसे 1916 के, मुसलमानों को अधिमान देने के प्रस्ताव में मोतीलाल जी का विशेष हाथ दिखाई देता है, वैसे ही खिलाफ़त के प्रश्न को हिन्दुस्तान की राजनीति में लाने का श्रेय भी कदाचित् श्री मोतीलाल जी को ही देना पड़ेगा।

कलकता के विशेष अधिवेशन में देश-भर के नेताओं में केवल मोतीलाल जी ही थे, जो 1921 के आन्दोलन का समर्थन करते थे। उससे पहले मोतीलाल जी यह कह चुके थे कि यदि गांधी जी मालवीय जी के साथ-साथ घूमते रहे तो वे भी उसी मार्ग पर चल देंगे जिस पर ऐनी बिसेन्ट गई हैं। श्रीमती ऐनी बिसेन्ट कांग्रेस से निकलने पर विवश कर दी गई थीं। इन सब घटनाओं का एक ही निष्कर्ष निकलता है कि मोतीलाल जी भी 1921 के आन्दोलन को दिशा देने में, यदि अधिक नहीं तो उतने ही जिम्मेदार हैं जितने गांधी जी थे।

1922 के मोपला बग़ावत से लेकर पाकिस्तान के बनने तक जो कुछ (हिन्दू-मुस्लिम दंगे) हुआ, उस सबका श्रीगणेश 1916 के कांग्रेस-मुस्लिमलीग समझौते और फिर 1921 के खिलाफ़त आन्दोलन का परिणाम ही था।

:: 3 ::

श्री जवाहरलाल जी इस आन्दोलन में सबसे आगे होकर भाग ले रहे थे और अपनी उस काल की अवस्था उन्होंने मदहोश (intoxication) की बताई है।

इस सत्याग्रह आन्दोलन के विषय में एक अन्य स्थान पर जवाहरलाल जी लिखते हैं—

What I admired was the moral and ethical side of our movement and of satyagrah. I did not give an absolute allegiance to the doctrine of non-violence or accept it for ever, but it attracted me more and more, and the belief grew upon me that, situated, as we were in India and with our background and traditions, it was the right policy for us. The spiritualisation of politics; using the word not in its narrow religious sense, seemed to me a fine idea. A worthy end should have worthy means leading up to it. That seemed not only

इस सत्याग्रह और तत्कालीन आन्दोलन में जो बात मैं प्रशंसनीय समझता था, वह इसकी आचार सम्बन्धी और नैतिक नीति थी। पूर्ण अहिंसा से मेरी सहमति नहीं थी। मैंने इसको कभी भी और अधिक, अपनी अभाज्य निष्ठा देनी स्वीकार नहीं की। इस पर भी यह मुझे अधिक अपनी ओर आकर्षित करती रही थी। मुझे विश्वास होता जा रहा था कि जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

a good ethical doctrine but sound, practical politics, for the means that are not good often defeat the end in view and raise new problems and difficulties.[69]

प्रकार हम हिन्दुस्तान में स्थित थे और जो हमारे जीवन की पृष्ठभूमियाँ तथा परम्पराएँ थीं, उनमें यही एक ठीक नीति थी। राजनीति को पवित्रता का रंग देना एक सुन्दर विचार था। इस (Spiritualisation) के तंग मज़हबी अर्थ नहीं लेने चाहिए। एक उच्च आदर्श के लिए उच्च साधन प्रयोग करना यह न केवल एक अच्छी आचार-संहिता का सिद्धान्त है, वरन बुद्धियुक्त और व्यावहारिक राजनीति भी है। साधन, जो अच्छे नहीं वे उद्देश्य की प्राप्ति को विफल कर देते हैं और नई समस्याएँ उत्पन्न कर देते हैं।

जो कुछ इस आन्दोलन में मुल्ला-मौलवी कर रहे थे वे तो किसी प्रकार भी नैतिकता अथवा आचार-संहिता के अनुकूल नहीं माना जा सकना। जवाहरलाल जी का यह वक्तव्य, बिना इसका अर्थ समझे दिया गया प्रतीत होता है। वे अहिंसा को नहीं मानते। वे इस आन्दोलन में मुल्ला-मौलवियों के कार्य को पसन्द नहीं करते, देश के वातावरण की बात भी कहते हैं और उनका अपना जीवन ऐसा रहा है, कि उनको देश की अवस्था से सर्वथा अनभिज्ञ कहा जाए तो गलत नहीं हो सकता।

सबसे बड़ी बात यह है कि इस आन्दोलन के सर्वथा असफल हो जाने पर भी, इसकी नैतिकता और इसके आचार-संहिता की डींग हाँकना विवेकहीन ही प्रतीत होती है।

जवाहरलाल जी स्पष्ट लिखते हैं कि इस आन्दोलन में लोग मदहोश हो रहे थे और जब मुल्ला-मौलवी मदहोश हुए तो मोपला बग़ावत हुई। और हो ही क्या सकता था!

हकीकत यह है कि राजनीति का घना सम्बन्ध इतिहास से है और इस समय के आन्दोलन के नेता इतिहास से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। इस्लाम एक विशेष प्रकार का आन्दोलन है जिस किसी ने भी संसार में इस आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया है उसने संसार में अशान्ति का बीजारोपण किया है और यह महान् पाप 1921 के आन्दोलन में हुआ था।

इस आन्दोलन के विषय में जवाहरलाल जी पुनः लिखते हैं—

Nineteen twenty-one was an extraordinary year for us. There was a strange mixture of nationalism and politics and religion and mysticism

1921 हमारे लिए एक उल्लेखनीय वर्ष था। एक विचित्र प्रकार का मिश्रण था राष्ट्रीयता का,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

and fanaticism........ And yet this nationalism itself was a composite force, and behind it could be distinguished a Hindu nationalism, a Muslim nationalism partly looking beyond the frontiers of India, and, what was more in consonance with the spirit of the times, an Indian nationalism.[70]

राजनीति का, मज़हब का, आत्म-दर्शन का और उन्माद का—इस राष्ट्रीयता के नीचे देखी जा सकती थी हिन्दू राष्ट्रीयता और इस्लामी राष्ट्रीयता जो एक सीमा तक देश की सीमाओं से पार जाने वाली राष्ट्रीयता थी। इन सबसे अधिक मध्य के अनुकूल हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता थी।

सदा की भाँति नेहरू जी मुसलमानों की मज़हबी राष्ट्रीयता, जो देश की सीमाओं को पार करने वाली थी, की निन्दा करते-करते एक लात हिन्दुओं पर भी लगा गए हैं।

भगवान् जाने 1921 में कौन-सी बात उनको हिन्दुओं की मज़हबी प्रतीत हुई थी। यह कांग्रेसी नेताओं का स्वभाव हो गया है कि अपने को तटस्थ सिद्ध करने के लिए वे जहाँ बुरे की निन्दा करते हैं, वहाँ भले को भी दो गाली देना अपना धर्म समझते हैं। यही बात जवाहरलाल जी ने इस स्थान पर की है। जहाँ मुसलमानों की मज़हबी राष्ट्रीयता तथा राजनीति की निन्दा कर रहे थे, वहाँ एक रगड़ा हिन्दुओं को भी दे डाला है।

यह बात है जवाहरलाल जी की अज्ञानता की सूचक। इस्लामी राष्ट्रीयता कहो अथवा राजनीति, वह तो थी खिलाफ़त के आन्दोलन के कारण। भला हिन्दू राष्ट्रीयता किस बात में थी और किस कारण थी? क्या कहीं एक भी ऐसा उदाहरण दृष्टिगोचर हुआ था, जहाँ किसी भी हिन्दू ने मुसलमान पर छा जाने का अथवा देश में हिन्दू राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया हो?

1921 के आन्दोलन के दिनों के जो लोग, अभी हिन्दुस्तान में जीवित हैं, उनमें से कोई भी सीने पर हाथ रखकर जवाहरलाल जी के इस कथन की साक्षी नहीं देगा।

यह सत्य है कि उन दिनों कांग्रेस के जलसों में मुसलमानों की नमाज़ के ससय जलसे रोक दिए जाते थे। नेताओं को अपने भाषण बीच में ही, नमाज़ पढ़ने के लिए समय देने को, बन्द करने पड़ जाते थे। है कोई माई का लाल कांग्रेसी, जो सीने पर हाथ रखकर यह कहे कि किसी स्थान पर कांग्रेस का जलसा इस कारण बन्द किया गया होगा कि कोई हिन्दू मज़हबी रस्म अदा होने वाली है?

यह हो सकता है कि मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए हिन्दुओं को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदनाम करने का मिथ्या यत्न किया गया हो। यह भी हो सकता है कि अपने पूर्वग्रहों के कारण हिन्दुओं का विरोध करने के लिए यह लिखा गया हो। कारण कुछ भी हो, यह बात असत्य है। ऐसी कोई बात उस समय नहीं थी।

हिन्दुओं में तो 1921 के आन्दोलन का यह प्रभाव हुआ था कि उनमें मज़हब नरम पड़ा था, साथ ही धर्म की भावना का भी भारी ह्रास हुआ था।

जवाहरलाल जी की अनेक अन्य मिथ्या दृष्टियों की भाँति हिन्दुओं को अकारण कोसने की दृष्टि भी हिन्दुओं के लिए घातक सिद्ध हुई है।

:: 4 ::

जवाहरलाल जी की विकृत दृष्टि का हम एक और उदाहरण देते हैं। आप लिखते हैं—

Nationalism is essentially an anti-feeling, and it feeds and fattens on hatred and anger against other national groups, and especially against the foreign rulers of a subject country. There was certainly this hatred and anger in India in 1921 against the British but, in comparison with other countries similarly situated, it was extraordinarily little...[71]

वास्तव में राष्ट्रीयता एक विरोधी विचार है। यह फलता-फूलता है दूसरी कौमों के प्रति घृणा और द्वेष पर। विशेष रूप में शासितों में विदेशीय शासकों के प्रति क्रोध और घृणा करने से यह पनपता है। निश्चय ही यह क्रोध और घृणा 1921 में हिन्दुस्तान में थी; यद्यपि इसी स्थिति में दूसरे देशों से कम।

राष्ट्रीयता की यह परिभाषा ग़लत है। यह जवाहरलाल जी के अपने मन का दर्शन कराती हो तो कराती हो, वास्तव में यह परिभाषा बुद्धिशीलों की नहीं है। उस समय विदेशी राज्यों से घृणा अवश्य थी। परन्तु इसमें यह कारण नहीं था कि यह राष्ट्रीयता के लक्षणों में है। इसमें कारण था विदेशी राज्य का अन्यायाचरण। पंजाब में मार्शल लॉ के दिनों में अमानुषिक अत्याचार किया गया था। उन अत्याचारों की एक लम्बी सूची कांग्रेस ने अपनी जाँच की रिपोर्ट में दी है, उन बातों को पढ़कर कोई भी आत्माभिमानी व्यक्ति क्रोधित हुए बिना नहीं रह सकता और उन कर्मों के करने वालों से घृणा एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। इसका राष्ट्रवाद से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह कुछ इस प्रकार है—

एक पुरुष अपनी स्त्री के साथ मेले में जा रहा है और वहाँ की भीड़ में अपनी स्त्री की रक्षा के लिए वह सतर्क और सजग है। इसका अर्थ यह नहीं कि वह दूसरों की स्त्रियों के साथ किसी प्रकार का अनाचार पसन्द करता है। यह है राष्ट्रवाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु एक विदेशी आततायी के साथ तो वह व्यवहार कुछ वैसा हो जाता है, जैसे मेले में किसी पुरुष द्वारा अन्य की स्त्री के साथ दुर्व्यवहार होने पर, उस स्त्री का पति हत्या करने के लिए भी तैयार हो जाता है। दोनों बातों में भारी अन्तर है।

राष्ट्रीयता के प्रश्न को विदेशी शासकों के अत्याचार से मिला देना तो बुद्धि का दिवाला ही माना जा सकता है। यथार्थ बात तो यह है कि जवाहरलाल जी में विश्लेषणात्मक बुद्धि कभी रही ही नहीं।

कभी सड़क पर बैण्ड बाजा बजता हुआ जा रहा हो, तो प्राय: देखा जाता है कि छोटे-छोटे बच्चे उस बैण्ड की ध्वनि के साथ नाचने लगते हैं। ठीक यही बात जवाहरलाल जी में, उनकी चालीस-पैंतालीस वर्ष की आयु में दिखाई दी है। कुछ यूरोपीय अज्ञ लेखकों ने राष्ट्रीयता को अन्तर्राष्ट्रीयता का विरोधी लिखा है और आप उनके बैंड बाजे की ध्वनि के साथ नाचने लगे प्रतीत होते हैं।

हम श्री जवाहरलाल ज़ी का मनोविश्लेषण कर रहे हैं। इस कारण ही हम उनके छपे वाक्यों के उद्धरण दे रहे हैं। आप असहयोग आन्दोलन के नेता श्री गांधी जी के विषय में लिखते हैं—

But it was obvious that to most of our leaders Swaraj meant something much less than independence. Gandhiji was delightfully vague on the subject, and he did not encourage clear thinking about it either. But he always spoke, vaguely but definitely, in terms of the under-dog, and this brought great comfort to many of us, although, at the same time, he was full of assurances to the top-dog also. Gandhiji's stress was never on the intellectual approach to a problem but on character and piety.[72]

यह स्पष्ट ही है कि हमारे प्राय: नेतागण के लिए स्वराज्य के अर्थ स्वतन्त्रता (independence) से बहुत कम थे। गांधी जी इस विषय पर बहुत मज़े में अस्पष्ट रहते थे। वे इस विषय पर स्पष्ट विचार के लिए कभी प्रोत्साहन भी नहीं देते थे। इस पर भी अस्पष्टता, परन्तु विश्वास से कहते थे, जो कम पढ़े-लिखों की भाषा होती थी। यह बात हममें से बहुतों को सुखकारक प्रतीत होती थी। साथ ही वे अधिक पढ़े-लिखों को आश्वासन देते रहते थे। गांधी जी का बल स्वराज्य के बुद्धियुक्त विश्लेषण पर नहीं था। वे सदा पवित्रता और चरित्र पर बल देते थे।

हम महात्मा जी की वकालत करने के विचार से नहीं लिख रहे। इस पर भी इतना तो कहना ही पड़ता है कि जवाहरलाल जी की गांधी जी पर आलोचना सर्वथा असंगत है। जवाहरलाल जी चाहते थे कि वे किसी बीजगणित के प्रश्न की भाँति स्वराज्य की व्याख्या जने-खने के सामने कर दें। न तो वह सम्भव था, न ही उचित। राज्य-कार्य की व्याख्या तो समय-समय पर बदलती रहती है। केवल वे सिद्धान्त ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन किए जा सकते हैं जिनके अनुसार राज्य चलाना अभिप्रेत होता है। गांधी जी स्वराज्य के आधारभूत सिद्धान्त का वर्णन एक शब्द 'रामराज्य' से कर दिया करते थे। हिन्दू इसका अर्थ समझते थे। साथ ही यह भी ठीक है कि जवाहरलाल जी इस शब्द में निहित अर्थों को समझने की सामर्थ्य ही नहीं रखते थे। जवाहरलाल जी के बाल्यकाल के संस्कार हिन्दू संस्कार नहीं थे और बड़े होकर उन्होंने हिन्दुओं से घृणा करने के अतिरिक्त कुछ किया ही नहीं था।

जवाहरलाल जी इंग्लैंड से एक धीमा-सा चित्र सोशलिज़्म का लेकर आए थे। यह चित्र उनको गांधी जी के वक्तव्यों में मिलता नहीं था। इस कारण कुछ समझने के स्थान गांधी जी को ही मज़े में अस्पष्ट (delightfully vague) कहकर उनकी हँसी उड़ाने का उन्होंने यत्न किया है। हमारा प्रश्न तो यह है कि यदि गांधी जी स्वराज्य के विषय में अस्पष्ट थे, तो इन महानुभाव का, 1950 से लेकर 1964 तक गांधी जी के पद-चिह्नों पर चलने की बात कहकर देश में समाजवाद लाने का यत्न, क्या जनता से धोखा नहीं था? समाजवाद, जो कुछ है, वह एक पृथक् बात है, परन्तु गांधी जी का नाम लेने की क्या आवश्यकता थी? गांधी जी का कहा स्पष्ट नहीं था तो उनके उल्लेख की आवश्यकता ही क्या थी? यह तो भारत की निष्कपट जनता के साथ एक भारी छलना थी। गांधी जी का रामराज्य यह सोशलिज़्म नहीं था।

यथार्थ बात यह है कि सब मानव-कामों में मूल की बातें दो ही हैं, चरित्र और पवित्रता। और यदि गांधी जी इन पर बल देते थे, तो उनको अस्पष्ट नहीं कहा जा सकता था।

जवाहरलाल जी ने इस असहयोग आन्दोलन के गुण-दोषों को तो समझा नहीं और जोश में मदहोश हुए व्यक्ति की भाँति गांधी जी के पीछे चल पड़े थे। जहाँ कहीं इन्होंने समझने का यत्न किया, ये उससे सहमत नहीं थे। इस पर भी वे इसमें लगे रहे।

1921 का पूर्ण वर्ष जवाहरलाल जी अपनी भ्रान्त मति और मदहोश मानसिक अवस्था में कार्य करते रहे। इस काल में सहस्रों पकड़े गए और जेलों में ठूँस दिए गए।

:: 5 ::

1922 में प्रिंस आफ वेल्ज़ हिन्दुस्तान में आए और कांग्रेस ने उनके सब समारोहों के बहिष्कार का निश्चय कर लिया। इस बहिष्कार से तो सरकार का

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दमन और बढ़ गया। पकड़-धकड़ और बढ़ गई। इस पकड़-धकड़ में मोतीलाल जी और जवाहरलाल जी भी आ गए।

अभी तक जवाहरलाल जी या तो गांधी जी के पीछे-पीछे चल रहे थे या अपने पिताजी के पीछे।

वे स्वयं लिखते हैं—

I suppose my father and Gandhiji have been the chief personal influences in my life. But outside influences do not carry me away. There is a tendency to resist being influenced. Still influences do work slowly and subconsciously.[73]

मैं समझता हूँ कि मेरे जीवन पर मेरे पिताजी तथा गांधी जी का प्रभाव मुख्य रहा है। इस पर भी बाहरी प्रभाव मुझको बहाकर नहीं ले जाते थे। मुझमें कुछ ऐसी बात है, जिससे मैं प्रभावों का विरोध करता हूँ। फिर भी प्रभाव अपना काम धीरे-धीरे और बिना जाने-बूझे करते रहते हैं।

यह बात कुछ ठीक ही प्रतीत होती है। जितने भी बुद्धिरहित प्राणी इस संसार में उत्पन्न होते हैं, वे अपने संस्कारों के अधीन काम करते हैं। साथ ही संस्कार सुगमता से बदलते नहीं। संस्कार संस्कारों से ही मिटते हैं। इसमें समय लगता है। मनुष्य में बुद्धि ही एक ऐसा यंत्र है, जो मनुष्य के जीवन का काँटा एकदम बदलने की शक्ति रखता है।

यह तो मानना पड़ेगा कि 1921 में हिन्दुस्तान के लोग एक उबाल की अवस्था में थे। इस उबाल के कई कारण बताए जा सकते हैं। कारण कुछ भी रहे हों, परन्तु उस समय यह प्रतीत होता था कि हिन्दुस्तान एक स्वर से यह कह रहा है कि हम ब्रिटिश अंकुश से छूटना चाहते हैं।

अंग्रेज़ी सरकार इस आन्दोलन की उग्रता का विरोध करने के लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थी। यहाँ रहने वाले अंग्रेज़ भयभीत थे। इस पर भी हिन्दुस्तान जैसी 'सोने की चिड़िया' को छोड़ने का विचार उनका स्वप्न में भी नहीं था। यह बात निर्विवाद थी कि हिन्दुस्तान के लोग तो राज्य करने के योग्य नहीं थे। यों तो कहा जा सकता है कि यहाँ के लोग अभी भी राज्य करने के योग्य नहीं हैं, जब इनको राज्य मिला है। यह भी ठीक ही है। बात यह है कि राज्य मिलता है राज्य छीनने की शक्ति से, राज्य का भोग मिलता है प्रबन्ध करने की योग्यता पर। राज्य छीनने की शक्ति छीनने वाले की सामर्थ्य पर भी निर्भर करती है और जिनसे छीनना हो, उनकी दुर्बलता पर भी निर्भर करती है। 1921 में इंग्लैंड भारत से दुर्बल नहीं था। इस कारण इतना बड़ा आन्दोलन होने पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वराज्य नहीं मिल सका। 1947 में भारत अपने सहायकों के साथ मिलकर इंग्लैंड से बलशाली हो गया था और इंग्लैंड द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण बहुत दुर्बल हो गया था। 1947 में भारत के मित्र, जो इसको स्वराज्य दिलाने में रुचि रखते थे और सहायता कर रहे थे, वे थे अमरीका और इंग्लैंड की लेबर पार्टी।

1921 में नेता लोग कैसे थे, इसका भी एक दर्शन जवाहरलाल जी ने कराया है—

There was sufficient posing there and no lack of vulgarity in our flamboyant addresses. Our speeches were often very eloquent but, equally often, singularly pointless. It is difficult to see oneself as others see one.[74]

अपने व्याख्यानों में हम दिखावा बहुत करते थे और उनमें फूहड़पन की कमी नहीं होती थी.... हमारे व्याख्यान प्रायः मनोद्‌गारों को उभारने वाले और उद्देश्यहीन होते थे। अपने आपको देखना कठिन होता है। दूसरों को ही देखा जा सकता है।

यह निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि 1921-22 का आन्दोलन केवल लोक-संग्रह का ही था। इसमें लोक-कल्याण की भावना बहुत कम थी।

लोक-कल्याण तो लोक शिक्षा से ही संभव होता है और शिक्षा का काम उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ में ले रखा था। कांग्रेसी नेता स्वयं ही उस शिक्षा की उपज थे। इन नेताओं ने उस जनता को भी जो सरकारी शिक्षा के प्रभाव में अभी नहीं आई थी अपने पीछे लगा लिया।

यदि गांधी जी के आन्दोलन का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि जो बल गांधी जी के 1921-22 के आन्दोलन में था, वह 1930 के आन्दोलन में नहीं था और जो बल 1930 के आन्दोलन में था, वह 1932 में नहीं था। 1942 का आन्दोलन तो उक्त तीनों आन्दोलनों से शिथिल रहा था। 1942 के आन्दोलन में एक बात हुई थी। इसमें पूर्व के आन्दोलनों से अधिक हिंसात्मक कार्य हुआ था। हाँ, यदि इस हिंसात्मक कार्य को भी आन्दोलन का भाग माना जाए तो निस्संदेह यह आन्दोलन गांधी जी के सब आन्दोलनों से बड़ा माना जाएगा।

इन आन्दोलनों के फल भी इसी अनुपात में हुए जिसमें उनका बल था। 1921-22 के आन्दोलन का उद्देश्य तो खिलाफ़त, पंजाब के अत्याचार का निराकरण और एक वर्ष में स्वराज्य प्राप्त करना था। इन तीनों उद्देश्यों में यह आन्दोलन असफल रहा। परन्तु इस आन्दोलन का एक उद्देश्य लोक-संग्रह था। यही बात जवाहरलाल जी के कथन से प्रकट होती है। इस उद्देश्य में गांधी जी का यह आन्दोलन बहुत सीमा तक सफल रहा था। गांधी जी और कांग्रेस ने इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबल लोकमत अपने साथ कर लिया था कि इसके उपरान्त आज तक कोई भी राजनीतिक दल कांग्रेस के समान शक्तिशाली बन नहीं सका। इस लोक-संग्रह में जनता में विवेक और ज्ञान की बात पैदा करने का यत्न नहीं किया गया। परिणाम सामने है। जनता कांग्रेस के नाम पर मतदान करती है। उचित-अनुचित के विषय में विचार करने की उसमें सामर्थ्य नहीं बन पाई।

सन् 1857 से लेकर सन् 1913 तक धीरे-धीरे देश-प्रेम की भावना जागृत हो रही थी। इस भावना का प्रकटीकरण होता रहा क्रान्तिकारियों के कार्यों में। हिंसात्मक उपाय इन क्रान्तिकारियों की आधारशिला थी। गांधी जी ने उस पनप रहे देश-प्रेम से लाभ उठाकर, अपना सन् 1921-22 का आन्दोलन चलाया था। गांधी जी ने उपायों में अन्तर कर दिया। हिंसात्मक उपायों के स्थान उन्होंने अहिंसात्मक उपायों का प्रयोग आरम्भ किया। देश-प्रेम (patriotism) तो वही था। देश की विडम्बना यह थी कि गांधी जी के शिष्य जवाहरलाल जी को यह देश-प्रेम ही पसन्द नहीं आया। अंग्रेज़ शासक भी गांधी जी के आन्दोलन में देश-प्रेम को ही एक बड़ा कारण समझता था। इसी कारण उसको शिथिल करने के लिए वह देश को शिथिल करने में लग गया। सन् 1921 के उपरान्त शिक्षा का रूप ही बदल दिया गया। इसमें एक बात यह की गई कि शिक्षा को केन्द्रीय विषय न रखकर प्रांतीय विषय बना दिया। इससे ही भिन्न-भिन्न भाषाओं और भिन्न-भिन्न सभ्यताओं की भावना का प्रादुर्भाव हुआ। एक देश, एक भाषा, एक जाति की भावना विलुप्त होने लगी। श्री जवाहरलाल, जो राष्ट्रवाद से घृणा करते थे, इस नीति का समर्थन करने वाले बन गए। इनका समर्थन देश में संयुक्त राज्य (Federal state) स्थापित करने का रूप ग्रहण कर गया। यह देश का दुर्भाग्य था कि गांधी जी इस भावना के समर्थक हो गए। यह नीति जवाहरलाल जी ने स्वराज्य काल में भी चलाई और देश मानसिक धरा पर खंडित हो गया। जो कुछ सन् 1965, 67 में मद्रास में हुआ, वह ब्रिटिश सरकार की चलाई नीति और जवाहरलाल जी द्वारा स्वराज्य काल में चलाई नीति का ही परिणाम था। आज दक्षिण में एक प्रबल दल उत्पन्न हो गया है जो दक्षिण को भारत का अंग नहीं मानता।

अंग्रेज़ अपनी शिक्षा-पद्धति में इस बात पर बल देता रहा था कि हिन्दुस्तान एक देश नहीं, यह महाद्वीप है। जवाहरलाल जी ने कांग्रेस से संयुक्त-राज्य का प्रस्ताव पारित कराकर इस महाद्वीप की भावना को बल दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 6 ::

सन् 1921-22 का आन्दोलन एक नाटकीय ढंग से समाप्त हुआ। जवाहरलाल जी अभी लखनऊ जेल में ही थे, जब उनको समाचार मिला कि महात्मा जी ने सत्याग्रह आन्दोलन बन्द कर दिया है। आन्दोलन को स्थगित करने का कारण संयुक्त प्रान्त में जिला गोरखपुर के एक स्थान चौरी-चौरा की घटना थी। वहाँ क्रोध से भरी भीड़ ने एक पुलिस चौकी को आग लगाकर उसमें कुछ पुलिस के सिपाहियों को जीवित जला दिया था। पुलिस ने भीड़ पर गोली चलाई थी, जिससे कई लोग मारे गए थे। इस गोली-काण्ड से भीड़ भड़क उठी और उसने चौकी को घेरा डाल दिया और उसको आग लगा दी। इस आग में पुलिस के बाईस सिपाही जीवित जल गए। इस समाचार के मिलने पर गांधी जी ने अपना सत्याग्रह आन्दोलन पूर्ण देश में बन्द कर दिया। यह फरवरी 1922 की बात है।

जवाहरलाल जी तथा उनके पिता ने यह आन्दोलन बन्द किए जाने का समाचार लखनऊ जेल में पढ़ा। पिता-पुत्र दोनों स्तब्ध रह गए। जवाहरलाल जी ने एक पत्र जेल से गांधी जी को लिखा। गांधी जी अभी पकड़े नहीं गए थे। इस पत्र में जवाहरलाल जी ने आन्दोलन बन्द करने पर अपना असन्तोष लिखा और उसमें युक्तियाँ दीं कि यह बन्द करना ठीक नहीं हुआ। गांधी जी पर इन युक्तियों का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। गांधी जी ने एक लम्बा पत्र उत्तर में लिखा। यह पत्र जवाहरलाल जी को उनकी बहिन श्रीमती विजय लक्ष्मी ने पहुँचाया था।

इस पत्र का एक अंश हम यहाँ देना उचित समझते हैं—

यह पत्र 19 फरवरी सन् 1922 को लिखा गया था। इस लम्बे पत्र में से इतना लम्बा उदाहरण देने का विशेष प्रयोजन है। इससे तत्कालीन स्थिति की झलक मिलती है।

I sympathise with you, and my heart goes out to Father. I can picture to myself the agony through which he must have passed, but I also feel that this letter is unnecessary because I know that the first shock must have been followed by a true understanding of the situation. Let us not be obsessed by Devidas's youthful indiscretions. It is quite possible that the poor boy has been swept off his

मैं आपसे सहानुभूति रखता हूँ और मेरे हृदय में आपके पिता के लिए संवेदना है। उस पूर्व वेदना, जो उनको हुई होगी, का चित्र मेरे सामने है। इस पर भी मैं यह समझता हूँ कि यह पत्र आवश्यक नहीं, क्योंकि अब तक पहला सदमा समाप्त होकर वस्तुस्थिति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

feet and that he has lost his balance, but the brutel murder of the Constables by an infuriated crowd which was in sympathy with non-co-operation cannot be denied. Nor can it be denied that it was a politically minded crowd. It would have beed criminal not to have heeded such a clear warning.

I must tell you that this was the last straw. My letter to the Viceroy was not sent without misgivings as its language must make it clear to anyone. I was much disturbed by the Madras doings, but I drowned the warning voice. I received letters both from Hindus and Mohammedans from Calcutta, Allahabad and the Punjab, all these before the Gorakhpur incident, telling me that the wrong was not all on the Government side, that our people were becoming aggressive, defiant and threatening, that they were getting out of hand and were not non-violent in demeanour. Whilst the Ferozepur-Jirka incident is discreditable to the Government, we are not altogether without blame. Hakimji complained about Bareilly. I have better complaint about Jajjar. In Shahajanpur too there has been a forcible attempt to take possession of the Town Hall. From Kanouj too the Congress Secretary himself telegraphed saying that the volunteer boys had become unruly and were picketing a High School and preventing youngsters under 16 from going to the school. 36,000 volunteers were enlisted in Gorakhpur, not 100 of whom conformed to the Congress pledge. In Calcutta Jamnalalji tells me there is utter disorganisation, the volunteers wearing foreign cloth and certainly not pledged to non-violence. With all this news in my possession and much more from the South, the Chauri-Chaura news came like a powerful match to ignite the

समक्ष आ चुकी होगी। देवीदास की जवानी की मूर्खता से हमको भड़कना नहीं चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युवक के पाँव उखड़ गए हैं और वह अपना संतुलन खो बैठा है। क्रोध में आई भीड़ द्वारा कांस्टेबलों की निर्मम हत्याओं से इन्कार नहीं किया जा सकता। यह भीड़ असहयोग आन्दोलन से सहानुभूति रखती थी। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह भीड़ राजनीति में रुचि रखती थी। यह तो भारी अपराध हो जाता यदि इस स्पष्ट सचेतक की ओर ध्यान न दिया जाता।

मैं आपको बताना चाहता हूँ कि यह तो अन्तिम तिनका था। मेरे वायसराय को लिखे पत्र की भाषा से यह पता चलेगा कि मैंने यह पत्र बिना निराश हुए नहीं लिखा। मद्रास की घटनाओं से मैं दुःखी था, परन्तु मैं उस प्रबोधन को भूल गया था। कलकत्ता के हिन्दू और मुसलमान, दोनों ने पत्र लिखे हैं। ऐसे ही पत्र इलाहाबाद और पंजाब से भी आए हैं। यह सब गोरखपुर की घटना से पहले हुआ था। इनसे पता चलता है कि सब दोष सरकार का ही नहीं, वरन लोग भी उत्पात कर रहे हैं। वे अवज्ञाकारी और भयानक भी हो रहे हैं। वे हाथ से निकलते जा रहे हैं और व्यवहार में हिंसात्मक हो रहे हैं। जबकि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

gunpowder, and there was a blaze. I assure you that if the thing had not been suspended we would have been leading not a non-violent struggle but essentially a violent struggle...The cause will prosper by this retreat....[75]

फिरोज़पुर-झिरका की घटना सरकार के लिए अपमानजनक है, हम भी सर्वथा आरोप से मुक्त नहीं हैं। हकीम जी ने बरेली से शिकायत भेजी है। मेरे पास झज्जर के विषय में सख्त शिकायत पहुँची है। सहारनपुर में टाउन हॉल पर बलपूर्वक अधिकार कर लेने का समाचार है। कन्नौज से कांग्रेस मन्त्री ने तार दिया है कि स्वयंसेवक नियंत्रण में नहीं रहे और स्कूल पर धरना देकर सोलह वर्ष की आयु से छोटे बच्चों को स्कूल जाने से रोक रहे हैं। गोरखपुर में 36,000 स्वयंसेवक भरती हुए थे और उनमें एक सौ भी नहीं जो कांग्रेस की सौगन्ध का पालन करते हों। कलकत्ता से जमनालाल जी लिख रहे हैं कि वहाँ बिलकुल अव्यवस्था है। स्वयंसेवक विदेशी वस्त्र पहन रहे हैं और कांग्रेस की सौगन्ध की चिन्ता नहीं कर रहे। इन सब सूचनाओं की उपस्थिति और इससे भी अधिक दक्षिण से आने पर चौरी-चौरा समाचार ऐसा था, जैसे बारूद के ढेर में दियासलाई लगाई जाए और विस्फोट हुआ हो। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यह आन्दोलन यदि बन्द न किया जाता तो हम एक अंहिंसात्मक आन्दोलन के स्थान हिंसात्मक आन्दोलन के नेता बन चुके होते। पीछे हटने से हमारा उद्देश्य पूरा ही होगा।

इस समय तक लगभग बत्तीस हज़ार लोग जेल जा चुके थे।

आन्दोलन बन्द करने के विषय में जवाहरलाल जी के विचार उक्त पत्र से बदले नहीं। 1934 में अपनी स्वरचित जीवनी में नेहरू जी लिखते हैं—

The sudden suspension of our movement after the Chauri-Chaura incident was resented, I think, by almost all the prominent Congress leaders—other than Gandhiji of course. My father (who was in gaol at the time) was much upset by it.[76]

चौरी-चौरा की घटना के उपरान्त आन्दोलन के एकाएक बन्द हो जाने पर सबको नाराज़गी थी। मेरे पिता तब जेल में थे और उनको इससे भारी दुःख हुआ था।

अहिंसात्मक उपायों के विषय में आप लिखते हैं—

We had accepted that method, the Congress had made that method its own, because of a belief in its effectiveness. Gandhiji had placed it before the country not only as the right method, but as the most effective one for our purpose. In spite of its negative name it was a dynamic

हमने इस (अहिंसात्मक) उपाय को स्वीकार किया था। कांग्रेस ने इसको अपना उपाय माना था। कांग्रेस विश्वास रखती थी कि यह उपाय प्रभावशाली है। गांधी जी ने इसको देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

method, the very opposite of a meek submission to a tryant's will. It was not a cowards's refuge from action, but the brave man's defiance of evil and national subjection. But what was the use of the bravest and the strongest if a few odd persons—may be even our opponents in the guise of friends—had the power to upset or end our movement by their rash behaviour?[77]

के सामने रखा था और कहा था कि यह उपाय केवल ठीक नहीं, वरन प्रभावशाली भी है। इसका नाम नकारात्मक होने पर भी यह बलशाली है। किसी आततायी के सामने दब्बू बन उसके आदेशों को स्वीकार करने के सर्वथा विपरीत था। यह एक भीरु का कार्य करने से बचने का बहाना नहीं था। वरन एक बहादुर व्यक्ति द्वारा बुराई और दासता का विरोध था। इस पर भी क्या अर्थ है इन सबका, यदि कुछ लोगों की नालायकी से अथवा मित्र के भेष में विरोधियों की करनी से दृढ़ता और बहादुरी ठप्प हो जाती है।

जवाहरलाल जी की आपत्ति सर्वथा ठीक प्रतीत होती है। उनका दुःखद अनुभव भी सत्य ही हो सकता है। परन्तु इनके पास इसका क्या विकल्प था? मरण-पर्यन्त वे गांधी जी की जय-जयकार करते रहे। यहाँ तक कि चीन के आक्रमण के समय भी अपनी देश की सैनिक शक्ति को उन्नत न करने की नालायकी गांधी जी की अहिंसा और शान्ति-प्रियता के पीछे छुपाते रहे थे।

जब-जब भी देश को पाकिस्तान इत्यादि से बचाने के लिए सुदृढ़ करने का प्रश्न उपस्थित होता था; अपने को अहिंसावादी कहकर बात टालने का यत्न किया जाता रहा था।

गांधी जी सदा अहिंसा के पक्षपाती रहे और उनकी अहिंसा को स्वीकार न करते हुए भी, उनसे पृथक् नहीं हुए। वे गांधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलनों के सदैव समर्थक रहे थे। इन सब तथ्यों की उपस्थिति में दो ही अनुमान लगाए जा सकते हैं। या तो, कम से कम जवाहरलाल जी के विषय में अहिंसावाद एक भीरु के लिए बहाना था अथवा जवाहरलाल जी अपनी नेतागिरी की कामना में गांधी जी के पीछे लगे थे। वैसे वे उनकी किसी भी बात को स्वीकार नहीं करते थे।

यह बात केवल हिंसा-अहिंसा के विषय में ही नहीं, वरन प्रत्येक सैद्धान्तिक विषय में कही जा सकती है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि सन् 1934 में भी ये गांधी जी के 1922 के आन्दोलन को बन्द करने को गलत मानते थे।

हमारा यह विचारित कथन है कि मोतीलाल जी और जवाहरलाल जी जो 1920 के आरम्भ तक गांधी जी के सत्याग्रह को अव्यावहारिक मानते थे, वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1920 अक्तूबर मास में पूर्ण देश के नेताओं से आगे होकर गांधी जी के उपायों के समर्थक केवल इस कारण बने थे कि उनको विश्वास हो गया था कि इस प्रकार का आन्दोलन अन्त में मार-काट में समाप्त होगा।

वे 'रौलेट ऐक्ट' के आन्दोलन का अन्त देख चुके थे। अर्थात् 1919 में पंजाब में क्या कुछ हुआ, उनको विदित हो चुका था। जनता भड़की हुई थी और मुसलमान सरकार के विरुद्ध हो चुके थे। इससे वे यह अनुमान लगा रहे थे कि एक यत्न और कर दिया जाए तो पूर्ण देश अमृतसर तथा गुजरांवाला बन जाएगा। तब ब्रिटिश सरकार घुटने टेक देगी और तब वायसराय के स्थान मोतीलाल जी शासक बन सकेंगे।

वे यह भी जानते थे कि बिना गांधी जी के ऐसा आन्दोलन खड़ा कर सकना सम्भव नहीं, जिससे पूर्ण देश भड़क सके। अतः मोतीलाल जी ने पहले गांधी जी को मालवीय तथा शास्त्री जी से पृथक् किया। पीछे देश के सब नेताओं के विरुद्ध होने पर भी, गांधी जी का समर्थन किया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्ताव मोतीलाल जी का था और गांधी जी के मुख से कहलाया जा रहा था। गांधी जी की सर्वसाधारण में ख्याति ही थी कि यह प्रस्ताव खुले अधिवेशन में पारित हो सका।

आन्दोलन आरम्भ हो गया और जब परिणाम निकलने लगे, तब आन्दोलन गांधी जी ने वापस ले लिया। इससे जवाहरलाल जी और मोतीलाल जी को भारी निराशा हुई।

महात्मा जी की लम्बी चिट्ठी भी उनकी निराशा को दूर नहीं कर सकी। महात्मा जी पहले और पीछे भी शुद्ध अहिंसा के उपासक थे। इस कारण उनको तो दोष इतना ही दिया जा सकता था कि वे जनमानस की प्रवृत्ति को समझ नहीं सके। वे अहिंसा को एक मज़हब (creed) मानते थे जबकि कांग्रेस अहिंसा को नीति मात्र समझती थी। यह बात गांधी जी को सन् 1934 में समझ आई। प्यारेलाल जी गांधी जी के जीवन-चरित्र में लिखते हैं—

A creed is a matter of faith, it cannot be so given up or changed. Gandhiji could not ask those who lacked faith in non-violence to adopt it as their creed. But a policy is as good as a creed, while it holds. So, Gandhiji said, it was sufficient for his purpose if Congressmen followed non-violence as a policy.

मज़हब अथवा पंथ तो विश्वास की बात है। यह सुगमता से छोड़ा अथवा बदला नहीं जा सकता। गांधी जी दूसरों को, जिनका अहिंसा पर विश्वास नहीं, कह नहीं सकते थे कि वे इस पर मज़हब की भाँति विश्वास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"I could not have one otherwise", he afterwards remarked, "if I was to introduce it (non-violence) into politics .....If I had started with men who accepted non-violence as a creed, I might have ended with myself.[78]

लाएँ। परन्तु जब तक यह नीति के रूप में स्वीकार था, यह मज़हब पर विश्वास के समान ही था। अत: गांधी जो कहते थे कि कांग्रेसियों के लिए नीति के रूप में भी यह ठीक ही है, 'मैं कुछ अन्य कर भी तो नहीं सकता था।' गांधी ने पीछे कहा था—'यदि मुझे राजनीति में अहिंसा को लाना था तो यही करना था। यदि मैं केवल उन लोगों को साथ लेकर चलता जो अहिंसा को एक पंथ के रूप में मानते थे तो मैं अकेला ही रह जाता।'

इसका अभिप्राय यह है कि गांधी जी जवाहरलाल इत्यादि लोगों से कम प्रवंचना करने वाले नहीं थे। जवाहरलाल जी तो यह मानते थे कि आन्दोलन चलाया जाएगा अहिंसा के पर्दे के पीछे और जब वे स्वयं जेल में होंगे लोग हिंसात्मक हो जाएँगे तथा सरकार झुकेगी। वह अधिकार अथवा स्वराज्य दे देगी। तब ये लोग जेल से निकल अधिकारों का भोग करेंगे।

गांधी जी का व्यवहार भी वंचनायुक्त ही था। वे जानते थे कि उनके अतिरिक्त कांग्रेस में एक भी व्यक्ति नहीं जो अहिंसा पर विश्वास रखता हो। वे जानते थे कि कांग्रेसी इसे केवल नीति मानते हैं और वे इसे समय पर बदल भी सकते हैं। इस पर भी ये, इसके बार-बार असफल होने पर भी, इसका प्रयोग करते रहे और 1947 में भी जब स्वराज्य रक्त की नदियाँ बहाने के उपरान्त मिला, तब भी ये कायरों की भाँति कहते थे कि अहिंसा ही कष्टमोचक पथ है।

श्री प्यारेलाल अपनी पुस्तक में एक स्थान पर लिखते हैं—

Gandhiji's was the redemptive way. He represented the non-violent approach which has its own logic....[79]

गांधी जी का पाप-मोचन मार्ग था। वे अहिंसात्मक मार्ग बताते थे जिसकी विधा अपनी थी.....

वस्तुस्थिति यह है कि ये नेता लोग साथ-साथ चलते हुए देश को धोखे में रखते रहे और इनके परस्पर वंचना और जनता के साथ वंचना का परिणाम हुआ देश-विभाजन।

देश-विभाजन सदियों तक चलने वाली एक मुसीबत है। इसमें भारत के लोग घोर कष्ट पा रहे हैं और भविष्य में पाएँगे। यह सब पाप उक्त वंचना का ही परिणाम है।

यह हम आगे चलकर बताएँगे कि गांधी जी के भारत के राजनीतिक क्षेत्र में आ जाने का क्या परिणाम हुआ है ? हमने देश-विभाजन की बात ऊपर बताई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसके अतिरिक्त भी कई प्रकार की हानियाँ हुई हैं।

हिन्दू सभ्यता तथा हिन्दू संस्कृति के अनुयायी गांधी जी के आन्दोलन में एक भारी भूल समझते हैं। जवाहरलाल जी को तो वह भूल समझ आई नहीं। यही कारण है कि मन में कुढ़ते हुए भी देश के सामने वे कोई नवीन योजना रख नहीं सके। यहाँ तक कि बांडुंग कॉन्फ्रेन्स में भी पंचशील, जो अहिंसात्मक विधि का ही एक रूप है, का ही विचार कर सके थे। जैसे गांधी जी की सर्वदा और सर्वत्र अहिंसा की नीति गलत रही है, वैसे ही पंचशील सिद्धान्त गलत था। दोनों का परिणाम भयंकर हुआ है।

गांधी जी की असफलता का हमारा विश्लेषण यह है कि मानव समाज में एक वर्ग क्षत्रियों का होता है। वे गुण-कर्म-स्वभाव से राजसी (Political) आन्दोलनों को चलाने की योग्यता रखते हैं। राज्यों को पलटना अथवा राज्यों की रक्षा करना समाज के इस वर्ग का काम है। ब्रिटिश राज्य को पलटने का कार्य इस वर्ग के हाथ में होना चाहिए था और हिंसा का उत्तर हिंसा में देना ठीक ही था। ब्राह्मण (विद्वान्) वर्ग तो मार्गदर्शन कार्य करता है। परन्तु कार्य करना क्षत्रिय वर्ग का ही अधिकार है। यह सत्याग्रह आन्दोलन पूर्ण समाज का आन्दोलन बन गया था। इसमें लोगों को यह आशा दिलाई गई थी कि स्कूल, कालेज, कचहरियाँ छोड़ देने से, शराब न पीने से और पुलिस तथा सेना की नौकरियाँ छोड़ देने से स्वराज्य मिल जाएगा। यह क्षत्रिय वर्ग को निःशेष करने की योजना थी। यह सम्भव नहीं था और यह हो नहीं सका।

गांधी जी स्वयं न तो क्षत्रिय वर्ग में से थे और न ही ब्राह्मण वर्ग में से। गांधी जी बुद्धि से विचार कर कोई बात नहीं करते थे। यदि थोड़ा-सा भी विचार किया होता तो वे समझ जाते कि पैंतीस करोड़ जनता में सब-के-सब भड़काने वाली स्थिति में अहिंसात्मक नहीं रह सकेंगे। यदि इस सरल-सी बात को वे समझ गए होते तो वे या तो अहिंसात्मक आन्दोलन चलाते ही नहीं और यदि चलाते तो इसको एक सीमित संख्या के लोगों में चलाते। उनके अतिरिक्त यदि कोई हिंसा करता, तो उसकी न अपने ऊपर जिम्मेदारी लेते और न ही उसकी चिन्ता करते।

गांधी जी ने जवाहरलाल जी को लिखे अपने पत्र में सर्वथा थोथी युक्ति दी है। वे चौरी-चौरा भीड़ को राजनीतिक विचार वाली भीड़ मान उसको अहिंसात्मक रहने के लिए बाध्य मानते हैं। यह भला क्यों हिंसात्मक रहती ? क्या राजनीति में केवल अहिंसात्मक ही उपाय बरतने के लिए परमात्मा ने पाबन्दी लगा दी थी ? गांधी जी कह देते कि वे उस भीड़ के लिए जिम्मेदार नहीं। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी तो यह समझ बैठे थे कि उन्होंने कह दिया है, इस कारण पैंतीस करोड़ हिन्दुस्तानी उनकी बात मानने पर बाध्य हैं। गांधी जी ने अपने उस पत्र में माना है कि देश हिंसात्मक आन्दोलन के लिए तैयार नहीं है। यदि यह बात थी तो फिर, या तो उनको राजनीति से पृथक् हो जाना चाहिए था अन्यथा उनको क्षत्रिय वर्ग का गुण, कर्म और स्वभाव बनाना चाहिए था।

सन् 1905 में क्रान्तिकारियों ने आन्दोलन आरम्भ किया। 1909 में शासन-सुधार हो गए। 1911-1913 में फिर क्रांतिकारी आन्दोलन उभरा। 1916 में इस दिशा में कुछ कार्य हुआ। मार्शल-लॉ के पहले पंजाब में थोड़ी-सी ही हिंसा की गई और 1919 में एक-तिहाई स्वराज्य मिल गया। इन दिनों आन्दोलनों के समय इंग्लैंड शक्तिशाली था और हिन्दुस्तान को स्वराज्य दिलाने में बाहर का कोई राज्य सहायक नहीं था। क्रांतिकारी आन्दोलन एक प्रकार का क्षत्रिय वर्ग का आन्दोलन था और इसमें वे ही सम्मिलित होते थे जो लड़ना-मरना अपना धर्म समझते थे। देश के ब्राह्मण वर्ग (तिलक आदि) का उनको समर्थन था। वैश्य वर्ग इनको सहायता नहीं दे रहा था इस पर भी जो कुछ उन्होंने किंचित् मात्र के बलिदान से प्राप्त किया, वह गांधी जी के निरंतर 1919 से 1942 तक के आन्दोलनों से प्राप्त नहीं हो रहा था। 1947 में स्वराज्य मिला। परन्तु यह गांधी जी के आन्दोलन के कारण नहीं था, वरन कुछ अन्य कारणों से था। हम आगे चलकर बताएँगे कि वे कारण क्षत्रिय वर्ग से ही सम्बन्ध रखते हैं। अहिंसात्मक आन्दोलनों से उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था। गांधी जी के आन्दोलनों से यदि कुछ हुआ है तो वह यह कि पूर्ण देश ही भीरु, अपाहिज और पंगु हो गया है। जो दुर्दशा 1947 में हिन्दुओं की मुसलमानों के हाथों हुई थी, वह गांधी जी के देश में चलाए जा रहे अहिंसात्मक आन्दोलनों के कारण ही हुई थी।

:: 7 ::

इस स्थान पर गांधी जी के विख्यात लेख 'The Doctrine of the Sword' (तलवार की मीमांसा) के कुछ अंश लिख देना चाहते हैं। इससे अच्छी, गांधी जी के आन्दोलनों की मीमांसा, अन्य कहीं नहीं मिल सकती। अतः अपना मत लिखने के साथ इस लेख को दे देना उचित ही होगा।

गांधी जी लिखते हैं—

''मेरा विश्वास है कि जब हिंसा और भीरुता में चुनना हो तो हिंसा अच्छी है। ऐसी अवस्था में मैं हिंसा के लिए राय दूँगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं चाहूँगा हिन्दुस्तानी भीरुओं की भाँति अपना अपमान करवाने के स्थान पर अपनी मान-प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए शस्त्र उठा लें। इस पर भी मेरा विश्वास है अहिंसा हिंसा से श्रेष्ठ है और सशक्त है। क्षमा दंड देने से अधिक पौरुष का कार्य है। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्।'

हमारा तो यह कहना है कि क्षमा एक सिपाही का भूषण है, परन्तु संयम और क्षमा तब ही हो सकते हैं जब दंड की शक्ति हो। नि:सहाय व्यक्ति की क्षमा व संयम भी निरर्थक है। एक चूहा, जो बिल्ली से चीरा-फाड़ा जा रहा हो, भला क्या क्षमा करेगा ?

गांधी जी आगे लिखते हैं—

परन्तु मैं हिन्दुस्तान को निस्सहाय नहीं मानता। मैं अपने को भी एक निस्सहाय प्राणी नहीं मानता।

मुझे गलत न समझा जाए। शारीरिक योग्यता को मैं शक्ति नहीं कहता। यह अजय मानसिक शक्ति का नाम है।

मैं स्वप्न नहीं देखता। मैं कर्मशील आदर्शवादी हूँ। अहिंसापथ केवल ऋषियों और साधुओं के लिए नहीं। यह सर्वसाधारण का मत है। अहिंसा मानव-धर्म है और हिंसा पशुपन है। पशु की आत्मा सुषुप्ति अवस्था में होती है। और उसको शारीरिक बल के अतिरिक्त अन्य किसी नियम का बल नहीं होता। मनुष्य की प्रभुता अन्य ऊँचे नियमों के अधीन होती है। यह आत्मा की शक्ति है—इस कारण मैं अहिंसा का आग्रह करता हूँ। इस कारण नहीं कि हिन्दुस्तान दुर्बल है। मैं अहिंसा के पालन के लिए हिन्दुस्तान को कहता हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह शक्तिशाली है।... मैं चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान अनुभव करे की यह भी आत्मा रखता है, जो अविनाशी है और शारीरिक दुर्बलता पर विजयी हो सकता है और दुनिया भर की भौतिक शक्ति पर विजय प्राप्त कर सकता ?''

यह है गांधी जी की अहिंसावाद की व्याख्या।

उक्त कथन को इतिहास की पृष्ठभूमि पर देखा जाए तो यह केवल वागाडम्बर ही प्रतीत होगा। इसमें कई बातें बिना किसी प्रकार के प्रमाण और युक्ति के, दी गई हैं। एक तो हम ऊपर लिख चुके हैं। क्या बिना दंड देने की शक्ति के रखे, क्षमा कुछ अर्थ रखती है ?

मैं हिन्दुस्तान को नि:सहाय नहीं मानता। इस बात की असत्यता सन् 1947 में स्पष्ट हो गई थी। मुसलमान भी हिन्दुओं की भाँति अस्त्र-शस्त्र विहीन थे। मुसलमानों ने हिंसा का पथ अपनाया और कांग्रेस तथा उनके साथ हिन्दू वह कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानने पर विवश हो गए, जो वे नहीं चाहते थे।

इस समय गांधीवादी कह सकते हैं कि यदि हिन्दू कलकत्ता में मुसलमानों के हिंसात्मक आन्दोलन का उत्तर न देते, अथवा नौआखाली के प्रतिकार में बिहार में झगड़ा न करते तो गांधी जी पर दोष दिया जा सकता था। यह युक्ति उतनी ही मिथ्या है, जितना यह कहना है कि यदि चमगादड़ आँखें न खोलता तो रात होती ही नहीं। मुसलमान जब बलवे करते थे तो ये कांग्रेसी कह देते थे कि वे बेचारे निर्धन हैं और वे अपनी आर्थिक विवशता के कारण झगड़ा करते हैं। कांग्रेसियों को तो कोई मुसलमान धनी दिखाई देता ही नहीं था। कभी किसी मुसलमान ने आगा खां के धन को नहीं लूटा था। लूटने के लिए उनको हिन्दू ही दिखाई देते थे।

1922 से लेकर ये बलवे चल रहे थे और यदि कलकत्ता में हिन्दुओं ने आत्मरक्षा में कुछ किया और बिहार में नौआखाली तथा कलकत्ता में मुसलमानों का अत्याचार देखकर क्रोध में कुछ कर दिया तो क्या उन्होंने यह सिद्ध नहीं किया कि महात्मा जी का ज्ञान अधूरा था, उनकी बुद्धि कुण्ठित थी और वे मानव के मन पर होने वाली प्रतिक्रियाओं को कुछ भी नहीं समझते थे।

यदि महात्मा जी ने हिन्दू इतिहास पढ़ा होता तो वे यह न कहते कि अहिंसा ऋषियों और साधुओं के लिए है। समय आने पर दुष्ट राजाओं को दंड देने के लिए ऋषियों ने उनकी हत्या भी की है।

महात्मा जी आत्मा के बल को सर्वोपरि मानते हैं, परन्तु क्या कभी आत्मा को बिना शरीर के काम करते किसी ने देखा है? जब आत्मा शरीर से पृथक् होता है, तब वह सुषुप्ति अवस्था में हो जाता है। आत्मा बिना शरीर के सक्रिय होता ही नहीं। स्थूल अथवा सूक्ष्म शरीर सदा इसके साथ रहता है।

महात्मा जी न तो शास्त्र के ज्ञाता थे, न ही ज्ञान-विज्ञान के। वे अपने मिथ्या ज्ञान से अपने भक्तों को मिथ्या मार्ग पर ले जा रहे थे।

एक बात शास्त्र की है, जो गांधी जी नहीं जानते। मनुष्यों में भी एक श्रेणी है, जिसे असुर कहते हैं। शास्त्र में असुर उन प्राणियों के नाम हैं, जिनका जीवन इन्द्रियों की तृप्ति के लिए ही होता है। अर्थात् इन मनुष्यों ने अपनी आत्मा का हनन किया हुआ होता है। ये लोग पशुओं से भी कम बुद्धि रखते हैं। वे न तो अपने में आत्मबल का अनुभव करते हैं और न ही दूसरे के आत्मबल का विचार करते हैं। ऐसे लोगों के लिए आत्मबल कुछ भी अर्थ नहीं रखता। परमात्मा ने ऐसे लोगों के लिए शारीरिक बल और फिर उस शारीरिक बल को उन्नत करने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए बुद्धि दी है। मानव कलेवर में इन पशुओं को सन्मार्ग दिखाने के लिए ही परमात्मा ने देवताओं को शरीर और बुद्धि दी है।

'क्षमा वीरस्य भूषणम्' यह सर्वथा सत्य है। परन्तु क्षमा का दम भरने वाले वीर हैं क्या? यह तो सिद्ध किया नहीं। सैनिक क्षमा करता है, परन्तु शत्रु पर विजय प्राप्त करने के बाद। विजय प्राप्त करने से पहले भी भला कोई क्षमा करता है? क्या कभी किसी वीर ने, सामने खड़े शत्रु को, जो बन्दूक चलाने के लिए तैयार खड़ा हो, बिना उसकी बन्दूक पर अधिकार जमाए क्षमा किया है?

हमारा यह कहना है कि गांधी जी केवल मात्र भावुक, बेखबर और युक्तिविहीन व्यक्ति थे। जवाहरलाल जी उनके भक्त थे। परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए था।

तीस-बत्तीस हज़ार लोग जेल गए और व्यर्थ।

:: 8 ::

मोतीलाल जी और गांधी जी में किसी भी बात में समानता नहीं थी। मन के संस्कारों में और कार्यों में वे परस्पर सर्वथा विरोधी थे। विचार और कर्म में दोनों कोसों दूर थे। इस पर भी दोनों में 1920 में सहयोग आरम्भ हुआ और फिर अन्त तक यह सहयोग चलता रहा। श्री मोतीलाल जी तो 1931 में चल बसे परन्तु गांधी जी की उनके परिवार से विशेष रूप में श्री जवाहरलाल जी से सहचारिता अन्त तक चलती रही। यह क्यों थी? इसका उत्तर पंडित जवाहरलाल जी के पास भी नहीं था।

इसमें एक कारण तो हमने पिछली कण्डिका में वर्णन किया है। वह यह कि मोतीलाल जी गांधी जी की जनसाधारण में ख्याति देख, अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उनके साथ हो लिये थे। हमारा यह अनुमान सन् 1920 और 1921 की घटनाओं पर आधारित है। मोतीलाल जी का अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन पर ब्रिटेन सम्राट का धन्यवाद करने में गांधी जी का साथ देना, 1920 के मध्य में सरकार के खिलाफ हो जाना और वह भी मार्शल लॉ के कैदियों को कठोर दण्ड देने पर और खिलाफ़त के मामले पर, एक न समझ में आने वाली बात है। मोतीलाल जी एक भावुक व्यक्ति नहीं थे। वह कानूनी मस्तिष्क रखने वाले ख्यातिप्राप्त वकील थे। यहाँ यह स्मरण रखने की बात है कि जब मोतीलाल जी ने अक्तूबर 1920 में कलकत्ता में सब अनुभवी नेताओं की सम्मति के विपरीत गांधी जी का अनुकरण किया था, तब स्वराज्य का मामला सम्मुख नहीं था। इससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही सिद्ध होता है कि यह देश की बात नहीं थी, जिसके लिए मोतीलाल जी गांधी जी के पीछे लगे थे। उस समय के इतिहास को पढ़कर यह अनुमान ठीक ही प्रतीत होता है कि यह मोतीलाल जी की महत्वाकांक्षा ही थी, जिसको वे गांधी जी के कंधों पर चढ़कर प्राप्त करना चाहते थे।

वह महत्वाकांक्षा पूर्ण नहीं हो सकी। गांधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन फरवरी 1922 में वापस ले लिया था। बिना गांधी जी के सत्याग्रह में जान नहीं थी।

यह कहा जाता है कि गांधी जी और मोतीलाल जी में उद्देश्य की समानता थी। यह बात भी ठीक प्रतीत नहीं होती। कम से कम यह तो कहा जा सकता है कि 1920 में वह उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति नहीं था। 1921 में उद्देश्यों में स्वराज्य सम्मिलित कर लिया गया था, परन्तु स्वराज्य प्राप्ति, आन्दोलन का उद्देश्य, मोतीलाल जी को साथ रखने के लिए नहीं था। यह तो देश के अन्य नेताओं को आन्दोलन में घेर कर लाने के लिए था। मोतीलाल जी और गांधी जी का सहयोग और सहचारिता इससे बहुत पहले बन चुकी थी। इससे यह परिणाम निकलता है कि दोनों में सहयोग स्वराज्य के कारण नहीं, अपितु किसी अन्य कारण था।

महत्त्वाकांक्षा के अतिरिक्त एक अन्य कारण भी हमको प्रतीत हुआ है जिससे गांधी जी और मोतीलाल जी में सहचारिता बनी थी। परन्तु पहले श्री जवाहरलाल जी का इस सहचारिता में कारण लिख दें तो अधिक ठीक होगा। श्री जवाहरलाल जी स्वरचित अपनी जीवनी में लिखते हैं—

But his reason, his strong sense of self-respect, and his pride, all led him step by step to throw in his lot wholeheartedly with the new movement. The accumulated anger with which a series of events, culminating in the Punjab tragedy and its aftermath, filled in him; the sense of utter wrong-doing and injustice, the bitterness of national humiliation, had to find some way out....

He was attracted by Gandhiji as a man, and that no doubt was a factor which influenced him. Nothing could have made him a close associate of a person he disliked........ But it was a strong combination—the saint, the stoic, the man of religion, one who went through life rejecting what it

परन्तु उनकी बुद्धि और उनमें आत्म-सम्मान की प्रबल भावना तथा उनका अपने में गर्व, ये सब पग-पग कर उनको उस नए आन्दोलन में ले गए। वे सब घटनाएँ जिनका परिणाम पंजाब की दुर्घटना हुई थी और उसके उपरान्त की परिस्थितियाँ, नितान्त अन्याय और अत्याचार, राष्ट्रीय अपमान का तीखापन इन सबका कहीं प्रदर्शन होना आवश्यक था—

वे गांधी जी में मानवता देखकर आकर्षित हुए थे। निश्चय ही यह एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

offers in the way of sensation and physical pleasure, and one who had been a bit of an epicure, who accepted life and welcomed and enjoyed its many sensations, and cared little for what may come in there after.[81]

महान् कारण था, जिससे वे महात्मा जी की ओर खिंच गए थे। वे पसन्द, नापसन्द करने में बहुत प्रबल थे। उन्होंने कभी किसी आदमी का साथ नहीं दिया, जिसको उन्होंने पसन्द नहीं किया। यह एक आश्चर्यपूर्ण समागम था। एक साधु जितेन्द्रय, धैर्य की प्रवृत्ति रखने वाला जिसने जीवन के स्वाद त्याग दिए हों, और दूसरी ओर एक विषयासक्त, जिसने जीवन और जीवन के सब आनन्दों का स्वागत किया हो।

यह विस्मय करने की बात तो है ही। जवाहरलाल जी ने तो दोनों की जीवन-मीमांसा में अन्तर बताया है।

जीवन-मीमांसा में अन्तर इतना विस्मयजनक नहीं, जितना दोनों का उद्देश्य और उद्देश्य की प्राप्ति के मार्ग में अन्तर विस्मयकारक है।

जवाहरलाल जी इस चमत्कार को अपने प्रिय लेखक के कथन से सम्भव बताने का यत्न करते हैं। वे लिखते हैं—

Walter Pater, in one of his books, mentions how the saint and epicure starting from opposed points, travelling different paths, one with a religious temper, the other opposed to it, and yet both with an outlook which, in its stress and earnestness, is very unlike any lower development of temper, often understand each other better than either would understand the mere man of the world—and sometimes they actually touch.[82]

वाल्टर पेटर अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं, किस प्रकार एक सन्त और एक वासनारत व्यक्ति, भिन्न स्थानों से चलकर, भिन्न मार्ग पर चलते हुए, एक धार्मिक प्रकृति वाला और दूसरा उससे भिन्न स्वभाव वाला, दोनों सच्चाई के दबाव में एक-दूसरे को, दूसरे दुनियादारों से प्रायः अधिक अच्छी तरह जान जाते हैं और समझ लेते हैं। कभी-कभी वे घनिष्ठ सम्बन्ध में भी आ जाते हैं।

वाल्टर पीटर का यह निष्कर्ष इतना ही ठीक है, जितना लिखा है। दो भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति वाले पुरुष कभी इकट्ठे हो जाते हैं, परन्तु देखा यह जाता है कि साधु ठगा जाता है और दुनियादार उसको ठग कर ले जाता है।

मोतीलाल जी तो यात्रा समाप्त होने से पूर्व ही संसार से विदा हो गए थे, परन्तु उनके स्थानापन्न जवाहरलाल जी गांधी जी के पीछे भी जीवित रहे थे। यह बात निर्विवाद है कि गांधी जी ठगे गए थे। जवाहरलाल जी ने अपने लाभ के लिए गांधी जी के नाम का खुलकर प्रयोग किया है। एक साधु और संसारी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेल हुआ और साधु ठगा गया। इस ठगी से हानि देश की हुई है।

इस प्रकार के उदाहरण इतिहास में भी मिलते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में भी एक ऐसी ही घटना हुई थी।

घटनावश स्टॉलिन और रूजवेल्ट एक पक्ष में हो गए थे। युद्ध में स्टॉलिन के मित्र राष्ट्रों की ओर आ जाने से युद्ध जीतने में कितनी सहायता मिली थी? यह विवादास्पद प्रश्न है, परन्तु इतना स्पष्ट है कि युद्ध से जितना लाभ स्टॉलिन अर्थात् रूस ने उठाया, उतना अमेरिका और इंग्लैंड ने नहीं उठाया। एक ठग और एक साधु एक ही स्थान पर एकत्रित हो गए और ठग साधु को ठग कर ले गया। साथ ही दोनों के समागम का फल दुनिया के सब भले लोग भोग रहे हैं।

यही बात गांधी जी और नेहरू परिवार के समागम से हुई है। नेहरू परिवार गांधी जी को उनकी बाँह में डालकर अपने मार्ग पर ले जाता रहा था. परिणाम हुआ, पाकिस्तान। यह है उस्तरों का हार जो भारत के गले में पड़ा है। इसका क्या परिणाम होगा, कहा नहीं जा सकता।

गांधी जी और मोतीलाल जी दोनों किसी कार्य के लिए व्याकुल थे। इसी कारण बिना अधिक विचार किए दोनों एक साथ चल पड़े। गांधी जी अपना परमात्मा का मार्ग छोड़कर दुनियादारी की ओर चल पड़े थे। गांधी जी और नेहरू परिवार में केवल एक बात सांझी थी—यह थी कुछ करने की उतावली।

फरवरी 1922 के उपरान्त का इतिहास पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि जहाँ श्री मोतीलाल जी 1919 से 1922 तक गांधी जी के पीछे लगे हुए थे, वहाँ इसके उपरान्त धीरे-धीरे गांधी जी मोतीलाल जी और उनके देहान्त के उपरान्त जवाहरलाल जी के पीछे लग गए थे।

:: 9 ::

महात्मा जी अभी जेल में ही थे कि मोतीलाल जी और जवाहरलाल जी जेल से छूट कर बाहर आ गए। बाहर आते ही ये गांधी जी की नीति को बदलने का यत्न करने लगे।

कांग्रेस के बहुत-से लोग जेलों से बाहर आ चुके थे और उनमें से गांधी जी की असहयोग की नीति को असफल समझने वाले लोग समाचार-पत्रों में लिखने भी लगे थे। इनमें श्री एम.एस. जयकर, श्री सी.आर. दास, श्री खापर्डे और मोतीलाल जी प्रमुख थे।

इनके विरोधी भी थे। उनमें प्रमुख थे श्री सी. राजगोपालाचारी। इस पर भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मोतीलाल जी ने 22 नवम्बर, 1922 में कलकत्ता में हुई कांग्रेस कमेटी की बैठक में एक प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव में ये शब्द थे—

It is resolved, with reference to the Report of the Civil Disobedience Inquiry Committee, that this All India Congress Committee do recommend to the Indian National Congress that non-co-operators should contest the ensuing elections on the issue of redress of the Punjab and Khilafat wrongs and immediate Swaraj, and make every endeavour to be returned in majority. It is further recommended that, in view of the new councils assembling in Jan. 1924, the Congress Session of 1923 be held during the first instead of last week of December and the matter be again brought up for such final mandate by the Congress as it may, under the circumstances, deem fit to issue."[83]

यह निर्णय किया जाता है कि 'सिविल डिस-ओबिडिएंस' कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार यह ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी, इण्डियन नेशनल कांग्रेस से सिफारिश करती है कि आने वाले निर्वाचनों में पंजाब के अन्यायों का निराकरण, खिलाफ़त समस्या को सुलझाने और शीघ्रातिशीघ्र स्वराज्य प्राप्ति के लिए, असहयोगी बहुसंख्या में निर्वाचन लड़ने का यत्न करें। यह भी सिफारिश करती है कि कौंसिल जनवरी 1924 में बैठने वाली है, इस कारण कांग्रेस अधिवेशन 1923 के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में बुलाया जाए और यह विषय वहाँ उपस्थित किया जाए, जिससे तत्कालीन परिस्थितियों में अन्तिम आदेश दिया जा सके।

इस प्रस्ताव पर श्री जयकर ने ये शब्द कहे थे :

"विशाल जागृति उत्पन्न होने पर भी सच्चाई से यह नहीं कहा जा सकता कि इस असहयोग आन्दोलन से किसी प्रकार भी सरकार को जनता के सामने झुकाने अथवा फीताशाही को दूर करने में अथवा लोक-हित के कामों में संलग्न करने में अथवा लोगों को कार्य करने में कुछ भी लाभ हुआ है। यही इस आन्दोलन के उद्देश्य थे।.... इनके विपरीत सरकार अधिक हठी, कठोर और निरंकुश हो गई है।"[84] मोतीलाल जी का प्रस्ताव पारित नहीं हो सका। इस पर श्री सी.आर. दास ने अपना एक पृथक् दल बना लिया।

इस प्रस्ताव से और प्रस्ताव के समर्थक श्री जयकर के वक्तव्य से, यह बात सिद्ध हो जाती है कि मोतीलाल जी और उनके साथी, जिनमें सी.आर. दास प्रमुख थे, गांधी जी की अहिंसात्मक असहयोग की नीति पर विश्वास खो चुके थे। यह प्रस्ताव कांग्रेस कमेटी ने स्वीकार नहीं किया। परिणामस्वरूप मोतीलाल इत्यादि लोगों ने स्वराज्य दल से पृथक् अपना एक दल बना लिया। इस पर भी ये लोग अपने को महात्मा जी से सर्वथा पृथक् नहीं कर सके। वे महात्मा जी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख्याति का लाभ उठाकर कौंसिलों में प्रमुख स्थान लेना चाहते थे।

जवाहरलाल जी को न तो महात्मा गांधी की भूल में रहस्य समझ आया न ही वे अपने पिता जी की नीति को समझ सके। जवाहरलाल जी के विचार में असहयोग आन्दोलन की असफलता का कारण यही था कि इसे गांधी जी ने फरवरी 1922 में वापस ले लिया था। वे इस बात पर ही प्रसन्न थे कि महात्मा जी ने भविष्य में किसी भी आन्दोलन को इस प्रकार वापस न लेने का वचन दे दिया है। वे लिखते हैं—

Many years later, just before the 1930 Civil Disobedience movement began, Gandhiji, much to our satisfaction, made this point clear. He stated that the movement should not be abandoned because of the occurrence of sporadic acts of violence.[85]

बहुत वर्ष उपरान्त, 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के आरम्भ होने से पहले ही गांधी जी ने यह माना था कि कुछ लोगों के यत्र-तत्र हिंसात्मक कामों से आन्दोलन बन्द करना ठीक नहीं। इस आश्वासन से हम को संतोष हुआ था।

इसका अर्थ यह है कि आन्दोलन की असफलता इसके असामयिक बन्द करनें के कारण थी। यह भी नेहरू जी की नासमझी ही थी।

असल बात यह है कि आन्दोलन आरम्भ होने से पहले ही सब ख्यातिप्राप्त नेता इसके पक्ष में नहीं थे। भूल यह हुई थी कि आन्दोलन का विरोध करने वाले नेताओं ने अपना प्रवक्ता एक गलत व्यक्ति को बनाया था। नागपुर कांग्रेस में श्रीयुत दास ने गांधी जी के सामने हथियार डाल दिए थे। इस पर भी जब पुनः असहयोग आन्दोलन का विरोध 1922-23 में हुआ तो पुनः वही नेता बन गए। यह बात कुछ ऐसी प्रतीत होती है कि दास बाबू बुद्धि से तो समझते थे कि यह असहयोग आन्दोलन सफल नहीं होगा, परन्तु उनको अपनी सूझ-बूझ पर विश्वास नहीं था।

यों तो गया-कांग्रेस के अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में आप कहते हैं कि 'सिविल डिसओबिडिएंस' सफल नहीं हो सकती थी, परन्तु इस पर भी अपरिवर्तनशीलों से डर के मारे कौंसिलों में जाकर भी असहयोग की ही बात करते रहे।

यह बात सब बुद्धिशील व्यक्ति मानते थे कि इतने बड़े देश में इस प्रकार का, सरकार से असहयोग चल नहीं सकता। विरोध तो चल सकता है, परन्तु असहयोग असम्भव है। यदि यह आन्दोलन बन्द न कर दिया जाता तो निस्सन्देह वह हिंसात्मक वैसे ही हो जाता, जैसे रौलट ऐक्ट का आन्दोलन पंजाब में हुआ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। कदाचित् उससे अधिक तीव्र होता। तब वह किसी प्रकार की अनहोनी बात न होती। ऐसा सदा दासता में बँधे लोग किया करते हैं और वैसा कर स्वतन्त्रता प्राप्त करते रहे हैं। परन्तु तब यह गांधी जी का आन्दोलन न होता। दुनिया में अन्य होने वाली क्रान्तियों की भाँति ही होता।

हिन्दुस्तान में क्रान्ति सफल हो सकती थी अथवा नहीं? यह एक प्रश्न है, जिसके कारण गांधी जी के आन्दोलन की उपादेयता पर विचार किया जाता है। हम समझते हैं कि गांधी जी का आन्दोलन तो असफल रहा। इस कारण इसकी उपादेयता तो विचारणीय है ही नहीं। रहा विद्रोह? इस विषय में हमारा मत है कि भारतीय सेना में राजनीतिक जागृति का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। सशस्त्र क्रान्ति सेना के सहयोग के बिना असम्भव है। इसके लिए संकेत किया था 1915-16 में श्री तिलक और लाला लाजपतराय जी ने। कांग्रेस ने इस दिशा में यत्न नहीं किया।

इस आन्दोलन को चलाने वाले स्वराज लेने तो लपके, परन्तु स्वराज्य मिलते ही वे देश में शान्ति व्यवस्था कैसे स्थापित कर लेते, इसका कोई वर्णन नहीं करता। तब क्या वह सेना, जो कांग्रेस के समीप भी नहीं फटकती थी, इन नेताओं का कहा मान देश में शान्ति स्थापित करती?

अंग्रेज़ों के चले जाने पर यदि कोई विदेशी राज्य यहाँ आक्रमण कर देता तो इन नेताओं की कौन रक्षा करता? सबकुछ भगवान भरोसे ही था। जवाहरलाल जी तो राष्ट्रीयता के भी निन्दक थे? तब कौन-सी भावना होती, जो देश की रक्षा करने में समर्थ होती?

इन सबकी यदि चिन्ता नहीं थी तो इसलिए कि आन्दोलन सफल होने वाला ही नहीं था।

हमारा यह मत है कि 1921-22 का आन्दोलन केवल लोक-संग्रह का काम ही कर सका था। परन्तु वह लोक-संग्रह भी केवल इस प्रकार के नेताओं के पीछे और एक मिथ्या विचार के समर्थन में। जनता एकत्रित हो गई थी गांधी जी के पीछे, जो शत्रु से बन्दूक लेकर लड़ने के स्थान पर, उसके सामने लेट जाने में कल्याण मानते थे। इसी गांधीवाद का नारा लगाते हुए जवाहरलाल जी ने देश की सुरक्षा सम्बन्धी तैयारी अपने राज्यकाल के 16 वर्ष तक नहीं की। अतः गांधी जी के आन्दोलनों से जो लोक-संग्रह हुआ, यह मिथ्या दृष्टि पर चलने वाले नेताओं के लिए हुआ। गलत भावनाओं के लिए हुआ। इस लोक-संग्रह से लाभ के स्थान पर हानि ही हुई है। इसका अनुभव स्वराज्य काल के इतिहास से लग सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा यह मत है कि गांधी जी का पूर्ण आन्दोलन ही भूल थी। जनता की तैयारी की तो बात ही नहीं, नेता लोग अशिक्षित और अविचारशील और इतिहास तथा राजनीति से अनभिज्ञ थे।

गांधी जी ने इस भूल को रोका था, जब फरवरी 1922 में इस आन्दोलन को बन्द किया था।

कठिनाई यह थी कि जवाहरलाल जी जैसे कई अन्य कार्यकर्त्ता भी कांग्रेस में प्रवेश पा चुके थे, जो गांधी जी को, आन्दोलन स्थगित करने पर, कोसते थे और कार्यक्रम में परिवर्तन (change) करने वालों को देशद्रोही कहकर, अपनी धींगामस्ती चलाते थे।

आन्दोलन की असफलता का दोष ये लोग एक ओर तो गांधी जी पर, इसको रोक देने के कारण लगाते हैं, दूसरी ओर जनता के अशिक्षित होने पर लगाते हैं।

:: 10 ::

शास्त्र का यह वचन जवाहरलालजी पर शत प्रतिशत सत्य सिद्ध होता है—

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च
अयथावत्प्रजानास्ति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।[86]

इसका अर्थ है जो लोग धर्म और अधर्म में तथा कर्त्तव्य अथवा अकर्त्तव्य में यथार्थ को नहीं जान सकते और केवल कर्म में विश्वास रखते हैं वे राजसी बुद्धि वाले कहे जाते हैं।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्।[87]

(राजसी बुद्धि वाले पुरुष कर्म करते हैं। उनके कर्म बहुत परिश्रम से युक्त होते हैं। वे फल की इच्छा से किए जाते हैं और अहंकार से युक्त होते हैं।)

जवाहरलालजी और गांधीजी दोनों राजसी बुद्धि रखते हुए और राजसी कर्म कर रहे प्रतीत होते हैं। इनमें न तो सात्त्विक बुद्धि थी और न ही, अहंकार में डूबे होने से ये किसी सात्त्विक बुद्धि वाले का कहा मानने को तैयार थे। इन दोनों की असफलता का कारण ही यही है। दो व्यक्ति भिन्न-भिन्न मार्गों से आते हुए किसी सराय में मिल गए और अपनी एक समान बुद्धि के कारण, इकट्ठे कर्म करने लगे। न तो दोनों एक स्थान से आए थे और न ही दोनों ने एक लक्ष्य स्थान पर जाना था। केवल बुद्धि समान होने के कारण एक ही कर्म में सहवास करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे। परिणाम भयंकर हुआ। देश के गले में पाकिस्तान रूपी उस्तरों का हार पड़ा। एक बेमौत मारे गए, और दूसरे बेमौत मर गए।

राजसी बुद्धि के लोग बिना विचार किए कर्म करते हैं। विचार करने की बुद्धि उनमें होती ही नहीं। वे धर्म, अधर्म में भेदभाव नहीं कर सकते। यही बात श्री जवाहरलाल जी ने सितम्बर 1913 में की थी। मज़हबों को मूर्खता समझने वाले एक मज़हबी झगड़े में फँस गए। सिखों में अकाली लोग गुरुद्वारों का सुधार करते हुए सरकार से झगड़ा कर रहे थे और श्रीमान जवाहरलाल जी जाकर इस झगड़े में हस्तक्षेप कर बैठे।

जवाहरलाल जी अपने इस काम की सफाई में लिखते हैं—

The Sikhs, and especially the Akalis among them, had been coming into repeated conflict with the Government in the Punjab. A revivalist movement among them had taken it upon itself to purge their Gurdwaras by driving out corrupt Mahants and taking possession of the places of worship and the property belonging to them. The Government intervened and there was conflict.[88]

सिक्ख, विशेष रूप में उनमें अकाली, बार-बार सरकार के विरोध में आ रहे थे। उनमें एक सुधार का आन्दोलन चल पड़ा था। और उसमें उन्होंने अपना कर्त्तव्य बना लिया था गुरुद्वारों से और उनकी सम्पत्ति से पतित महन्तों को हटाया जाए और उन पर अधिकार कर लिया जाए। सरकार ने इसमें हस्तक्षेप किया और झगड़ा हो गया।

एक मोटी बुद्धि वाले व्यक्ति की भाँति जवाहरलाल जी सदा ही मिथ्या युक्ति करते हैं। सिख, विशेष रूप में अकाली बलपूर्वक गुरुद्वारों और उनकी सम्पत्ति पर अधिकार कर रहे थे। उन महन्तों का उन गुरुद्वारों पर किस प्रकार अधिकार था और क्या सत्य ही वे पतित थे, यह किसको निर्णय करना था? सरकार यह नहीं कहती थी कि वे महन्त सात्त्विक थे। सरकार का कहना था कि वे उस समय गुरुद्वारों में बैठे थे और उन गुरुद्वारों की सम्पत्ति को पंथ के लिए अथवा अपने स्वार्थ के लिए चिरकाल से प्रयोग कर रहे थे। उनको हटाया जाए, यह ठीक भी मान लिया जाए, तब कौन हटाए उनको? हटाकर कौन वहाँ बैठे और उस नए बैठने वाले के क्या अधिकार हों? इन बातों का निर्णय कौन करे? कोई भी सही दिमाग आदमी यह नहीं मान सकता कि दस-बीस पचास आदमी उठकर चल पड़ें और किसी भी सम्पत्ति पर अधिकार जमाने लगें और सरकार उनको मना न करे। सरकार बलपूर्वक अधिकार करने पर आपत्ति करती थी। इसी को वह रोक रही थी। परन्तु जवाहरलाल जी तो किसी काम (action) के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए व्याकुल थे। भले ही वह काम मिथ्या दिशा में हो।

सरकार ने, बलपूर्वक सुधार करने में बाधा खड़ी की थी। अकालियों ने महन्तों को मारना-पीटना आरम्भ कर दिया था। महन्तों को जीवित जला देने की भी बातें कही जा रही थीं। बहुत भारी अनियंत्रित भीड़ एकत्रित हो गुरुद्वारों में जाकर महन्तों को धक्के दे-देकर निकालने लगती थी और जब वे उसका विरोध करते थे, तो उनको पीटा जाता था। इन बातों से सरकार महन्तों को बचाना चाहती थी। जैतो (नाभा) से पहले ननकाना साहब में झगड़ा हो चुका था। बलपूर्वक महन्त पर और उसकी सम्पत्ति पर अधिकार करने का प्रयत्न किया गया था। झगड़ा हुआ, गोली चली और बहुत-से सिख मारे गए। मुकद्दमा हुआ और पंजाब हाईकोर्ट ने महन्त को निर्दोष समझ छोड़ दिया।

इसके बाद यही बात जैतो में होने वाली थी। ब्रिटिश इलाके से सिख जत्थे बना-बनाकर रियासत नाभा में जाकर गुरुद्वारे पर अधिकार करना चाहते थे। यह ठीक था कि वे लोग कहते थे कि वहाँ पाठ करेंगे, परन्तु पाठ करने के उपरान्त वे क्या करेंगे, इसके विषय में कोई गारंटी नहीं देता था। सरकार ने ब्रिटिश इलाके में जत्थे जाने से रोकने आरम्भ कर दिए। सिख, महन्तों पर जो निहत्थे होते थे, बल प्रयोग करते थे, परन्तु सरकार से बल प्रयोग का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता था। अतः अहिंसात्मक सत्याग्रह आरम्भ हो गया। पुलिस आज्ञा देती कि आगे मत जाओ। जत्था रुकता नहीं था। पुलिस लाठी चार्ज करती थी और उसमें बहुत-से घायल हो जाते थे। तब उनको उठाकर खाटों पर डालकर अमृतसर नगर में घुमाया जाता था और जनसाधारण को भड़काया जाता था।

इस पर नए जत्थे तैयार किए जाते थे। जवाहरलाल जी इस तमाशे को देखने चले गए। उनका अपना कहना तो केवल यह है कि वे केवल देखने गए थे, परन्तु वे खड़े थे उस स्थान पर, जहाँ से लोगों को हट जाने की आज्ञा हो चुकी थी। ये हटे नहीं और इनको पकड़ लिया गया।

जवाहरलाल जी का कहना है कि वे केवल देखने गए, परन्तु उनके विचारों को देखते हुए, यह अधिक विश्वास से कहा जा सकता है कि वे सरकार की अवज्ञा करने के लिए सिखों को भड़काने गए थे।

नेहरू जी के बाद के जीवन में इसी प्रकार की घटना एक अन्य हुई थी। यह सन् 1946 की बात है। शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में कश्मीर के महाराज को पदच्युत करने का यत्न किया गया था। श्रीनगर और कई अन्य स्थानों पर बलवे हुए थे और कश्मीर के महाराज उन बलवों को दबाने के लिए पकड़-धकड़ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे थे। ऐसे समय जवाहरलाल जी वहाँ जा पहुँचे। जब इनको कश्मीर जाने से रोका गया तो ये नहीं माने। इनको पकड़ लिया गया और बन्दी बना लिया गया।

इस समय भी (1923 में) सिख एक रियासत में कानून भंग कर रहे थे। और जवाहरलाल जी वहाँ जा पहुँचे। इनको वहाँ से हटाने की आज्ञा दी गई और न हटने पर पकड़ लिये गए।

यही जवाहरलाल जी, एक ओर तो तिलक आदि को, वन्देमातरम् गीत गाने के कारण मज़हबी राष्ट्रवादी कहकर उनकी निन्दा करते थे, दूसरी ओर सिखों के मज़हबी दीवानों को कानून भंग करते हुए देख, उनका समर्थन करने चल पड़े थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि मोतीलाल जी भी अपने पुत्र के इस काम से प्रसन्न नहीं थे। उन्होंने एक पत्र जवाहरलाल जी को, जब वे नाभा जेल में थे, लिखा था। उस पत्र का एक अंश इस प्रकार है—

I was pained to find that instead of affording you any relief my visit of yesterday only had the effect of disturbing the even tenor of your happy jail life. After much anxious thinking I have come to the conclusion that I can do no good either to you or to myself by repeating my visits. I can stand with a clear conscience before God and man for what I have done so far after your arrest, but as you think differently it is no use trying to make opposites meet....

For the present I hardly know what to do with myself and shall wait here for a couple of days or so. Please do not bother about me at all. I am as happy outside the jail as you are in it.

मुझको यह जानकर दुःख हुआ कि मेरी कल की तुमसे मुलाकात तुम्हारी जेल की मज़ेदार और एकरस ज़िन्दगी में विघ्न डालने वाली सिद्ध हुई है। लम्बे काल तक गम्भीर विचार के उपरान्त मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मुलाकातों से मैं अपना अथवा तुम्हारा कोई भला नहीं कर सकता। पकड़े जाने के बाद, मैंने जो कुछ किया है उसके लिए मैं परमात्मा और मनुष्य के सामने सर्वथा निर्दोष हूँ, परन्तु तुम विचार करते हो कि यह ठीक नहीं हुआ, इससे मैं समझता हूँ कि परस्पर विपरीत मतों का मिलना व्यर्थ है। अभी तो मैं यह नहीं जान सका कि मैं अपने साथ क्या करूँ। मैं यहाँ दो दिन के लगभग और ठहरने का विचार करता हूँ। मेरी चिन्ता मत करो। मैं जेल के बाहर उतना ही प्रसन्न हूँ जितना तुम जेल के भीतर हो।

इस चिट्ठी के नीचे एक छोटा-सा नोट है। वह इस प्रकार है—

Please do not think that I have written this letter either in anger or in

नीचे लिखा है—

यह मत समझो कि मैंने यह क्रोध में अथवा शोक में लिखा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

sorrow. I have tried my best after an almost all-night consideration to take a calm and practical view of the position. I wish you not to have the impression that you have offended me as I honestly believed that the position has been forced upon both of us by circumstances over which neither has any control.[89]

रात-भर के विचार के उपरान्त मैं इस व्यावहारिक और शान्त निश्चय पर पहुँचा हूँ कि तुम यह मत समझना कि तुमने मेरा अपमान किया है। मैं सत्य हृदय से यह विश्वास रखता हूँ कि घटनाओं ने यह स्थिति हम दोनों पर लाद दी है। इस पर हम दोनों का कोई बस नहीं।

इस पत्र से कुछ यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मोतीलाल जी जवाहरलाल जी का सिखों के झगड़े में कूद पड़ना पसन्द नहीं करते थे। यद्यपि वे समझते थे कि घटनाओं ने वह स्थिति उत्पन्न की है। साथ ही जवाहरलाल जी के पकड़े जाने के उपरान्त वे बाहर कुछ करते रहे थे, जिसको जवाहरलाल जी ने पसन्द नहीं किया था। सम्भवतः यह जवाहरलाल जी को छुड़ाने के विषय में कुछ प्रयास था।

मोतीलाल जी ने वाइसराय को जो तार भेजा था उसमें जवाहरलाल जी के विषय में समाचार जानने की बात लिखी थी। इसके अतिरिक्त उनको जवाहरलाल जी से मिलने की स्वीकृति नहीं मिल रही थी। वे लड़के का मुकद्दमा स्वयं करना चाहते थे। इत्यादि।

दंड मिल जाने के तुरन्त ही बाद वह छोड़ दिए गए थे। इसका अर्थ यही प्रतीत होता है कि मोतीलाल जी ने पुत्र को छुड़ाने का यत्न किया था।

जवाहरलाल जी अन्य एक बार 1946 में कश्मीर में पकड़े पाए थे, तब भी महात्मा गांधी और मौलाना आज़ाद ने वाइसराय से कहकर उनको छुड़वाया था।

नेहरू जी की मनोवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हैदराबाद में आर्यसमाज के आन्दोलन का उल्लेख भी उपयुक्त होगा। हैदराबाद का आन्दोलन सन् 1937-38 में हुआ था। आर्यसमाज ने किसी पर बलात्कार नहीं किया था। वे अपने मंदिर में बैठ हवन-संध्या करते थे और रियासत उनको यह करने की स्वीकृति भी देना नहीं चाहती थी। आर्यसमाजियों ने भी शान्तिमय सत्याग्रह किया था। उस समय भी जवाहरलाल जी देश के प्रतिष्ठित नेता थे। परन्तु इनके कान पर जूँ नहीं रेंगी। अकालियों का आन्दोलन विवादास्पद सम्पत्ति पर बल-प्रयोग से अधिकार करने का आयोजन था। कश्मीर में शेख साहब के चेले-चपाटे हिंसात्मक कार्रवाई कर रहे थे। इन दोनों आन्दोलनों के साथ जवाहरलाल जी की सहानुभूति थी, परन्तु आर्यसमाज के प्रति उनके मन में दया भी नहीं आई। सत्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात तो यह है कि जवाहरलाल जी हिन्दुओं के अतिरिक्त सबके साथ सहानुभूति रखते थे। यदि किसी के साथ द्वेष था, तो वह हिन्दुओं से था।

एक बात और है। जवाहरलाल जी ने कभी भी उद्देश्य का विचार नहीं किया। वे तो कर्म (action) के प्रशंसक रहे। भले ही वह कर्म मिथ्या दिशा में जाने वाला हो।

गुरुद्वारों का आन्दोलन ठीक दिशा में नहीं जा रहा था। मज़हब एक व्यक्तिगत बात है। जब यह संगठित हो जाए तो यह एक समुदाय का प्रतीक हो जाता है। समुदाय और मज़हब में अन्तर है। व्यक्ति-व्यक्ति के लिए मज़हब भिन्न-भिन्न अर्थ रखता है, परन्तु जब मज़हब एक समुदाय का रूप ग्रहण कर लेता है तब यह राजनीतिक अधिकार माँगने लगता है। इस पर यह समुदाय एक जाति बन जाता है। किसी भी मज़हब को एक समुदाय का रूप ग्रहण करने में सहायता देना देश में एक नवीन जाति का निर्माण करना है। मुसलमान एक मज़हबी समुदाय है। इसी के आधार पर अकालियों ने सिख मज़हब को एक समुदाय बनाने में सहयोग दिया। परिणाम यह हो रहा है कि सिख एक जाति बन रही है। हिन्दू जो सिख मज़हब के अनुयायी थे धीरे-धीरे सिख समुदाय से बाहर निकाले जा रहे हैं। जब गुरु नानक का एक पंथ था, तब व्यक्ति इसकी ओर आकर्षित होकर आते थे। इसको समुदाय का रूप दिया एक अंग्रेज़ ने। वह नाभा के महाराजा का ट्यूटर था। उसके प्रचार का ही फल था, जो अकालियों ने स्वीकार किया।

अब गुरुद्वारों की आय का अधिकांश भाग राजनीतिक कामों में प्रयुक्त होता है। वे लोग जो सिख समुदाय में तो नहीं, परन्तु गुरु नानक के मज़हब को मान्यता देते हैं, भारी कठिनाई में फँस गए हैं। कारण स्पष्ट है, सिख समुदाय एक राजनीतिक इकाई बन गया है और गुरुद्वारों में जाने वाला धन उस राजनीतिक इकाई के लिए प्रयुक्त हो रहा है। जो लोग उस इकाई में नहीं जाना चाहते, उनको सिख मज़हब से भी पृथक् होना पड़ रहा है।

:: 11 ::

सन् 1924 में कांग्रेस का अधिवेशन कोकानाडा में हुआ। मौलाना मुहम्मद अली इसके प्रधान बने। इस अधिवेशन में श्री सी.आर. दास जो बंगाल में स्वराज्य दल के नेता थे और जिस दल ने प्रायः सब-की-सब हिन्दू सीटें जीती थीं, मुसलमानों के साथ एक समझौते का प्रारूप लेकर आए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समझौते का कारण यह था कि जहाँ हिन्दुओं की प्राय: सब-की-सब सीटें स्वराज्य दल ने जीती थीं, वहाँ मुसलमानों की सब-की-सब सीटें मुस्लिम लीग के हाथ आई थीं। इन दोनों दलों के बीच एंग्लो इण्डियन ब्लाक था। यह ब्लाक सरकार के पक्ष का पोषण करता था और मुसलमानों को अपनी ओर कर सरकार का पक्ष प्रबल करना चाहता था। स्वराज्य दल वाले मुसलमानों को सरकार के विरोध में करना चाहते थे। मुसलमानों ने अपने सहयोग का मूल्य माँगा और वह मूल्य देने का प्रस्ताव लेकर श्री दास कांग्रेस अधिवेशन में आए थे। वे चाहते थे कि कांग्रेस इस समझौते को पूर्ण देश के लिए स्वीकार कर ले। अन्य प्रान्तों ने इसे स्वीकार नहीं किया। अत: यह समझौता केवल बंगाल-समझौता ही रहा। इसे 'बंगाल पैक्ट' के नाम से स्मरण किया जाता है। इस समझौते में मुसलमानों को बहुत रियायतें दी गई थीं। नौकरियों में इनकी संख्या नियत कर दी गई थीं। मस्जिदों के आगे बाजा न बजाने का प्रस्ताव था, गो-हत्या की स्वीकृति इत्यादि ऐसी कई बातें थीं, जो इस समझौते के अनुसार मानी गई थीं।

कुछ दिन तक समझौता चला परन्तु शीघ्र ही सरकार ने मुसलमानों को इस समझौते से भी अधिक अधिकार देकर, अपने साथ मिला लिया और दास बाबू मुँह देखते रह गए।

गांधी जी के राजनीतिक क्षेत्र में आने से पहले देश-प्रेम और उसके लिए त्याग की भावना देशभक्तों का आदर्श था। गांधी जी और मोतीलाल जी के राजनीति में सहवास ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया, जिससे देश में स्वराज्य विरोधी समुदायों को विशेष अधिकार देकर, स्वराज्य आन्दोलन में आमन्त्रित किया जाने लगा। इसका सीधा परिणाम यह हुआ कि देश-प्रेम की भावना अधिकारों के समक्ष गौण हो गई। अहिंसा और सबको लेकर साथ चलने की नीति ने ही यह प्रवृत्ति उत्पन्न की थी और यह प्रवृत्ति गांधीवाद के नाम पर आज तक चलती रही है।

कोकानाडा कांग्रेस के उपरान्त जवाहरलाल जी अखिल भारतीय कांग्रेस के महामन्त्री नियुक्त हुए। मौलाना मुहम्मद अली प्रधान थे और दोनों में बहुत मेल-मुलाकात होने लगी। दो कर्मशील व्यक्ति, जो बुद्धिविहीन हों और एक स्थान पर एकत्रित हो जाएँ, तो इनमें कुछ अधिक काल तक निभ नहीं सकती। मौलाना धर्मान्ध व्यक्ति थे और जवाहरलाल जी गांधी जी की इस बात को मानने वाले थे कि दूसरों को अधिकारों का प्रलोभन देकर सहयोग के लिए आमन्त्रित किया जाए। जवाहरलाल और मौलाना में मतैक्य नहीं था, परन्तु मौलाना को प्रधान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाया गया मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए और यह समझा जा रहा था कि उनकी देशद्रोह भी बातें भी सहन की जाएँ और इनमें उनको सहयोग प्रदान किया जाए। जवाहरलाल जी मौलाना के विषय में लिखते हैं—

I avoided discussing this subject of religion with him, because I knew we would only irritate each other, and I might hurt him. It is always a difficult subject to discuss with convinced believers of any creed. With most Moslems it is probably an even harder matter for discussion since no latitude of thought is officially permitted to them. Ideologically, their is a straight and narrow path, and the believer must not swerve to the right or the left. Hindus are somewhat different, though not always so. In practice they may be very orthodox; they may, and do, indulge in the most out of date reactionary and ever pernicious customs, and yet they will usually be prepared to discuss the most radical ideas about religion. I imagine the modern Arya Samajists have not, as a rule, this wide intellectual approach. Like the Moslems, they follow their own straight and narrow path.[90]

मैं उन (मौलाना मुहम्मद अली) के साथ मज़हब के विषय में बात करने में संकोच करता था। मैं यह जानता था कि इसमें हम एक-दूसरे को नाराज़ ही करेंगे और मैं उनको दुःखी ही करूँगा। एक पक्षपाती के साथ बात करने के लिए मज़हब एक बहुत ही कठिन विषय है। प्रायः मुसलमानों के साथ तो यह और भी कठिन बात हो जाती है, क्योंकि उनको मज़हबी विषयों पर विचार करने की छूट ही नहीं है। सिद्धान्त से, उनके लिए एक बहुत ही तंग मार्ग है, जिस पर वे चल सकते हैं। दाहिने-बाएँ जाने की स्वीकृति नहीं। हिन्दू इससे भिन्न हैं। व्यवहार में वे बहुत कट्टर होते हैं और कभी-कभी वे बहुत ही अपकारक और गले-सड़े पुराने रीति-रिवाजों पर डटे रहते हैं। परन्तु साधारण रूप में वे मज़हब के विषय में सर्वथा भिन्न-भिन्न विचारों पर भी बातचीत करने को तैयार हो जाते हैं। मज़हब के विषय में आधुनिक आर्यसमाजी ऐसे नहीं होते। वे प्रायः उदार और बुद्धिशीलता नहीं रखते। मुसलमानों की भाँति वे भी अपने तंग और सीधे मार्ग पर ही चलते हैं।

मौलाना से मज़हब विषयों पर बातचीत करने से डरना ठीक ही था। उनको कांग्रेस के प्रधान पद का लोभ देकर कांग्रेस ने अपने को मुसलमानों की प्रतिनिधि संस्था विख्यात करने का प्रयास किया था। इस प्रयास में सफल होने के लिए उनकी उच्छृंखलताएँ सहन करनी ही थीं।

यह इन्हीं दिनों की बात है जब मौलाना ने अपना विख्यात वक्तव्य दिया था कि एक फाशा मुसलमान औरत भी पाक से पाक हिन्दू से बेहतर है।

मौलाना के विषय में लिखने हुए जवाहरलाल जी ने मुसलमानों की निन्दा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं की है। दबी जबान से उनकी विवशता ही लिखी है। परन्तु यह लिखते हुए भी, अपने पेट की दर्द को मिटाने के लिए वे हिन्दुओं की निन्दा किए बिना नहीं रह सके।

आपने आर्यसमाजियों को अकारण ही रगड़ डाला है। यह रगड़ा भी उनकी मिथ्या दृष्टि और उनकी अज्ञानता का सूचक है। जितने डंके की चोट से आर्यसमाजी मज़हबी विषयों पर वाद-विवाद करने के लिए तैयार हो जाते हैं, उतने दूसरे हिन्दू भी नहीं होते। उनकी मान्य पुस्तक सत्यार्थप्रकाश तो खण्डन-मण्डन से भरी पड़ी है। यह स्पष्ट ही है कि जवाहरलाल जी आर्यसमाज के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे। उन्हें तो मुसलमानों की आलोचना करने के लिए हिन्दुओं को गाली देनी थी और चट से आर्यसमाजी पकड़ लिये और उनको एक लताड़ दे दी। बुद्धिहीन और भीरु पुरुषों का यही स्वभाव होता है। इन 'गुणों' के साथ-साथ जवाहरलाल जी का ज्ञान बहुत ही कम था। उनको मुसलमान के साथ कोष्ठक में रखने के लिए कोई हिन्दू चाहिए था और दुर्भाग्य से आर्यसमाज हाथ में आ गया।

हम आर्यसमाजियों की प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। हम तो केवल जवाहरलाल जी की अनभिज्ञता को ही बताना चाहते हैं। हिन्दुओं में आर्यसमाजी पहले लोग थे, जिन्होंने विधर्मियों के साथ वाद-विवाद आरम्भ किए थे और इसके लिए उन्होंने बहुत बलिदान भी किए हैं। इस्लाम की आलोचना पर मुसलमानों ने आर्यसमाजियों की हत्याएँ तो की हैं, परन्तु जवाहरलाल जी एक भी उदाहरण ऐसा नहीं बता सकते, जहाँ किसी आर्यसमाजी ने किसी मुसलमान अथवा किसी भी विधर्मी की इस कारण हत्या की हो कि वह आर्यसमाज की आलोचना करता था।

आर्यसमाजियों में दोष अथवा गुण, जो भी मानो वह यह है कि जहाँ साधारण हिन्दू दूसरे धर्म वालों के केवल आक्षेप सुनने को ही तैयार रहता है, वहाँ एक आर्यसमाजी सुनता है और सुनाता भी है। एक मुसलमान दूसरों पर आक्षेप तो करना चाहता है, परन्तु अपने पर सुनने का ताब नहीं रखता। जवाहरलाल जी इस बात को समझ नहीं सके। कांग्रेस में प्रायः सब इसी प्रकार के लोग एकत्रित हो गए हैं, जो किसी मज़हबी विषय पर विवाद नहीं चाहते। परन्तु ईसाई और मुसलमान तो आक्रामक मज़हब हैं। ये दूसरों की निन्दा किए बिना नहीं रह सकते। इसके समक्ष कांग्रेसी विवश हो जाते हैं।

जवाहरलाल जी, गांधी जी, और दास प्रभृति लोगों का यह व्यवहार बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुका था कि दूसरे कुछ भी कहें अथवा करें, वे स्वयं उनकी बात का प्रतिकार न करें। भले ही वे मिथ्यावादी हों अथवा आततायी हों। इसमें कारण यह था कि वे दूसरों से सदैव शान्ति और सहिष्णुता बनाए रखना चाहते थे। यह उपाय ग़लत ही सिद्ध हुआ है।

गांधी जी 1924 में बीमार हुए। उनका ऑपरेशन हुआ और अस्पताल से ही उनको छोड़ दिया गया। गांधी जी स्वास्थ्य लाभ के लिए जुहू चले गए थे। नेहरू परिवार भी जुहू जा पहुँचा। वहाँ एक छोटा-सा मकान लेकर ये रहने लगे।

मोतीलाल जी महात्मा जी को स्वराज्य दल की कार्य-विधि समझाना चाहते थे। जवाहरलाल जी इस वार्तालाप में उपस्थित रहते थे और स्वयं भी समस्या को भलीभाँति समझना चाहते थे। उनका मन कांग्रेस में फूट के कारण चिन्ताग्रस्त रहता था।

जुहू के वार्तालाप से न तो गांधी जी समझे और न ही स्वराज्य पार्टी के नेतां समझ सके। नेहरू परिवार जुहू से निराश वापस लौटा।

जवाहरलाल जी इस वार्लालाप के विषय में लिखते हैं, *''सदा की भाँति महात्मा जी ने भविष्य में देखने से इन्कार कर दिया। वे कोई दूरवर्ती कार्यक्रम बना नहीं सके। हमको धैर्य से जनता की सेवा और निर्माण कार्य करना था।''*[91]

यदि यहाँ गांधी जी के निर्माण कार्यों का उल्लेख कर दें तो ठीक होगा। ये कार्य थे : 1. हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य, 2. खद्दर 3. अछूतोद्धार, 4. शराब और नशाबन्दी।

ये सब काम अच्छे होते हुए भी जनता को राजनीति में शिक्षित करने की सामर्थ्य नहीं रखते थे।

1924 का वह काल ऐसा था, जब कांग्रेस में कभी गांधी जी का मान बहुत कम हो गया था। इन दिनों आल इंडिया कमेटी की बैठक अहमदाबाद में हो रही थी। उनमें एक गोपीनाथ साह की बात उपस्थित हुई। गोपीनाथ साह एक बंगाली क्रांतिकारी आतंकवादी था। उसके विषय में प्रस्ताव पास नहीं हो सका, परन्तु गांधी जो को यह भी असह्य था कि उनकी उपस्थिति में ऐसा प्रस्ताव रखा ही क्यों गया और यदि रखा गया था तो सर्वसम्मति से अस्वीकार क्यों नहीं कर दिया गया? हुआ यह कि इस प्रस्ताव पर बहुत ले-दे हुई और फिर कुछ नेतागण उठकर सभा से बाहर चले गए। इन जाने वालों में मोतीलाल जी और दास बाबू भी थे। इस पर गांधी जी बहुत नाराज़ हुए।

इस विषय पर गांधी जी ने अपने पत्र 'यंग इंडिया' में लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''चारों प्रस्तावों पर मेरे साथ बहुत कम बहुमत था। मैं इसको अल्प मत ही मानता हूँ। सभा लगभग आधी-आधी बँटी हुई थी। गोपीनाथ साह के प्रस्ताव ने तो बात स्पष्ट कर दी। भाषण, परिणाम तथा पीछे का दृश्य जो मैंने देखा, मेरी आँखें खोलने वाला था। गोपीनाथ के प्रस्ताव के उपरान्त तो मर्यादा ही भंग हो गई थी। मैं इच्छा करने लगा था कि उस असुखद् वातावरण से भाग जाऊँ। मैं प्रस्ताव उपस्थित करने से भी डरता था—मुझको दुःख हो रहा था कि अनजाने में कांग्रेस के अहिंसा के सिद्धान्त अथवा नीति के विपरीत अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार स्वीकार किया जा रहा है। कांग्रेस के सत्तर प्रतिनिधियों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था। यह बात चकाचौंध करने वाली थी।''

जवाहरलाल जी इसमें गांधी जी को तत्कालीन परिस्थिति से अनभिज्ञ तो मानते हैं, परन्तु एक क्षण के लिए भी उन्होंने अपना मतभेद गांधी जी से प्रकट नहीं किया।

आप लिखते हैं—

...But although he (Gandhiji) had the majority with him, he weakened in his resolve and began to compromise with the others. During the next three or four months, to my amazement, he changed several times on this question. He seemed to be completely at sea, unable to find his bearings, That was the one idea that I did not associate with him, and hence my surprise....

I came to the conclusion that Gandhiji's difficulties had been caused, because he was moving in an unfamiliar medium. He was superb in his special field of Satyagrahic direct action, and his instinct ringly led him to take the right steps.[92]

यद्यपि गांधी जी के साथ बहुमत था, वे अपनी धारणाओं में दुर्बल पड़ते जाते थे और दूसरों से समझौता करने लगे थे। मुख्य प्रश्न पर वे कई बार बदले। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी सूझ-बूझ नहीं रही थी और वे अपने पाँवों से उखड़ गए प्रतीत होते थे। इस बात में उनके स्वभाव के साथ मैं मिल नहीं सका। इस कारण मैं परेशान था—

मैं इस परिणाम पर पहुँचा था कि गांधी जी की कठिनाई यह थी कि वे अपने को अपरिचित वातावरण में पाते थे। उनका विशेष क्षेत्र सत्याग्रह था और वे उसके सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता थे। उसमें उनका अन्तःकरण उनको बिना भूल किए ठीक मार्ग पर ले जाता था।

जवाहरलाल जी का यह वक्तव्य गांधी जी की दुर्बलता को छुपाने के लिए था। यह केवल मात्र वाग्जाल ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस (अहमाबाद की) सभा के उपरान्त गांधी जी धीरे-धीरे नेहरू परिवार के पंजे में फँसते गए।

1920 में गांधी जी को अपनी बात मनवाने में केवल मोतीलाल जी ही एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रय मिले थे। अब फिर कठिनाई उपस्थित हो रही प्रतीत होती थी और वे अब मोतीलाल जी का आश्रय छोड़ना नहीं चाहते थे। यथार्थ बात यह है कि गांधी जी और नेहरू परिवार में कुछ भी समान नहीं था। केवल काम करने की प्रवृत्ति परस्पर मिलती थी।

जवाहरलाल जी लिखते हैं कि आखिर गांधी जी ने अपने को उनके अनुकूल बना लिया।

After a brief political estrangement in the middle of 1924, the old relations between my father and Gandhiji were resumed and they grew even more cordial. However much they differed from one another each had the warmest regard and respect for the other.[93]

1924 के मध्य के थोड़े-से वैमनस्य के उपरान्त पिता जी तथा गांधी जी में पुराने सम्बन्ध पुनः चलने लगे। वरन कुछ अधिक घनिष्ट ही हुए। दोनों एक-दूसरे के लिए बहुत मान और सहिष्णुता रखते थे।

मोतीलाल जी गांधी जी के विषय में क्या समझते थे, उसका कुछ ज्ञान जवाहरलाल जी ने कराया है।

आप लिखते हैं—

Evidently he (Pt. Motilal) wanted to stress the fact that he did not admire Gandhiji as a saint or a Mahatma, but as a man. Strong and unbending himself, he admired strength of spirit in him. For it was clear that this little man of poor physique had something of steel in him, something rock-like which did not yield to physical powers, however great they might be. And in spite of his unimpressive features, his lion-cloth and bare body, there was a royalty and kingliness in him which compelled a willing obeisance from others.[94]

वास्तव में (मोतीलाल जी) इस बात पर बल दे रहे थे कि वे गांधी जी की इस कारण प्रशंसा नहीं करते थे कि वे साधु अथवा महात्मा थे, वरंच इस कारण कि वे मानव थे। वे स्वयं सुदृढ़ और झुकने वाले थे और गांधी जी की आत्मा की दृढ़ता की प्रशंसा करते थे। यह स्पष्ट है कि यह छोटा-सा व्यक्ति, शरीर से दुर्बल होते हुए भी अपने में कुछ फौलाद रखता था। वह चट्टान की भाँति सख्त और किसी भौतिक शक्ति के सामने झुकता नहीं था। उसकी प्रभाविहीन आकृति और लंगोटा तथा नंगा शरीर होने पर भी, उसमें राजसी ओज था, जो दूसरों को अधीनता के लिए विवश करता था।

इस विषय में हमारा मत है कि 1920 में भी और इस समय 1924 में भी, मोतीलाल जी गांधी जी के पीछे नहीं, आगे थे। 1920 में अपने एक पत्र में गांधी जी का मालवीयजी इत्यादि के पीछे भागने पर उन्होंने नापसन्दगी प्रकट की थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे खिलाफ़त के कारण मुसलमानों में बेचैनी देख रहे थे। अधिक सम्भव यह प्रतीत होता है कि वे एक योग्य वकील की भाँति गांधी जी को सरकार द्वारा दिए सुधारों पर कार्य करने के स्थान पर, उनका बहिष्कार करने पर तैयार कर बैठे हों।

हमारे कहने का यह अर्थ नहीं है कि इसमें मोतीलाल जी का कोई स्वार्थ था। इस पर भी यह बात स्पष्ट है कि मोतीलाल जी की ख्याति इतनी कभी भी नहीं हुई, जितनी गांधी जी की रही थी। इस कारण, उद्देश्य कुछ भी रहा हो, यह गांधी जी थे, जो मोतीलाल जी के पीछे चल पड़े थे। यह नहीं कि मोतीलाल जी गांधी जी के ओज और तेज के कारण उनके साथ चल पड़े हों। 1924 में भी मोतीलाल जी का गांधी जी से मतभेद हो गया था। उन्होंने सी.आर. दास जी से मिलकर एक स्वराज्य दल की स्थापना कर ली थी। फिर अहमदाबाद में कांग्रेस कमेटी की सभा में वे गांधी जी के विरोध में सभा छोड़कर चले गए थे। इस कारण गांधी जी ने अनुभव किया था कि उनका प्रभाव कम हो रहा है। जवाहरलाल जी यह भी लिखते हैं कि—"ऐसा प्रतीत होता है कि उन (गांधी जी) को कुछ सूझ-बूझ नहीं रही थी और वे अपने पाँव से उखड़ गए प्रतीत होते थे।"

हमारा मत है कि गांधी जी अहमदाबाद की उक्त सभा के उपरान्त नेहरू परिवार के पिछलग्गू बन गए थे। इसके बाद जब कभी भी उन्होंने अपनी कोई स्वतन्त्र योजना चलाने का यत्न किया, वह किंचित् मात्र भी चल नहीं सकी। इस पर भी जवाहरलाल जी जीवनभर गांधी जी का नाम लेकर अपनी नीतियाँ चलाते रहे हैं। यह तो इसी प्रकार है जैसे हिन्दू गाय की पूँछ पकड़कर वैतरणी पार करने की बात सोचते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय खण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

छाया का प्रभाव आरम्भ

जवाहरलाल जी की जीवनी लिखने वाले श्री फ्रेंक मोरेस तत्कालीन हिन्दुस्तान की अवस्था इस प्रकार लिखते हैं—

The clouds were thickening on the political horizon, and in 1923 Hindu-Muslim goodwill slumped sharply. In November 1922, Mustafa Kamal had exiled the Sultan of Turkey, who was also the Khalifa of the Muslim world, and with the virtual abolition of that office the Khilafat movement in India lost its mainspring. The lure of ministerships and other official perquisites generated a new rivalry between Hindus and Muslims. Militant Hinduism reared its head, and the Hindu Mahasabha, representing Hindu extremism, held its first significant session at Banaras in August, 1923, and embarked on the *Shuddhi* or reconversion movement.[95]

राजनीतिक क्षेत्र में बादल घिरने लगे थे और 1923 में हिन्दू-मुस्लिम सहिष्णुता ढीली पड़ने लगी थी। नवम्बर 1922 में मुस्तफा कमाल पाशा ने तुर्की के सुल्तान को जला-वतन कर दिया था। तुर्की का सुल्तान ही इस्लामी दुनिया में खलीफा माना जाता था। इस प्रकार इस पदवी के मिट जाने से हिन्दुस्तान के मुसलमानों का खिला.फ़त का आन्दोलन निरर्थक हो गया था। अब मन्त्री पदों और दूसरे पदों के लोभ ने दोनों समुदायों में ईर्ष्या उत्पन्न कर दी। उग्र हिन्दू मत वालों ने सिर उठाया और हिन्दू महासभा ने अपना प्रथम अधिवेशन अगस्त 1923 में बनारस में किया और शुद्धि का आन्दोलन आरम्भ किया। शुद्धि का अर्थ मत परिवर्तन है।

यह वक्तव्य एक ऐंग्लो-इण्डियन का है। अब जवाहरलाल जी के विचार इस विषय पर भी लिख देना उचित होगा।

आप लिखते हैं—

....Far more important, was the progressive deterioration of Hindu-Muslim relations, in North India

सबसे बढ़कर हिन्दू-मुसलमानों में बढ़ रहा बिगाड़ था, विशेष रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

especially. In the bigger cities a number of riots took place, brutal and callous in the extreme.[96]

उत्तरी भारत के नगरों में। ये झगड़े अति हृदयहीन और निर्दयतापूर्ण थे।

आप आगे लिखते हैं—

Previously a fruitful source of discord had been the question of cow sacrifice, especially on the Bakr-id day...

But now a fresh cause of friction arose, something that was ever present, ever recurring. This was the question of music before mosques. Objection was taken by the Muslims to music or any noise which interfered with their prayers in their mosques.[97]

पहले झगड़े का एक फलदायक कारण गाय की कुरबानी, विशेष रूप में बकरा ईद के दिन हुआ करता था। अब संघर्ष का एक नया कारण उत्पन्न हो गया था। यह बात पहले भी थी और होती रहती थी। यह मस्जिदों के सामने बाजे की बात थी। आपत्ति मुसलमानों ने उठाई थी कि मस्जिदों में नमाज़ के वक्त खलल पड़ता है।

'नए कारण' के साथ ही जवाहरलाल जी लिखते हैं 'यह बात पहले भी थी और सदा होती रहती थी' तो फिर यह नई कैसे हो गई? एक ही वाक्य में अपने लिखे का विरोध कर दिया है। साथ ही जवाहरलाल जी लिखते हैं, बाजा अथवा किसी प्रकार का शोर; यह बात भी गलत है। सब प्रकार के शोर पर आपत्ति नहीं थी। यह केवल हिन्दुओं के कथा-कीर्तन और बाजे-गाजे पर थी। सड़क पर अन्य किसी प्रकार के शोर पर आपत्ति नहीं होती थी।

एक अन्य स्थान पर जवाहरलाल जी लिखते हैं—

...The influence and prestige of the Moulvies, which had been gradually declining owing to new ideas and a progressive Westernisation, began to grow again and dominate the Muslim community. The Ali brothers, themselves of a religious turn of mind, helped in this process, and so did Gandhiji, who paid the greatest regard to the Moulvies and the Maulanas.[98]

यह बात आपने असहयोग आन्दोलन में खिलाफ़त को हिन्दुस्तान की राजनीति में घुसेड़ने पर लिखी है। इसके अर्थ हैं—मौलवियों की प्रतिष्ठा और प्रभाव, जो नए विचारों के कारण कम हो रहे थे, पुनः बढ़ने लगे थे और वे मुस्लिम समुदाय पर छा जाने लगे थे। अली भाई स्वयं मज़हबी विचार के आदमी थे। उन्होंने इस (प्रभाव वृद्धि) में सहायता दी। यही बात गांधी जी ने की। वे भी इन मुल्ला-मौलानाओं का बहुत मान करते थे।

मुसलमानों के विषय में जवाहरलाल जी और भी लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

It seems amazing that a question which could be settled with mutual consideration for each other's feelings and a little adjustment, should gave rise to great bitterness and rioting.... and they (passions) are easy to fan when a third party in control can play off one group against another.[99]

....Muslim political reactionaries, who had taken a back seat during all these years of non-co-operation emerged into prominence, helped in the process by the British Government.[100]

यह आश्चर्यजनक है कि जो बात परस्पर विचार और दूसरे के मनोभावों का विचार कर, कुछ ले-देकर ठीक हो सकती थी, वह इतनी कड़वाहट पैदा करे और बलवे उत्पन्न करे.... इनसे उद्‌गार इतने भड़क उठे कि तीसरा पक्ष जो अधिकार सम्पन्न है, वह दोनों को लड़ा दे।

....राजनीति में मुस्लिम प्रतिक्रियावादी जो उन दिनों (आन्दोलन के दिनों) पीछे हटे रहे थे, आगे आने लगे थे और इसमें ब्रिटिश सरकार ने उनकी सहायता की थी।)

आप एक लात हिन्दुओं को भी लगाते हैं। लिखते हैं—

....On the Hindu side also political reactionaries were among the principal communal leaders, and in the name of guarding Hindu interests, they played definitely into the hands of the Government.[101]

हिन्दुओं में भी प्रतिक्रियावादी साम्प्रदायिक नेता बन गए। हिन्दू हितों की रक्षा के बहाने वे सरकार के हाथों में खेलने लगे थे।

ये सब कथन और इसी प्रकार के हिन्दू-मुसलमान झगड़ों के विषय में जवाहरलाल जी के वक्तव्य न केवल निराधार हैं, प्रत्युत परस्पर विरोधी भी हैं।

आर्यसमाज के विषय में जवाहरलाल जी की अनभिज्ञता तो हम पहले ही प्रकट कर चुके हैं।

फ्रैंक मौरेस तो एक ईसाई होने के नाते हिन्दुओं के साथ अन्याय करता हुआ विचित्र प्रतीत नहीं होता। उसने अपने वक्तव्य में कहा है कि खलीफा के हट जाने से मुसलमानों का आन्दोलन निरर्थक हो गया और मन्त्री पदों के लोभ ने दोनों समुदायों में ईर्ष्या उत्पन्न कर दी। आप आगे लिखते हैं कि उग्र हिन्दू मतवालों ने सिर उठाया और हिन्दू महासभा का प्रथम अधिवेशन बनारस में हुआ।

जवाहरलाल जी ने मुसलमानों में प्रतिक्रियावादियों की बात लिखते हुए भी हिन्दुओं को नहीं छोड़ा। उनको भी रगड़ा चढ़ा दिया है। वास्तव में दोनों ने कांग्रेस की भूल के विषय में नहीं लिखा। नेहरू जी ने एक संकेत इस ओर किया है, परन्तु जब उस भूल के परिणामों के विषय में लिखने लगे तो उस भूल के अतिरिक्त बातें बनाने लगे। उन्होंने हिन्दुओं के साथ कभी भी न्याय नहीं किया।

यह हम जानते हैं कि जवाहरलाल जी के बाल्यकाल के और शेष जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के संस्कार ऐसे रहे हैं कि उनसे हिन्दुओं के साथ न्याय की आशा करनी व्यर्थ थी। इस पर भी यदि वे कुछ भी न्याय बुद्धि रखते, तब भी आशा की जा सकती थी कि वे कभी अपनी भूल को समझ सकते। एक बुद्धि-विहीन व्यक्ति जो केवल संस्कारों के बल पर काम करता हो, जीवनभर अपनी भूल को समझ नहीं सकता। यही बात जवाहरलाल जी के साथ हुई है।

:: 2 ::

मुसलमानों और हिन्दुओं के परस्पर सम्बन्धों के विषय में गांधी जी का व्यवहार कम अयुक्ति-संगत नहीं था। श्री जवाहरलाल जी इस विषय में गांधी जी के व्यवहार का ज्ञान इस प्रकार कराते हैं—

Long ago, right at the commencement of the non-co-operation or even earlier,. Gandhiji had laid down his formula for solving the communal problem. According to him, it could only be solved by goodwiil and the generosity of the majorty group and so he was prepared to agree to everything that the Muslims might demand. He wanted to win them over, not to bargain with them, with foresight and a true sense of values, he grasped at the reality...[102]

बहुत पहले, असहयोग आन्दोलन के आरम्भ होने पर अथवा उससे भी पहले गांधी जी ने साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने की एक योजना उपस्थित की थी। उनका कहना था कि यह समस्या सुलझाई जा सकती है, केवल बहुसंख्यकों की सद्‌भावना और उदारता से। अत: वे मुसलमानों की प्रत्येक माँग को मानने को तैयार थे। वे उनको अपने साथ ले लेना चाहते थे, वे सौदेबाजी करना नहीं चाहते थे। वे अपनी दूरदृष्टि से परिस्थिति की वास्तविक कीमत लगा रहे थे।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि गांधी जी की सद्‌भावना फलीभूत नहीं हुई। जहाँ तक हिन्दुओं का सम्बन्ध है, असहयोग के दिनों में मुसलमानों की सब प्रकार की अनियमित बातें सहन की गईं। उस समय की हिन्दुओं की सहनशीलता सराहनीय थी। सार्वजनिक सभाओं को मध्य में ही इस कारण रोक दिया जाता था कि मुसलमानों की नमाज़ का वक्त हो गया है। हिन्दुओं का बड़ा से बड़ा नेता भी व्याख्यान देना बन्द कर देता था, जिससे सभा में उपस्थित अथवा अनुपस्थित मुसलमान नमाज़ पढ़ सकें।

इस पर भी खिलाफ़त में सफलता के धूमिल होते ही मुसलमानों ने हिन्दुओं से झगड़े करना और उनको लूटना-पीटना आरम्भ कर दिया। मोपला फसाद चिरकाल तक स्मरण रहने वाली बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन दिनों मुसलमानों का दिमाग कहाँ उड़ रहा था, वह एक घटना से स्पष्ट हो सकता है।

साईमन कमिशन की नियुक्ति के समय हिन्दुस्तान के सैक्रेटरी ऑफ स्टेट, लॉर्ड बर्कन हेड ने इंग्लैंड की पार्लियामेन्ट में भाषण करते हुए यह कहा था कि उसे साईमन कमिशन में नियुक्ति के लिए कोई योग्य हिन्दुस्तानी दिखाई नहीं देता। इस कटु वाक्य के दो परिणाम हुए। एक तो यह कि हिन्दुस्तान की सब पार्टियों ने इस कमिशन का बहिष्कार किया और दूसरे, एक सर्वदलीय कॉन्फ्रेन्स इस उद्देश्य से नियुक्त की गई कि हिन्दुस्तान में स्वराज्य का एक संविधान बनाया जाए।

इस कॉन्फ्रेन्स ने एक रिपोर्ट तैयार की। उस रिपोर्ट को तैयार करने में जिन्ना भी सम्मिलित थे, परन्तु जब रिपोर्ट को अंतिम स्वीकृति देने का समय आया तो मुस्लिम लीग और उसके नेता जिन्ना ने इसमें अड़ंगा लगा दिया।

श्री के.एम. मुंशी इस विषय में लिखते हैं—

When, in 1929, the Nehru Report was being convassed, Jinnah changed his ground and in a special session of the Muslim League (March 28, 1929) formulated his 14 points, which were in fact 15.

He offered to join the Hindus in the struggle for freedom if the Muslims were conceded master-race privileges *qua* the Hindus! He envisaged a federation of Hindu and Muslim majority provinces and effective representation of the Muslims; separate electorates; the right of a community to veto a resolution in the legislature if 3/4th of the members of that community in the legislature exercised it; adequate share to the Muslims in the services and self-governing bodies; 1/3rd membership for the Muslims in all cabinets—central and provincial; 1/3rd membership for the Muslims in the Central Legislature unalterability of the Consitution unless every State agreed; joint electorates as a remote contingency. If these points were conceded, there would have been neither a democratic society nor

जब 1929 में नेहरू रिपोर्ट को पास करने का यत्न किया जा रहा था, जिन्ना ने अपना व्यवहार बदल दिया। 28 मार्च 1929 को मुस्लिम लीग के एक विशेष अधिवेशन में एक चौदह सूत्रीय प्रस्ताव, जो वास्तव में पंद्रह सूत्रीय था, पारित कर दिया गया।

उसने स्वराज्य प्राप्ति के संघर्ष में हिन्दुओं के साथ सम्मिलित होने के लिए यह शर्त रख दी कि हिन्दुओं के मुकाबले में मुसलमानों की एक बड़ी जाति के अधिकार दिए जाएँ। उसका विचार था कि हिन्दू और मुसलमानों के बहुसंख्यक प्रान्तों का एक संयुक्त राज्य बनाया जाए, जिसमें मुसलमानों को प्रभावी अधिकार हों। उनके लिए पृथक् प्रतिनिधित्व हो। उनके समुदाय को अधिकार हो कि वे किसी भी प्रस्ताव को रद्द कर सकें, यदि उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

equality of citizenship, not even communal harmony.

Every time the Sibylline Books were offered the books became fewer and the price demanded higher.[103]

समुदाय के तीन-चौथाई सदस्य उसे न पसन्द करें। नौकरियों में मुसलमानों को पर्याप्त अधिकार हों और सब शासकीय संस्थानों में उनको विशेष अधिकार मिलें। मन्त्रिमंडलों में मुसलमानों का एक-तिहाई प्रतिनिधित्व अवश्य हो। केन्द्रीय असैम्बली में एक-तिहाई मुसलमान अवश्य हों। बिना सब प्रान्तों के स्वीकार किए संविधान में परिवर्तन न हो सके। संयुक्त मतदाता सूची चिरकाल तक नहीं होगी।

यदि ये सूत्र स्वीकार कर लिये जाते तो न तो प्रजातन्त्रात्मक पद्धति होती न ही नागरिकता में समानता। साम्प्रदायिक ऐक्य भी न हो सकता।

ज्यों-ज्यों सिर झुकाया गया, त्यों-त्यों माँग बढ़ती गई।

महात्मा जी ने अल्पमत वालों की बात माननी आरम्भ की थी, जब 1916 में पृथक् मतदाता सूची मानी गई थी। बारह वर्ष उपरान्त 1928 में उस नरमी की यह प्रतिक्रिया हुई थी।

प्रजातन्त्रात्मक पद्धति में संख्या एक विशेष शक्ति है। विशेष रूप में जब कोई समुदाय अपने लिये विशेष अधिकार और विशेष प्रतिनिधित्व की माँग करे। यह बात मुसलमान स्वेच्छा से अथवा अंग्रेज़ों के कहने पर 1906 से माँग रहे थे। साथ ही छोटी जाति के हिन्दुओं और आग़ाखानी हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए छल-बल का प्रयोग होने लगा था। हिन्दुओं में केवल आर्यसमाजी थे, जिन्होंने मुसलमानों की इस चाल का विरोध करना चाहा। इस विरोध के कारण उनके कई नेताओं की हत्याएँ भी की गईं। श्रद्धानन्द की हत्या इसी शृंखला में एक है। इस पर भी जब 1921 में हिन्दू-मुसलमानों में ऐक्य का नारा लगाया गया, तब आर्यसमाजियों ने अपने मज़हब के प्रचार को असहयोग के आन्दोलन के दिनों में रोक दिया था। जब मोपलों ने सहस्रों स्त्री-पुरुषों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया तो आर्यसमाजियों ने गांधी जी की नीति को गलत समझ, मालाबार में बलपूर्वक बनाए मुसलमानों को पुन: हिन्दू मज़हब में लाने का यत्न किया। इसके पश्चात् उन्होंने अपना सामान्य शुद्धि का काम आरम्भ कर दिया। हिन्दू महासभा का इससे कोई सम्बन्ध नहीं था।

हमारा यह विचारित मत है कि कांग्रेस द्वारा मुसलमानों के लिए पृथक् मतदाता सूची और पृथक् प्रतिनिधित्व स्वीकार करना ही देश में विशाल फूट का कारण हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें युक्ति यह है कि सरकार ने इसे 1909 में स्वीकार किया था। इस पर भी यदि कांग्रेस इसे स्वीकार न करती तो सरकार भी इससे अगला पग उठाने का साहस न करती।

इसके अगले पग थे नौकरियों में तथा पदवियों में योग्यता को एक ओर रखकर, मुसलमानों की संख्या नियत करना। इस प्रकार से मुसलमानों को स्वराज्य आन्दोलन में लाने और इनको इस आन्दोलन से पृथक् रखने के लिए मुसलमानों की बोली होने लगी थी। जब कांग्रेस उतना मान गई, जितना सरकार ने 1909 में मुसलमानों को दिया था, तब सरकार ने नौकरियों और पदवियों में उनकी संख्या नियत कर देने का प्रस्ताव कर दिया। यह भी कांग्रेस ने सन् 1927 में माना तो सरकार ने मुसलमानी सूबों की संख्या बढ़ा देने का लोभ प्रस्तुत कर दिया। यह 1928 में किया गया। यह कांग्रेस के स्वराज्य दल ने स्वीकार कर लिया और उन्होंने केन्द्रीय असैम्बली में सरकार के साथ वोट दिया। इस पर मुस्लिम लीग ने जिन्ना के नेतृत्व में अपनी चौदह माँगें उपस्थित कर दीं। गांधी जी ने 1931 में लंदन की गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स में इनको मानने की इच्छा प्रकट की तो सरकार ने उनके लिए पृथक् देश स्वीकार करने की इच्छा प्रकट कर दी।

इस समय सिखों ने गांधी जी को अपनी इच्छा कार्यान्वित करने में रोका अन्यथा सरकार पाकिस्तान तो तब ही मान जाती। हिन्दुस्तान के स्वराज्य को दूषित करने की योजना तो बन ही चुकी थी।

श्रीयुत् मुन्शी इस विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

Inevitably the communal problem pushed itself to the forefront at the Round Table Conference. Gandhiji was inclined to give what he called a blank cheque to Muslims; but this was not relished by the Hindu and Sikh elements. According to Sardar Ujjal Singh, Mahatmaji had informal meetings to which selected delegates were invited for settling the minorities problem. Discussions were held on the various points in disqute on the understanding that joint electorates with reservation of seats would be acceptable to all. When agreement was almost arrived at on most of the points, Mr. Jinrrah came out with a clear declaration that the Muslims were not prepared to accept joint

जैसीकि आशा थी साम्प्रदायिक समस्या सामने आई। गांधी जी (गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स के समय) मुसलमानों को कोरा चैक देने के लिए तैयार हो गए थे परन्तु सिख और हिन्दू प्रतिनिधियों को यह बात पसन्द नहीं थी। सरदार उज्जल सिंह के अनुसार "जब कुछ प्रतिनिधियों की अनौपचारिक बैठक में अल्पसंख्यकों, की समस्या पर विचार होने लगा और भिन्न-भिन्न बातों पर विचार करते हुए जब सबने संयुक्त मतदाता सूची, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

electorates........ Further discussions were discontinued...."

Sardar Ujjal Singh and other Sikh delegates sensed the danger of Gandhiji starting negotiations with the Muslims alone, ignoring other minorities. He wrote to Gandhiji reminding him of the latter's assurances that no settlement of the communal problem would be countenanced unless it was acceptable to the Sikhs. Gandhiji wrote back to Sardar Ujjal Singh on October 2, 1931. "........It is quite correct that I have personally said that I would give a blank cheque to the Mussalmans regarding their demands, but such a statement has added to it a similar assurance to the Sikhs; and, for that matter, all other communities...."[104]

समुदायों के लिए नियत स्थानों की बात पर लगभग सहमति प्रकट की तो उस समय जिन्ना ने स्पष्ट रूप में कह दिया कि मुसलमान संयुक्त मतदाता सूची मानने को तैयार नहीं हैं। इस पर विचार चल नहीं सका।

सरदार उज्जल सिंह और अन्य सिख प्रतिनिधियों को संदेह हुआ कि गांधी जी मुसलमानों से पृथक् में बातचीत करने वाले हैं और दूसरे अल्पमत वालों की अवहेलना करने वाले हैं, तब उन्होंने गांधी जी को स्मरण कराया कि साम्प्रदायिक समस्या का हल तब तक नहीं माना जाएगा, जब तक सब सिख नहीं मानेंगे। गांधी जी ने सरदार उज्जल सिंह को 2 अक्तूबर 1931 को लिखा था—यह ठीक है कि मैंने निजी रूप में मुसलमानों को कोरा चैक देने की बात कही है, परन्तु यह प्रस्ताव सिखों और अन्य सब अल्पमत समुदायों के लिए भी है।

यह स्पष्ट है कि गांधी जी का यह कोरा चैक भी जिन्ना और मुसलमानों ने वापस कर दिया था। क्यों ? कदाचित् उस समय ही मुसलमानों को पृथक् देश देने की बात हो गई थी।

इस सौदेबाजी में सम्मिलित होना ही मूर्खता थी। 1916 से बोली आरम्भ हुई। गांधी इत्यादि बिना किसी प्रकार की शक्ति रखते हुए मुसलमानों को खरीदने को चल पड़े थे। शक्ति अंग्रेज़ के पास थी और वे बाजी जीत रहे थे।

गांधी जी समझते थे कि केवल जनता की हुल्लड़बाज़ी से वे अंग्रेज़ों को एक ओर तथा मुसलमानों को दूसरी ओर प्रभावित कर अपने पक्ष में कर लेंगे। हुल्लड़बाज़ी का प्रभाव मुसलमानों पर तो यह हुआ कि उन्होंने अपने में भी हुल्लड़बाज़ी उत्पन्न की। अंग्रेज़ तो उनके पक्ष में थे ही। इस कारण उनकी हुल्लड़बाज़ी हिन्दुओं के खिलाफ थी। 1920 से ही गांधी जी का आन्दोलन हुल्लड़बाज़ी का था। यह हम बता चुके हैं कि कैसे जनसाधारण में अपनी ख्याति के बल पर गांधी जी देश के सब नेताओं के विचारित मत के विरोध में एक बच्चों का-सा आन्दोलन चला बैठे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विषय में मुंशी जी इस प्रकार लिखते हैं—

The Nagpur session of the Congress in 1920, switched over to Gandhian aims and means which, we felt sure, would at the end lead the country to terroristic methods. But the bulk of the politically-minded Hindus were with Gandhiji. Even C.R. Dass, who had come determined to oppose Gandhiji, surrendered to him. The Congress session looked less like a political body than a religious gathering celebrating the advent of a Messiah. Jinnah (and, if my memory is right, also Malaviyaji, and Khapardeji) stood up in the jeering assembly and opposed the official resolution. After Nagpur, led by Jinnah, about twenty of us left the Congress.

When Gandhiji forced Jinnah and his followers out of the Home Rule League and later the Congress, we all felt, with Jinnah, that a movement of a unconstitutional nature, sponsored by Gandhiji with the tremendous-influence he had acquired, over the masses, would inevitably result in widespread violence, barring the progressive development of self-governing institutions based on a partnership between educated Hindus and Muslims. To generate coercive power in the masses would only provoke mass conflict between the two communities, as in fact it did. With his keen sense of realities Jinnah firmly set his face against any dialogue with Gandhiji on this point.[105]

1920 के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में कांग्रेस गांधी के विचारों की हो गई थी। हमें विश्वास था कि इस विचार परिवर्तन से अन्त में देश आतंकवादी उपायों पर जा पहुँचेगा। बहुसंख्यक हिन्दू गांधी जी के साथ थे। सी.आर. दास भी, जो गांधी जी का विरोध करने के लिए कृत निश्चय वहाँ पहुँचे थे उनके सामने नतमस्तक हो गए। कांग्रेस का अधिवेशन एक राजनीतिक मंच के स्थान पर एक मज़हबी मजमा प्रतीत होता था जो किसी अवतार के स्वागत के लिए आया हो। जिन्ना (और यदि मैं भूल नहीं करता) तो मालवीय जी तथा खापर्डे जी भी विरोध करने के लिए खड़े हुए और भीड़ उनकी हँसी उड़ाती रही। नागपुर अधिवेशन के उपरान्त जिन्ना और हममें से बीस के लगभग अन्य, कांग्रेस छोड़ गए।

जब गांधी जी ने जिन्ना को कांग्रेस से और होम-रूल लीग से निकलने पर विवश कर दिया, हम सब जिन्ना के साथ यह अनुभव कर रहे थे कि गांधी जी ने अपने प्रभाव से, जो उन्होंने जनसाधारण पर प्राप्त कर लिया है, एक ऐसा आन्दोलन चलाया है, जो असंवैधानिक है और जो विस्तृत हिंसा में बदल जाएगा। यह उन प्रजातन्त्रात्मक संस्थानों के पनपने में बाधक होगा जो बुद्धिशील हिन्दू और मुसलमानों के साझे प्रयास से बनने वाले हैं। जनसाधारण द्वारा दूसरों को विवश करने की शक्ति उत्पन्न करना देश के दो बड़े समुदायों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संघर्ष उत्पन्न कर देगा। सत्य ही ऐसा हुआ भी। जिन्ना अपनी यथार्थवादी दृष्टि से गांधी जी के साथ बात करने से भी इन्कार करता रहा था।

आगे श्री मुंशी लिखते हैं—

Jinnah, however, warned Gandhiji not to encourage the fanaticism of the Muslim religious leaders and their followers. Indeed he was not the only person who foresaw danger in the Khilafat Movement. Srinivasa Shastri wrote to Sir P.S. Sivaswami Aiyar : "....I fear the Khilafat Movement is going to lead us to disaster."[106]

जिन्ना ने गांधी जो को मतान्ध मुसलमान नेताओं को भड़काने से सावधान भी किया था। वास्तव में वह अकेला नहीं था जिसने यह भय अनुभव किया हो। श्रीनिवास शास्त्री ने शिवास्वामी आयंगर को भी लिखा था—'मुझे भय है कि खिलाफ़त आन्दोलन हमें विनाश की ओर ले जाएगा।'

मतान्ध मुसलमानों से सहयोग का परिणाम तुरन्त ही उत्पन्न हुआ। श्री मुंशी आगे लिखते हैं—

Even during their honeymoon, with the Congress, the Ali Brothers were not slow to shout from the house-tops that the Muslims were a master-race *que* the Hindus. Muhammad Ali declared : "Yes according to my religion and creed I do hold an adulterous and a fallen Mussalman to be better than Mr. Gandhi.[107]

उन दिनों, जब अभी कांग्रेस और अली भाइयों में सहयोग चल ही रहा था, अली भाई मकान की छत पर खड़े होकर कह रहे थे कि हिन्दुओं के मुकाबले में मुसलमान एक राजसी जाति है। मुहम्मद अली ने कहा था कि मेरे मत के अनुसार मेरा विश्वास है कि एक फाशा तथा एक पतित मुसलमान भी गांधी जी से अच्छा है।

इन्हीं दिनों में गांधी जी कहा करते थे, मैं अली भाइयों की जेब में हूँ।

अतएव हमारा यह विचारित मत है कि कांग्रेस की नीति जिसे गांधी जी ने उत्साहित किया था, हिन्दू-मुसलमान झगड़े में बढ़ावा देने वाली सिद्ध हुई थी। ठीक और गलत, सत्य और झूठ, धर्म और अधर्म, ये बातें भीड़ के हो-हल्ले से सिद्ध नहीं होतीं। सत्य के आधार में कुछ वस्तुस्थिति होनी चाहिए। किसी आततायी को भला कह देने से वह भला नहीं हो जाता। इससे आततायी अपने अनाचार को ठीक मानने लगता है।

परन्तु इस सबमें दोष हिन्दू मन का है। हिन्दू मन सदियों से सुगम मार्ग स्वीकार करने (escapism) का अभ्यस्त हो चुका है। उस विकृत मन के नेता ही गांधी जी थे। अत: गांधी जी का जवाहरलाल जैसे व्यक्ति को, अनेक बुद्धिमानों से आगे कर बैठा देना भी हिन्दू भ्रान्त मन का ही परिणाम था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 3 ::

यों तो हिन्दू-मुसलमानों में झगड़े तब से हो रहे हैं, जब से मुसलमानों ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया था। इस्लामी राज्य में इस्लाम को आगे किया जाता था, इसलिए कि आक्रमण करने वाले मुसलमान थे और हिन्दुस्तान गैर मुसलमानों का देश था। उनको इस्लाम के जिहाद का नारा लाभप्रद सिद्ध हो रहा था। पीछे, जब मुसलमान विदेशियों का राज्य स्थापित हो गया और बाहर से आए मुसलमान राज्य कार्य चलाने में अपर्याप्त सिद्ध हुए तो उन्होंने यहाँ के लोगों को बल, छल, धन और जन के लोभ से इस्लाम में लाने का यत्न किया। यह यत्न औरंगजेब के राज्य में सबसे प्रबल हो गया। जब अंग्रेज़ यहाँ आए तो इस्लाम का नारा ढीला पड़ने लगा था, इस पर भी वह चलता था। सात सौ वर्ष तक हिन्दुओं को राज्य से वंचित रखने के कारण मुसलमानों के मन में मिथ्या उच्च भावना उत्पन्न हो गई थी। उनका हिन्दुस्तान में इतने काल तक राज्य करना, उनकी किसी श्रेष्ठता के कारण नहीं था, वरन हिन्दुओं की कुछ मिथ्या प्रवृत्तियों के कारण था। इनका उल्लेख हम पुस्तक की भूमिका में कर आए हैं। वे प्रवृत्तियों वे नहीं थीं जिनका उल्लेख कुछ हिन्दू नेता और गांधी जी भी करते थे। वे इतनी सामाजिक नहीं थीं जितनी मज़हबी। स्वामी दयानन्द ने उनका ठीक निदान किया था। वे प्रवृत्तियाँ एक बहुत बड़ी सीमा तक मज़हबी और मानसिक थीं। संक्षेप में उनका सम्बन्ध वेदान्तवाद, वैष्णववाद और वैराग्य की भावना के साथ है। 'संसार मिथ्या है' का विचार मुख्य रूप में हिन्दुओं के पतन का कारण बना था। इसके साथ-साथ असीम अहिंसा और समत्व बुद्धि का मिथ्या अर्थ विनाशकारी सिद्ध हुए।

अंग्रेज़ों ने हिन्दुओं को अपने दोषों की ओर ध्यान करते देखा तो अपनी रक्षा के लिए हिन्दुओं को दुर्बल करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। एक ओर तो उन लोगों के प्रयास का विरोध करना आरम्भ किया जो हिन्दू जाति में उक्त दोषों को दूर करने का यत्न कर रहे थे। दूसरी ओर मुसलमानों को अपना मित्र बनाने के लिए जोड़-तोड़ आरम्भ होने लगा। हिन्दू शास्त्रों के ठीक ज्ञान को मिटाने के लिए शास्त्रों के मिथ्या अर्थ करने वालों को वज़ीफ़े और विश्वविद्यालयों में बड़ी-बड़ी नौकरियाँ दी गईं और उनसे उन मिथ्या सिद्धान्तों का विस्तृत प्रचार कराया गया, जिनके कारण हिन्दुओं का ह्रास हुआ था।

मुसलमानों को हिन्दुओं के विपरीत करने के लिए क्या-क्या प्रपंच रचे गए, इनका संकेत भी हम संक्षेप में ऊपर कर आए हैं। अंग्रेज़ों की इस सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रक्रिया में गांधी जी और उनके प्रभाव में कांग्रेस सहायक हो गई। परिणाम यह हुआ है कि भारत के एक भाग में इस्लामी राज्य स्थापित हो गया और शेष हिन्दुस्तान में जिसे अब भारत कहते हैं, पुनः मुसलमान वही माँग करने लगे हैं, जो संयुक्त हिन्दुस्तान में सन् 1906 में करनी आरम्भ की थी। यही बात फिर आरम्भ हो रही है जो सन् 1940 से आरम्भ होकर 1946-47 तक चली थी।

आज भी गांधी के विचार के कांग्रेसी ऐसी स्थिति में हैं जिसमें वे वही कुछ कर सकते हैं, जो उन्होंने तब किया था। यही कारण है कि हम यह सबकुछ लिख रहे हैं। तब भी हिन्दू-मुसलमान फसाद, मुसलमान आरम्भ करते थे और कांग्रेसी हिन्दुओं को दोषी मानते थे।

इसका एक उदाहरण हम श्री मुंशी जी की पुस्तक में से देना चाहते हैं। दिसम्बर 1940 में मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर के अधिवेशन में पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पारित किया। श्री मुंशी लिखते हैं—

Soon after, its leaders engineered communal riots, where-ever they could, these at Dacca, Ahmedabad and Bombay being the most brutal.

The Pakistan riot in Ahmedabad was orgiastic. The local Hindus, a very peaceful community, looking all their life to Gandhiji and the Congress for leadership, were at the mercy of the rioters. In this situation, Bhogilal Lala, a leading Congressman of the city sought Gandhiji's advice as to what should be done by Congressmen in the terrible situation, which the Hindus were facing. Gandhiji advised him that Congressmen should not, directly or indirectly, associate themselves with *akhadas* (Indian style gymnasia where training in self-defence was given); those Congressmen who favoured self-defence through violence should leave the Congress.

Gandhiji's letter to Bogilal Lala was published on May 25, 1941. The next day I wrote to Gandhiji........ that Hindus should not be prevented from defending themselves even by resorting to violence, when their women-folk, children and homes were

इसके तुरंत ही पीछे इस (मुस्लिम लीग) के नेताओं ने, जहाँ-जहाँ भी उनसे हो सका, बलवे कराने आरम्भ कर दिए। ढाका, अहमदाबाद, बम्बई के बलवे तो अधिक भयंकर हुए थे।....

अहमदाबाद में पाकिस्तानी बलवे संयोजित थे। स्थानीय हिन्दू एक अति शान्तिमय समुदाय था। वह जीवनभर गांधीजी और कांग्रेस को अपना नेता समझता रहा था। अब हिन्दू, बलवाइयों की दया पर हो गए थे। ऐसी परिस्थिति में एक प्रमुख कांग्रेसी भोगीलाल लाला ने गांधी जी से पूछा कि कांग्रेस इस भयंकर स्थिति में क्या करे? गांधी जी ने उसे राय दी कि कांग्रेसियों को किसी भी अवस्था में अखाड़ों से सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए, जहाँ स्वरक्षा की शिक्षा दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the victims of planned communal frenzy.

....

He (Gandhiji) advised me to see him....

However, he advised me that, if I felt an honest urge to help organize such resistance, I should do so by going out of the Congress.[108]

जाती हो। अखाड़ों से अभिप्राय उन शिक्षा केन्द्रों से है, जहाँ स्वरक्षा की शिक्षा दी जाती है।) गांधी जी ने लिखा था कि उन कांग्रेसियों को, जो हिंसा द्वारा स्वरक्षा को पसन्द करते हैं, कांग्रेस छोड़ देनी चाहिए।

गांधी जी का पत्र, जो उन्होंने मोतीलाल को लिखा था, वह 25 मई 1941 को छप गया। अगले ही दिन मैंने (श्री मुंशी ने) गांधी जी को लिखा कि हिन्दुओं को, जब उनकी स्त्रियाँ और बच्चे तथा घर, संगठित बलवाइयों के भय में हों तो अपनी रक्षा में हिंसा का प्रयोग करने से मना न किया जाए....

....गांधी जी ने मुझे मिलने के लिए बुलाया....उन्होंने मुझे यह राय दी कि यदि मैं ईमानदारी से अनुभव करता हूँ कि हमें हिंसात्मक विरोध करना चाहिए तो मैं कांग्रेस छोड़ दूँ।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि हिन्दू लोग गांधी जी की राय नहीं मानते तो क्या होता? क्या स्वराज्य न मिलता? क्या हिन्दुस्तान में गृह-युद्ध आरम्भ हो जाता? इस गृह-युद्ध में अंग्रेज़ क्या भाग लेते? क्या अब भी हिन्दुस्तान इंग्लैंड के अधीन होता? इस और इसी प्रकार से कई प्रश्न आज पूछे जा सकते हैं। राजनीति में इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर निश्चय से नहीं दिया जा सकता। इस पर भी दो बातें निश्चित हैं। एक तो यह कि मुसलमानों की विशेष अधिकारों की भूख उनको अधिकार देने से बढ़ी थी। इसको कोई गलत नहीं कह सकता। यदि हिन्दू नहीं मानते तो सरकार को अधिक और अधिक लोभ देने की आवश्यकता न पड़ती। इससे यह परिणाम निकल सकता है कि जब भी स्वराज्य मिलता, मुसलमानों की माँग उतनी अधिक न होती, जितनी 1947 में हो गई थी। यह बात तो सर्वमान्य है कि मुसलमानों की देश-विभाजन की माँग सर्वथा अनुचित थी। यह माँग स्वीकार नहीं करनी चाहिए थी। इससे हिन्दुओं की स्थिति अधिक सुदृढ़ होती।

दूसरा प्रश्न है कि क्या स्वराज्य नहीं मिलता, यदि हिन्दू और मुसलमानों में गृह-युद्ध हो जाता? यदि तो यह सिद्ध हो जाए कि हिन्दुस्तान और अन्य उपनिवेशों में स्वराज्य गांधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन के कारण मिला है, तब तो उक्त प्रश्न का उत्तर यह है कि देश में गृह-युद्ध होने से स्वराज्य नहीं मिलता और आज भी यहाँ अंग्रेज़ शासन होता। परन्तु यह बात नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान से कम सामर्थ्यवान, कम ज्ञानवान, कम संख्या वाले देश भी अंग्रेज़ों से स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुके हैं। यह बात निर्विवाद है कि अंग्रेज़ साम्राज्य, जो इतना बड़ा था कि जिस पर कभी सूर्य अस्त नहीं होता था, आज कहीं दिखाई नहीं देता और इस साम्राज्य के सब उपनिवेशों में गांधी जी के सत्याग्रह नहीं चले थे। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए यह साहस से कहा जा सकता है कि गांधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलन के बिना भी भारत स्वतन्त्र होता।

जहाँ तक गृह-युद्ध की बात है, यह कहा जा सकता है कि उससे भय करना व्यर्थ था। जब मुसलमान देश के शासक थे, तब तो वे गृह-युद्ध कर नहीं सके थे। भला अब वे करते तो क्या तब से अधिक सफल होते?

इतिहास के आधार पर यह दावे से कहा जा सकता है कि यदि हिन्दू अर्थात् राष्ट्रीय हिन्दुस्तानी, अराष्ट्रवादी मुसलमानों के सामने झुककर उनकी अराष्ट्रीय माँगों को स्वीकार न करते तो गृह-युद्ध कभी न होता। जो कुछ 1936 और 1947 में हुआ, वह इस कारण ही हुआ कि देश के मान्य नेता मुसलमानों के दोषों को छिपाते रहे थे और मुसलमानों की हिंसात्मक कार्यवाही का विरोध करने वाले हिन्दुओं और राष्ट्रीय तत्वों को देश के शत्रु घोषित करते रहे थे।

हमारे विचारों में भूल इसी बात में हुई है कि हिन्दू राजनीति से सर्वथा अनभिज्ञ और मिथ्या इतिहास के ज्ञाता होने से, गलत नेताओं को स्वीकार कर बैठे थे।

आज कुछ कांग्रेसियों ने अपने पिछले संस्मरण छपवाए हैं। उनमें श्री जयकर, श्री खापर्डे, श्री मुंशी और श्री गाडगिल मुख्य हैं। ये सब लोग आज गांधी जी की नीति को अशुद्ध बताते हैं, परन्तु एक समय ये गांधी जी के प्रत्येक कार्य में सहायक थे। और तो और श्री जवाहरलाल जी भी गांधी की नीति के विरोधी रहे, परन्तु गांधी जी के जीवन काल में उनके नाम की डुग्गी पीटते रहे।

श्री नेहरू जी गांधी जी के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

....Gandhiji was delightfully vague on the subject, and he did not encourage clear thinking about it either. But he always spoke, vaguely but definitely, in terms of the under-dog, and this brought great comfort to many of us, although, at the same time, he was full of assurances to the top-dog also. Gandhiji's stress was nevear on the intellectual approach to a problem, but on character and piety.[109]

गांधी जी इस (स्वराज्य) के विषय में मज़े में अस्पष्ट रहते थे। वे स्वयं भी इस विषय में स्पष्ट नहीं थे, न ही वे दूसरों को इस विषय में विचारने पर उत्साहित करते थे। वे सदा अस्पष्टता से, परन्तु दावे से बात करते थे। वे जनसाधारण की भाषा बोलते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और इससे हम सबको सुख मिलता था। नेताओं को भी वे सदा विश्वास और भरोसा देते रहते थे। गांधी जी का बल कभी भी बौद्धिक नहीं होता था। वे सदा चरित्र और पवित्रता की बात ही करते रहते थे।

हास्यप्रद बात यह है कि गांधी जी को इस प्रकार अनभिज्ञ और भ्रमित मानते हुए भी श्री जवाहरलाल जी कभी भी गांधी जी से पृथक् नहीं हुए।

जिस देश के नेता और पढ़े-लिखे लोग विचारशील नहीं, अपने विचारों पर विश्वास नहीं रखते, और जिनमें न तो आत्मविश्वास है न ही अपनी विचारित बात कहने का साहस है, उस देश की यही दशा हो सकती थी, जो 1946-47 में हुई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

आत्म-श्लाघा

जवाहरलाल जी का स्वभाव था कि दूसरों की निन्दा करते रहो। उनके मस्तिष्क में ईमानदारी से मतभेद को स्थान ही नहीं था। जिसको वे पसन्द नहीं करते थे, वह सदा निन्दनीय होता था। श्री जवाहरलाल जी के विचार उन लोगों के विषय में, जिनसे उनका मत नहीं मिलता था, सदा ही बुरे रहे हैं। कुछ उदाहरण यहाँ वे दिए जाएँ तो पाठकों को ज्ञान हो जाएगा कि हिन्दुस्तानियों ने किनको अपना नेता मान रखा था और अभी भी मान रखा है।

यह हम ऊपर बता चुके हैं कि 1921 से पूर्व श्री जिन्ना कट्टर मुसलमान नहीं थे। वे मुसलमानों के लिए विशेष अधिकार और पृथक् प्रतिनिधित्व के पक्ष में नहीं थे, हमने यह भी बताया है कि जिन्ना साहब भी मतान्ध मुसलमान मुल्ला-मौलानाओं को राजनीतिक क्षेत्र में लाने के पक्ष में नहीं थे, परन्तु जब गांधी और उनके नेतृत्व में हिन्दुओं ने खिलाफ़त और मुल्ला-मौलानाओं को हिन्दुस्तान की राजनीति में अधिमान का स्थान दिया तो श्री जिन्ना ने कांग्रेस छोड़ दी। ऐसे समय, जिन्ना साहब के व्यवहार के विषय में जवाहरलाल जी क्या लिखते हैं यह ध्यान देने योग्य है—

श्री जिन्ना के विषय में इतना तो स्पष्ट है कि एक समय वह एक विशाल जन-समूह का नेता था। श्री नेहरू लिखते हैं—

...He felt completely out of his elements, in the khadi-clad crowd demanding speeches in Hindustani. The enthusiasm of the people outside struck him as mob-hysteria.[110]

वह भीड़ की हुल्लड़बाज़ी से नहीं डरता था। अन्तर केवल यह था कि वह भीड़ पर शासन करता था और कांग्रेसी नेता भीड़ के मनोद्गारों में बह रहे थे।

साधारण जनता के उद्गारों को भड़का कर अपनी नेतागिरी बनाए रखना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और स्वयं उन उद्‌गारों में बह कर यह समझना कि वे जनता का नेतृत्व कर रहे हैं, किसी प्रकार भी शोभा की बात नहीं है। गांधी जी ने एक वर्ष में स्वराज्य की आशा दिला कर सन् 1922 का आन्दोलन खड़ा किया था। यह आशा मिथ्या थी, और जब यह सफल नहीं हो सकी तो दोष जनता को देना कि वह नेताओं की आज्ञा का पालन नहीं कर सकी श्री जिन्ना को पसन्द नहीं था।

1931 में जब उसे आशा बन गई कि वह पाकिस्तान निर्माण कर सकेगा, तब वह स्पष्ट रूप में जन-जन का नेतृत्व उस दिशा में करने लगा। यह ठीक है कि उसने अंग्रेज़ से आश्वासन पाया होगा और इसमें उसकी सहायता का विश्वास भी उसको मिला होगा, परन्तु हिन्दुओं को विवश करने की स्थिति तो उसने ही पैदा की थी। अपने जातीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जब दूसरे देशों से सहायता लेना अपराध नहीं, तो मुसलमानों की, पाकिस्तान बनाने के लिए, अंग्रेज़ों से सहायता लेनी कैसे निन्दनीय हो गई? पाकिस्तान बनाना ठीक नहीं था। यह हम कहते हैं, परन्तु पाकिस्तान बनने को रोकने के लिए न तो हम अपने को तैयार कर सके, न ही हम किसी दूसरे को अपना सहायक बना सके। यह हमारी राजनीति की दुर्बलता ही थी।

यह नहीं कि हिन्दुओं में ऐसे लोग नहीं थे जो मुसलमानों और अंग्रेज़ों के इस गठजोड़ को समझते नहीं थे। ऐसे लोग थे, परन्तु गांधी जी और उसके मानस पुत्र निराधार बातों के लिए जनता को भड़काते हुए अपने पीछे लगा रहे थे और दूसरों को व्यर्थ की बातें कह जनता की दृष्टि में बदनाम कर, उनको नाकारा कर रहे थे।

हिन्दू स्वराज्य करने के लिए और वह भी शीघ्रातिशीघ्र उत्सुक थे। इस को प्राप्त करने का 'सुगम' उपाय बताकर लोगों को अपने पीछे लगा, और जो त्याग तथा तपस्या का मार्ग बताते थे, उनको दब्बू और पिछड़ा हुआ कह-कहकर जनता को पथभ्रष्ट कर ही कांग्रेसियों ने देश की वर्तमान अवस्था की थी।

श्री लाला लाजपतराय के विषय में जवाहरलाल जी इस प्रकार लिखते हैं—

He was usually considered an extremist in Indian Politics, but his general outlook was definitly constitutional and moderate. Force of circumstances and not choice or conviction had made him ally of Lokmanya Tilak and other extremists in the early days of the century....[111]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उद्धरण भी हम पहले दे आए हैं। हम विश्वास से कह सकते हैं कि जवाहरलाल जी इन शब्दों का अर्थ भी नहीं समझते थे। वे नरम और गरम विचार की मीमांसा तो समझते ही नहीं थे। एक वर्ष में स्वराज्य ले देना, कहना मात्र ही गरम दल का होना वे समझे थे। विद्वत्ता में लोकमान्य तिलक जी के चरणों में बैठने की भी बुद्धि न रखते हुए उनके विषय में लिखने बैठ जाना जवाहरलाल जी को ही शोभा दे सकता है।

नेहरूजी लाला लाजपतराय के विषय में भी लिखते हैं। 1926 में एक नेशनलिस्ट दल बना था। लाला लाजपतराय इस दल के एक मान्य नेता थे। जवाहरलाल जी इस दल के विषय में लिखते हुए लाला जी को लताड़ने का यत्न कर रहे हैं। वे लिखते हैं—

It is not so easy to understand Lala Lajpat Rai's adherence to this new party, though his inclination was also somewhat to the right as well as towards a more communal orientation. I had met Lalaji in Geneva that summer, and from our talks I had not gathered that he contemplated taking up an aggressive attitude against the Congress Party. How this happened, I have still no idea. But in the course of the election campaign. he made certain vague charges, which showed how his mind had been working. He accused the Congress leaders of intriguing with people outside India. He further accused them of some such intrigue in establishing a Congress branch in Kabul. I do not think he ever specified his charges or went into any details, in spite of repeated requests.

...I had myself been instrumental in getting the Kabul Committee affiliated..."[112]

यह समझना सुगम नहीं कि लाला लाजपतराय का इस नवीन दल के साथ सम्बन्ध कैसे बना। यद्यपि उनकी रुचि भी दक्षिणपंथियों और साम्प्रदायिकता के साथ थी। मैं लाला जी से जेनेवा में मिला था और उनके साथ मैंने बातचीत की थी। मुझे यह पता नहीं चला था कि वे कांग्रेस का इतना खुल कर विरोध करेंगे। यह किस प्रकार हो गया? मुझे आज तक समझ नहीं आया। 1926 के निर्वाचनों में आपने कांग्रेस पर अस्पष्ट आरोप लगाया था कि यह देश से बाहर के लोगों के साथ गठ-जोड़ (intrigue) कर रही है। उन्होंने यह भी आरोप लगाया था कि कांग्रेस ने काबुल में अपनी शाखा खोल कर कुछ साजिश करनी चाही है। मेरा विचार है कि उन्होंने आरोप की व्याख्या नहीं की

....मैंने स्वयं काबुल में एक कमेटी का कांग्रेस से सम्बन्ध बनाया था।

जवाहरलाल जी भला लाला जी को क्या समझते? वे तो मरण-पर्यन्त हिन्दुस्तान को ही नहीं समझ सके। यह सर्वविदित बात थी कि लाला जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यसमाजी थे। वे कांग्रेस की मुस्लिमपरस्ती की नीति को कभी पसन्द नहीं करते थे, वे हिन्दू होने और राष्ट्रवादी होने में अन्तर नहीं मानते थे। उनके मस्तिष्क में यह बात स्पष्ट थी कि हिन्दू कोई मज़हब नहीं। वे हिन्दुस्तान के रहने वाले तथा इसको अपनी मातृभूमि और पुण्यभूमि मानने वाले को हिन्दू मानते थे। यदि जवाहरलाल जी यह स्पष्ट बात, जो लाला जी के जीवन से प्रकट होती थी, नहीं जान सके, तो यह लाला जी का दोष नहीं था। वस्तुस्थिति यह है कि जवाहरलाल जी बिना अध्ययन किए, अथवा विषय का मनन किए लिख देते थे। जिस व्यक्ति ने सारा जीवन आर्यसमाज और हिन्दू संगठन के काम में व्यतीत किया हो, उसने यदि कांग्रेस का विरोध किया था, तो विस्मय करने की बात नहीं हो सकती थी।

यह बात निर्विवाद है कि काबुल में कांग्रेस की शाखा मौलाना मुहम्मद अली के अधीनत्व काल में खुली थी। उस समय रूस का धन हिन्दुस्तान में इसी मार्ग से आने लगा था। श्री एम.एन. राय, अफगानिस्तान की रूस के साथ सीमा पर बैठे हुए हिन्दुस्तान में कम्युनिज़्म के प्रचार का प्रबन्ध कर रहे थे।

यहाँ हम जवाहरलाल जी के विचार इस दल के नेता पंडित मदनमोहन मालवीय के विषय में भी लिख देना चाहते हैं। इससे जवाहरलाल जी के विषय में अधिक ज्ञान हो जाएगा। जवाहरलाल जी किसलिए इन माननीय नेताओं को छोटा कर प्रकट करना चाहते थे, यह हम दल के विषय में लिखते हुए स्पष्ट करेंगे। जवाहरलाल जी लिखते हैं—

...He was, and is, a supporter of the old orthodox order culturally, socially and economically; the Indian princes and the taluqadars, big zamindars consider him rightly as a benevolent friend. The sole change he desires, and desires passionately, is the complete elimination of foreign control in India. The political training and reading of his youth still influence his mind greatly, and he looks upon this dynamic revolutionary, post-war world of the twentieth century with the spectacles of a semi-static nineteenth century, of T.H. Green and John Stuart Mill and Gladstone and Morley and a three or four-thousand-years background of old Hindu culture and sociology. It is a curious

वे (पंडित मदनमोहन मालवीय जी) पुराने प्रथा पंथी विचारों के थे और हैं। राजनीति में, संस्कृति में, सामाजिक व्यवस्था में और आर्थिक दृष्टि से भी पुराने विचार रखते थे और रखते हैं। इस कारण राजे-महाराजे, ताल्लुकेदार और बड़े-बड़े ज़मींदार उनको ठीक ही भद्र मित्र मानते थे। वे केवल यह चाहते थे कि देश से विदेशीय शासन हट जाए। उनकी राजनीतिक शिक्षा और युवावस्था का अध्ययन, अभी भी उनके मन पर छाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

combination, bristling with contradictions, but he has an amazing confidence in his own capacity to resolve contradictions....

It was natural, therefore, for Malaviyaji not to join the Swaraj Party, which was too advanced politically for him and required a disciplined adherence to Congress policy.[113]

हुआ था और वे युद्धोपरान्त की चलायमान क्रांतिकारी बीसवीं शताब्दी की दुनिया को अर्ध-नेशनल उन्नीसवीं शताब्दी की ऐनक से देखते थे। वे वर्तमान को देखते थे टी.एच. ग्रीन, जान स्टुअर्ट मिल, ग्लैडस्टोन अथवा मौरले तथा आज से तीन-चार हज़ार वर्ष पुरानी हिन्दू संस्कृति और सामाजिकता की पृष्ठभूमि में। यह एक विचित्र संयोग था। महान विरोधों से भरा हुआ, परन्तु मालवीय जी समझते थे कि वे इन विरोधों को पार करने की सामर्थ्य रखते हैं।.... अत: यह स्वाभाविक ही था कि मालवीय जी स्वराज्य दल में सम्मिलित न हों। यह दल राजनीतिक विचार से अधिक उन्नत था और चाहता था कि कांग्रेसी नीति से नियंत्रित हो।

यह पूर्ण वाक्य जवाहरलाल जी की अज्ञानता और मिथ्या अभिमान का सूचक है। जवाहरलाल जी तीन दिन तक मास्को में रहकर अपने को युद्धोपरान्त की चलायमान क्रान्तिकारी राजनीति के पंडित समझने लगे थे।

जो दूसरों की पगड़ी उछाल रहा था, वह स्वयं क्या था, उसके विषय में एक विख्यात पत्रकार की सम्मति यहाँ लिख दी जाए तो अधिक उचित होगा। श्री जी.वी. देसानी, बम्बई के इलस्ट्रेटिड साप्ताहिक में लिखते हैं—

He had no gift of imagination or originality and he was no political dialectician. As politician he was rather the reproductive agent of people, socialists, rationalists, historians, economic writers or scientists—whose theories he had adopted, bearing the same relationship to them as an actor does to a play-wright.[114]

वे (जवाहरलाल जी) विचार-शीलता का गुण नहीं रखते थे, न ही इनमें किसी प्रकार की मौलिकता थी। वे राजनीति में तर्क करना नहीं जानते थे। राजनीति के विचार से वे तो जनता के, समाजवादियों के, उपपत्तिवादियों, इतिहासज्ञों अर्थशास्त्रियों, सायंसदानों के, जिनके सिद्धान्त वे पढ़े थे, पुनरावृत्ति मात्र थे। उनका उक्त प्रकार के विद्वानों से वही सम्बन्ध था, जो मंच पर नाटक करने वालों का नाटक लिखने वालों से होता है।

हम इसमें एक शब्द और जोड़ना चाहते हैं, वह है समाजवादियों, उपपत्तिवादियों इत्यादि शब्दों के पहले 'थर्ड रेट' का विशेषण जो कुछ यूरोप के अर्ध-शिक्षित सायंसदान, समाजवादी और राजनीतिज्ञों ने इनको बतलाया, वही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्होंने भारत के मंच पर अभिनीत कर दिया।

यह निर्विवाद है कि जवाहरलाल जी और उनके गुरु गांधी जी इतिहास के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे। हिन्दुस्तान के विषय में तो उनका ज्ञान लेशमात्र भी नहीं था। उनकी दृष्टि में भारतवर्ष का इतिहास अशोक से आरम्भ होता था और अकबर तथा औरंगजेब हिन्दुस्तान के बहुत बड़े शहंशाह हुए हैं। वे समझते थे कि मुग़ल काल हिन्दुस्तान के इतिहास में एक बहुत ही शानदार युग रहा है। इन लोगों से भला हिन्दुओं और हिन्दुस्तान की क्या भलाई हो सकती थी! गांधी जी के दो प्रिय विचार (fads) थे। एक यह कि सदा और सर्वथा अहिंसा का बर्ताव रखना और दूसरा यह कि विपक्षियों और अल्पमत वालों की बेहूदा से भी बेहूदा बात को मान जाना अहिंसा होती है। ये दोनों बातें इतिहास और बुद्धि से अस्वीकार करने योग्य हैं।

हिन्दू जीवन-मीमांसा में, जिसका गीता में स्पष्ट वर्णन है, हिंसा अहिंसा का झगड़ा नहीं है। इसमें धर्म-अधर्म के विषय में विचार किया गया है। अधर्म के विनाश के लिए सबकुछ क्षम्य है। हिन्दू विचारधारा में अल्पमत और बहुमत का भी विचार नहीं किया जाता। धर्म को ही सर्वोपरि माना है।

हमारा यह निश्चित मत है कि स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् भी जब तक अपने को उन्नत विचार वाले, चलायमान (dynamic), क्रांतिकारी राजनीतिज्ञ कहने वाले श्री जवाहरलाल जी की चलती रही और चलती रहेगी, तब तक यहाँ की अवस्था अत्यन्त लज्जास्पद और भययुक्त रही है और रहेगी। जवाहरलाल जी इंग्लैंड और अमेरिका को गालियाँ देते थे और रूस की प्रशंसा करते थकते नहीं थे। परन्तु जब चीन ने देश पर आक्रमण किया, तो न ये स्वयं उस आक्रमण को रोक सके और न ही रूस हिन्दुस्तान की सहायता के लिए आया। यदि उस आड़े वक्त पर किसी ने सहायता की थी, तो यह इंग्लैंड और अमेरिका ने की थी। ये चलायमान राजनीति के विद्वान् चौदह वर्ष में, अपने देश के तीन-चार लाख सैनिकों के हाथों में उन्नत प्रकार की बन्दूकें भी नहीं दे सके।

आज भारत की राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक दुर्दशा देखकर यह कहने में संकोच नहीं होता कि जवाहरलाल जी ने अपने से अनुभवी, विद्वान, वयोवृद्ध नेताओं की पगड़ी उछालने की नालायकी की थी।

मालवीय जी अथवा उनके विचार का कोई व्यक्ति यदि जवाहरलाल जी से आधे काल तक भी भारत का प्रधान मन्त्री रहा होता तो चीन अथवा पाकिस्तान का साहस ही न होता कि भारत की पुण्यभूमि पर पग धरता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाहरलाल जी संस्कृत का तो एक शब्द भी समझ नहीं सकते थे और लज्जा-विहीनों की भाँति शास्त्रों तथा उनमें लिखी नीति की निन्दा करने लगते थे। देश का दुर्भाग्य है कि जवाहरलाल जी के झूठे प्रचार से प्रभावित जनसाधारण उनके पीछे चल पड़ा था। उसका फल देश भोग रहा है। भारत जवाहरलाल जी के पीछे चलकर मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र मानने लगा है। और देश पर आई संकट-कालीन स्थिति एक स्थायी अवस्था हो गई है। 1962 से आरम्भ होकर आज 1969 आ गया है और यह हट नहीं सकती, जब तक जवाहर और गांधी की नीतियों वाली सरकार बदल नहीं जाती।

बहुत अभिमान से जवाहरलाल जी की पंचवर्षीय योजनाओं का उल्लेख किया जाता है। यदि यह कहा जाय कि पाकिस्तान जैसे थर्ड रेट देश की जातीय आय, भारत की आय से अधिक है, तो इन योजनाओं का भांडा फूट जाता है।

:: 2 ::

यह बात थी उन नेताओं की, जो राजनीति में सक्रिय कार्यकर्त्ता थे, परन्तु जवाहरलाल जी की भाँति विचार नहीं करते थे। अब ज़रा जवाहरलाल जी के विचार उन क्रांतिकारियों के विषय में भी पढ़ लें जो अपने क्रांतिकारी और देशभक्तिपूर्ण विचार और कार्य के कारण देश में आ नहीं सकते थे और विदेशों में रहने पर विवश हो रहे थे।

1926 में जवाहरलाल जी यूरोप गए थे और वहाँ स्विट्ज़रलैंड इत्यादि देशों में हिन्दुस्तानी क्रांतिकारियों से मिले थे। परन्तु उनकी अवस्था और विचारों से वे प्रभावित नहीं हुए। वे क्रांतिकारी राष्ट्रीयता का विचार लेकर वहाँ घूम रहे थे। और जवाहरलाल जी उन दिनों अन्तर्राष्ट्रीयता पर लट्टू हो रहे थे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा से आपकी भेंट जेनेवा में हुई थी। आप उनके विषय में लिखते हैं—

Shyamji had plenty of money, but he did not believe in spending it. He would even save a few cent, sometimes by walking instead of taking the tram....

....

Occasionally prominent Indians used to pass through Geneva. Those who came to the League of Nations were of the official variety, and Shyamji would not, of course, go

श्यामजी के पास बहुत रुपया था, परन्तु वे रुपया व्यय करने में विश्वास नहीं करते थे। वे कुछ पैसे बचाने के लिए ट्राम में जाने के स्थान पैदल जाना पसन्द करते थे।

कभी-कभी विख्यात हिन्दुस्तानी जेनेवा आते थे। इनमें जो लीग ऑफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

anywhere near them. But the Labour Office sometimes brought non-officials of note, even prominent Congressmen, and Shyamji would try to meet them. It was interesting to watch their reactions to him. Invariably they felt uncomfortable, and tried to avoid him in public, and excused themselves, whenever they could, in private. He was not considered a safe person with whom to be associated or seen with.

....He was a relic of the past, and had really out-lived his day.[115]

नेशन्स के सम्बन्ध से आते थे, वे सरकारी किस्म के आदमी होते थे। श्यामजी उनके साथ नहीं मिलते थे। हिन्दुस्तान का श्रम विभाग कभी-कभी गैर सरकारी व्यक्तियों को भी भेज देता था। उनमें कभी विख्यात कांग्रेसी भी होते थे श्यामजी इनसे मिलते थे। यह जानना रुचिकर होगा कि वे इनके विषय में क्या विचार करते थे। कहा जा सकता है कि बिना अपवाद के वे प्रत्यक्ष में तो उनसे बचते थे और छुपकर उनसे न मिलने के लिए क्षमा माँगते थे। श्यामजी भूतकाल की एक स्मृति मात्र थे और अपने काल के बचे हुए चिह्न थे।

इसी प्रकार जवाहरलाल जी एक अन्य व्यक्ति राजा महेन्द्र प्रताप के विषय में लिखते हैं : मैं तब और अब भी समझता हूँ कि वे एक मजेदार आशावादी थे जो बिल्कुल आकाश में उड़ते थे और, वास्तविकता से सम्बन्ध रखना नहीं चाहते थे।

पैरिस में जवाहरलाल जी मैडम कामा से भी मिले। यह एक पारसी क्रांतिकारी स्त्री थी। इसकी रूप-रेखा जवाहरलाल जी को पसन्द नहीं आई। ये मौलवी हबीबुल्ला से भी मिले। यह वह आदमी था, जिसने पाकिस्तान के विचार को जन्म दिया था। यह आदमी जवाहरलाल जी को योग्य प्रतीत हुआ। मोलवी बर्कत उल्लाह से भी आपकी भेंट हुई। जवाहरलाल जी इसको मज़ेदार बूढ़ा (delightful old) आदमी लिखते हैं। और भी बहुत-से आदमी आपसे मिले। उन सबके विषय में जवाहरलाल जी लिखते हैं—

I must say that I was not greatly impressed by most of the Indian political exiles that I met abroad, although I admired their sacrifice, and sympathised with their sufferings and present difficulties, which are very real...

Of the few I met, the only persons who impressed me intellectually were V. Chattopadhyaya and M.N. Roy...[116]

जिनसे मैं मिला था, प्राय: किसी ने मेरे मन पर किसी प्रकार का अच्छा प्रभाव उत्पन्न नहीं किया। मैं उनके त्याग की प्रशंसा करता हूँ और उनके कष्टों के लिए उनसे सहानुभूति रखता हूँ....

थोड़े-से हिन्दुस्तानियों से, जिनसे मैं यूरोप में मिला था. मुझ को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि से प्रभावित करने वाले केवल दो व्यक्ति मिले—एक श्री चट्टोपाध्याय और दूसरे एम.एन. राय।

एम.एन. राय से जवाहरलाल जी की भेंट मास्को में हुई थी। इस पूर्ण विवरण को यहाँ देने का अभिप्राय यह है कि जवाहरलाल जी के दिमाग में देश-प्रेम नाम की वस्तु कभी भी नहीं रही। इस कारण वे लोग, जो अपने देश और उसकी स्वतन्त्रता से प्रेम करते हुए जला वतन हुए, अथवा फाँसी लटक गए इनके मन में किसी प्रकार की भावना उत्पन्न नहीं कर सके। उनकी जीवन-मीमांसा इनके मन को प्रभावित नहीं कर सकी।

जवाहरलाल जी को केवल दो व्यक्ति बुद्धिशील प्रतीत हुए थे। एक श्रीयुत चट्टोपाध्याय और दूसरे श्रीयुत एम.एन. राय। दोनों के दोनों कम्युनिस्ट थे। इनको देश-भक्ति की बात पसन्द नहीं थी। वे कम्युनिस्ट विचारधारा को ही श्रेष्ठतम बात मानते थे।

इस बात में जवाहरलाल जी गांधी जी के पूरे शिष्य थे। गांधी जी के मस्तिष्क में दो बातें घुसी हुई थीं। एक अहिंसा और दूसरे विपक्षियों के आगे घुटने टेक देना। जब भी वे दोनों नेता किसी बात पर डटे हैं, वह सदा ऐसी बात होती थी, जो हिन्दुओं के विरुद्ध हो और देश में राष्ट्रीयता की घातक हो।

हिन्दुओं में क्या खराब बात दिखाई दी थी गांधी जी को और जवाहरलाल जी को, वह इन्होंने लिखी नहीं। देश और जाति के लिए जितना त्याग हिन्दुओं ने किया था, उतना अन्य किसी समुदाय ने नहीं किया। इस पर भी हिन्दू समुदाय की उचित बातें भी ये मानते नहीं रहे और सदा हिन्दुओं के हित की बात का विरोध ही करते रहे। यहाँ तक कि हिन्दुओं की बात का विरोध करते हुए वे प्रायः राष्ट्रीय हितों का भी विरोध करते रहे।

:: 3 ::

गांधी जी तथा नेहरू जी के प्रभाव के अधीन जब कांग्रेस हिन्दू हितों का विरोध करती हुई मुसलमानों का अधिमान देने लगी तब कुछ हिन्दुओं के मन में हिन्दू हितों की रक्षा का प्रश्न उत्पन्न हुआ।

1922 में मोपला विद्रोह के समय मलाबार के एक विस्तृत क्षेत्र में व्यावहारिक रूप में मुसलमानों ने इस्लामी राज्य स्थापित कर लिया था। इस क्षेत्र में मुसलमानों ने हिन्दुओं को लूटा, उनकी स्त्रियों का अपहरण किया और सहस्त्रों की सख्या में हिन्दुओं को इस्लाम स्वीकार करने पर विवश किया। इस पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग्रेज़ी सरकार ने वहाँ पर सुव्यवस्था स्थापित कर अपराधी मोपलों को दण्ड देना आरम्भ किया तो कांग्रेसी नेताओं ने यह कहना आरम्भ कर दिया कि सरकार अत्याचार कर रही है। किसी भी बड़े कांग्रेसी नेता ने मुसलमानों की उनकी मतान्धता के लिए, निन्दा नहीं की।

इसी प्रकार कोहाट, सहारनपुर, कलकत्ता और इलाहाबाद में बलवे हुए तो कांग्रेसी हिन्दू-मुसलमान ऐक्य के लोभ में मुसलमानों को पीड़ित प्रकट करते रहे और हिन्दुओं को पीड़ित प्रकट करने वाला कोई न था। वस्तुस्थिति यह थी कि बलवे सदा मुसलमान आरम्भ करते थे और फिर बलवों में कभी हिन्दू हानि उठाते थे, कभी मुसलमान। यह स्थानीय परिस्थितियों पर निर्भर होता था कि कौन किसको अधिक पीटता है।

कोहाट में तो स्थिति विलक्षण थी। एक सिख गुरुद्वारे में कीर्तन हो रहा था। मुसलमानों ने बलवा कर दिया। कोहाट में मुसलमानों की संख्या अधिक थी और हिन्दू बहुत बुरी तरह पिट गए। वहाँ दो सौ के लगभग हिन्दू मारे गए और शेष को वहाँ से भाग कर अपनी जान बचानी पड़ी। वे हिन्दू रावलपिंडी में आ गए। इस बलवे पर हिन्दू बहुत उद्विग्न हुए थे। गांधी जी ने भी अपनी मानसिक शुद्धि करने के लिए इक्कीस दिन का व्रत रखा था। व्रत के उपरान्त गांधी जी ने यह वक्तव्य दिया था कि पंजाब में सिखों और आर्यसमाजियों ने वातावरण बिगाड़ रखा है।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण हिन्दुओं के सामने आए तो हिन्दुओं ने अनुभव किया कि कांग्रेस में अनभिज्ञ कांग्रेसियों को मुसलमान मिथ्या बातें बताकर भ्रम में डालते रहते हैं। इस कारण 1924 में उन्होंने हिन्दू महासभा की स्थापना की। वास्तव में हिन्दू महासभा का उद्देश्य कांग्रेस को हिन्दू पक्ष से अवगत करना ही था।

इस पर 1925 में कांग्रेस ने यह निश्चय किया कि हिन्दु महासभा के सदस्य कांग्रेस में किसी प्रकार का पद ग्रहण नहीं कर सकते। 1926 में देशभर में चुनाव होने वाले थे और कांग्रेस के उक्त प्रस्ताव का यह अर्थ होने वाला था कि हिन्दू महासभा के वे सदस्य जो आगामी निर्वाचन लड़ना चाहते थे, कांग्रेस का टिकट नहीं ले सकते थे। कांग्रेस ने इस प्रकार का प्रतिबन्ध जमीयत-उल-उलेमा के, यहाँ तक कि मुस्लिम लीग के विरुद्ध भी पास नहीं किया था। यह ठीक था कि मुस्लिम लीग के सदस्य कांग्रेस का टिकट लेने नहीं आने वाले थे, परन्तु कांग्रेस की ओर से किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेस के उक्त प्रस्ताव से विवश होकर कुछ हिन्दुओं ने अखिल भारतीय नेशनलिस्ट दल स्थापित किया। हमारा यह कहना कि यह कांग्रेस के अन्तर्गत ही एक दल था, इस बात से सिद्ध होता है कि सन् 1930 में जब गांधी जी ने नमक सत्याग्रह के पूर्व लैजिस्लेटिव कौंसिलों को छोड़कर बाहर आ जाने के लिए कहा था, तब यह पूरा का पूरा दल केन्द्रीय कौंसिल से त्याग-पत्र देकर चला आया था।

इस पर भी जवाहरलाल नेहरू इस दल को बहुत कोसते हैं। जिस मुस्लिम लीग ने देश का सत्यानाश किया था और कर रही थी, उससे कहीं अधिक इस हिन्दू दल की उन्होंने निन्दा की है।

इस समय जवाहरलाल जी यूरोप गए हुए थे। मोतीलाल जी ने 1926 के निर्वाचन के विषय में उनको एक पत्र लिखा और उसमें नेशनलिस्ट दल को जी भर कर कोसा। उस पत्र में आप लिखते हैं—

...It was only yesterday that I came back to Allahabad after finishing my election tour. You will know the net result long before you receive this letter. We have come out strong though not in a majority in Madras and Bengal. The counting of votes in Bihar has not yet been finished, but this Province is not likely to lag behind Madras and Bengal. Bombay and C.P. have fared badly but there has been nothing short of a disaster in the U.P. Nothing much was expected from the Punjab and we are likely to lose all the Assembly seats there—thanks to Lajpat Rai's lies. The little Province of Assam has done very well and Burma has contributed its quota of two to the Assembly. Our strength in the Assembly is likely to be somewhat greater than it was during the last three years but there is a debacle in the U.P. Council........ It was simply beyond me to meet the kind of propaganda started against me under the auspices of the Malaviya-Lala gang. Publicly I was denounced as an anti-Hindu and pro-Mohammedan, but privately almost every individual voter was told that I was a beef-eater in league with the Mohammedans to legalise cow

मैं कल ही अपनी निर्वाचन यात्रा समाप्त कर इलाहाबाद आया हूँ। तुमको निर्वाचनों के परिणाम तो इस पत्र से पहले ही मिल जाएँगे। हमारी स्थिति बंगाल और मद्रास में सुदृढ़ हुई है, परन्तु हम बहुमत में नहीं आ सके। बिहार में मतगणना अभी समाप्त नहीं हुई, परन्तु यह प्रान्त भी बंगाल और मद्रास से पीछे नहीं रहेगा। बम्बई और मध्य प्रान्त में हमारी हालत बुरी रही है। संयुक्त प्रान्त में तो महाविनाश हुआ है। पंजाब से कुछ विशेष आशा तो थी ही नहीं। हम वहाँ भी असेम्बली की सब सीटें हारने वाले हैं—लाजपतराय के मिथ्यावाद को धन्यवाद है। बर्मा से दोनों सदस्य जीत गए हैं। आसाम के छोटे-से प्रान्त ने अच्छा परिणाम दिया है। असेम्बली में हमारी शक्ति पहले से अधिक होगी, परन्तु संयुक्त प्रान्त में तो हम सर्वथा ही बह गए हैं।.... यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

slaughter in public places at all times. Shyamji contributed to this propaganda in no small measure by saying that it was I who prevented his "Cow Protection Bill" from being debated in the Assembly. He stood from the Fyzabad Division for the Assembly, the other two candidates being a Swarajist and Daddan Saheb of Amethi. The Swarajist was a well known and influential member of the bar but Daddan Saheb's money won the day. Shyamji was financed by Malaviya but Daddan was declared as his party's candidate. Shyamji forfeited his security but the race between the Swarajist and Daddan was neck to neck. Fancy a nincompoop like Daddan defeating not only an able but a popular man....[117]

मेरी सामर्थ्य से बाहर था कि मैं इस प्रकार के प्रचार का विरोध कर सकता, जो मेरे विरुद्ध किया गया है। यह प्रचार मालवीय-लाला गुट (gang) के संरक्षण में चला है। प्रत्यक्ष रूप में कहा जाता रहा है कि मैं हिन्दुओं का विरोधी और मुसलमानों का समर्थक हूँ। निजी रूप में लगभग प्रत्येक वोटर को यह कहा गया है कि मैं गो-मांस भक्षक हूँ और मुसलमानों से मिलकर गोहत्या, सब स्थानों पर और सब समयों पर कर सकने के लिए कानून बनवाने के पक्ष में हूँ। 'श्याम' जी ने इस प्रचार में बहुत भाग लिया है। वह कहता रहा है कि मैंने उसका गोरक्षा सम्बन्धी बिल असेम्बली में उपस्थित होने से रुकवाया है। वह फैज़ाबाद डिवीज़न से खड़ा हुआ था। उसके मुकाबले में दो अन्य प्रत्याशी थे। एक तो स्वराजिस्ट था और दूसरे अमेठी के ददन साहब थे। स्वराजिस्ट तो एक ख्यातिप्राप्त वकील थे, परन्तु ददन के धन ने बाज़ी जीत ली। श्याम जी को मालवीय जी ने धन दिया था, परन्तु ददन साहब को उनके दल का टिकट मिला था। श्याम जी की तो जमानत ज़ब्त हुई थी। स्वराजिस्ट और ददन का मुकाबला (neck to neck) तेज़ रहा है।.... विचार करो ददन जैसे nincompoop का एक योग्य और ख्यातिप्राप्त वकील को हराने पर।

स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्वराजिस्ट दल की संयुक्त प्रान्त में पराजय से मोतीलाल जी बौखला उठे थे। मोतीलाल जी की अपने ही प्रान्त में मालवीय जी से पराजय हुई तो वे लिख रहे हैं कि मालवीय-लाला 'गैंग' और मालवीय का धन....

मोतीलाल जी के मन में अपने परिवार के विषय में भी बहुत भ्रम प्रतीत होता है। अमेठी के ददन साहब की उन्होंने हँसी उड़ाई और उनके मुकाबले में स्वराजिस्ट प्रत्याशी की प्रशंसा की है। ददन साहब का नाम कुँवर रणञ्जयसिंह है और अमेठी के ताल्लुकेदार के लड़के हैं। इनके मुकाबले के प्रत्याशी नेहरू जी के दल के थे। वे योग्य वकील रहे होंगे परन्तु सार्वजनिक निर्वाचन में योग्यता का कुछ मूल्य नहीं होता। मूल्य होता है ख्याति का। निस्संदेह ददन साहब की ख्याति उस क्षेत्र में उनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं अधिक थी। ध्यान देने योग्य बात यह है कि वही ददन साहब 1967 तक भारत की संसद में लोकसभा के उसी क्षेत्र से निर्वाचित सदस्य थे। इन्हीं भद्र पुरुष को मोतीलाल जी nincompoop लिखते हैं। वे क्या हैं और क्या नहीं, यहाँ लिखने में कुछ भी प्रयोजन नहीं। इसमें संदेह नहीं कि वे वहाँ ख्यातिप्राप्त व्यक्ति हैं। जहाँ तक मालवीय जी के रुपये का सम्बन्ध है, उसका मुकाबला तो कांग्रेस के टाटा इत्यादि के धन से करना होगा। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि फैज़ाबाद क्षेत्र में ददन साहब का विरोधी स्वराजिस्ट भी नेहरूवंश का था।

श्यामलाल, जिसके विषय में मोतीलाल जी ने लिखा है कि मालवीय जी से रुपया लेकर खड़ा हुआ था, ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक 'डम्मी' प्रत्याशी ही था। यह निर्वाचनों के ढंग हैं। आजकल के कांग्रेसी इसको बहुत अच्छी तरह जानते हैं।

मोतीलाल जी इससे इतने निराश हो गए थे कि इसी पत्र में उन्होंने जवाहरलाल जी को लिख दिया—

........I am thoroughtly disgusted and am now seriously thinking of retiring from public life........[118]

मैं बिलकुल निराशा से भर गया हूँ और सत्य हृदय से राजनीति से पृथक् होने का विचार कर रहा हूँ।

सत्य बात तो यह है कि उस समय कांग्रेस पर साम्प्रदायिक झगड़ों का इतना आतंक छा गया था कि उनकी नींद हराम हो रही थी। महात्मा गांधी और अन्य कांग्रेसी नेता भी जो हिन्दू-मुसलमान वैमनस्य के कारण तो जानते नहीं थे, उसका चिन्ता करने लग गए थे।

सन् 1936 में स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या कर दी गई। हत्या करने वाला एक मुसलमान था और हत्या का कारण स्वामी जी का शुद्धि कार्य था। यह बात स्पष्ट है कि आर्यसमाजी किसी भी अहिन्दू को बल, छल अथवा प्रलोभन से हिन्दू बनाते नहीं देखे गए। उनके विपरीत इस बात का कोई प्रमाण नहीं है। इस पर भी स्वामी जी की हत्या की गई और कांग्रेसी स्वामी जी के काम की निन्दा करते रहे थे। ऐसा विख्यात है कि उस समय गांधी जी कांग्रेस के अधिवेशन में गोहाटी गए हुए थे। जब उनको समाचार मिला तो अनायास इनके मुख से निकल गया कि ऐसा होना ही था। मानो स्वामी श्रद्धानन्द कोई भारी पाप कर रहे थे और उस पाप का फल ऐसा मिलना ही था।

श्री मोतीलाल जी इस घटना के विषय में जवाहरलाल जी को, जो यूरोप में थे, इस प्रकार लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The assassination of (Swami) Shradhanand has increased communal bitterness and open threats of reprisals are coming from various quarters. The only quarters from which any real danger is apprehended is the Bengal revolutionaries who have unfortunately been tainted with communalism to a very considerable extent.[119]

स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या ने साम्प्रदायिक कड़वाहट को बढ़ा दिया है। बदला लेने की खुली धमकियाँ कुछ ओर से सुनाई दे रही हैं। जिस ओर से बदला लेने की आशा है, वह बंगाल के क्रांतिकारी हैं। दुर्भाग्य से वे बहुत अंशों में साम्प्रदायिकता से रँगे हुए हैं।

वह सब एक डरे हुए मन का भूत ही हैं। प्रथम तो स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या अपनी प्रकार की पहली नहीं थी। आर्यसमाज ने मुसलमानों की मतान्धता के हाथों में यह प्रथम आहुति नहीं दी थी। इस शुद्धि कार्य के लिए मुसलमानों ने पहले भी कई आर्यसमाजियों की हत्याएँ की थीं और किसी ने भी बदला लेने का विचार नहीं किया था।

इसके साथ ही बंगाल के क्रांतिकारियों का बीच में ले आने में तो कोई कारण प्रतीत नहीं होता। बंगाल के क्रान्तिकारियों को साम्प्रदायिकता से रँगा हुआ मानना, यह मोतीलाल जी और जवाहरलाल जी के दिमाग की ही उपज है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि बंगाल के क्रान्तिकारियों ने कभी भी किसी मुसलमान की हत्या, उसके मुसलमान होने के कारण नहीं की। यह मोतीलाल जी तथा जवाहरलाल जी का सरासर झूठ है। यह ठीक है कि बंगाल के क्रान्तिकारी दुर्गा और भवानी का नाम लेते थे, परन्तु उन्होंने अपनी क्रान्तिकारी संस्थाओं को हिन्दू-मुसलमानों के झगड़ों में कभी प्रयोग नहीं किया।

कांग्रेस के मूर्ख नेता अपराधी को निन्दनीय कह नहीं सके, अपराधियों के विपरीत प्रतिक्रिया का भय करने लगे थे और वह भी उस दिशा से, जिधर से हो ही नहीं सकती थी।

ऊपर हम मोतीलाल जी और जवाहरलाल जी का नया दल बनाने के कारण हिन्दुओं पर रोष लिख चुके हैं। मजेदार बात तो यह है कि इन्होंने एक भी शब्द मुस्लिम लीग दल के बन जाने पर नहीं लिखा। जहाँ कहीं किसी मुसलमान के कांग्रेस से पृथक् हो जाने की बात लिखी है, इन्होंने उसका भी दोष हिन्दुओं पर लगाकर मुसलमानों के काम की सफाई देने का यत्न किया है।

जवाहरलाल जी मालवीय जी के नेशनलिस्ट दल के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The new Nationalist Party represented a more moderate outlook and was definitely more to the right than was the Swaraj Party. It was also wholly a Hindu party working in close co-operation with the Hindu party working in close co-operation with the Hindu Maha Sabha. Pandit Malaviya's leadership of it, was easy to understand, for it represented as nearly as possible his own public attitude.[120]

यह नई नेशनलिस्ट पार्टी नरम दल के दृष्टिकोण को प्रकट करती थी और निश्चय ही स्वराज्य दल से अधिक दक्षिणपंथी थी। साथ ही यह पूर्ण रूप में हिन्दू पार्टी थी जो हिन्दू महासभा के साथ मिलकर काम करती थी। इसका नेतृत्व स्वाभाविक रूप में मालवीय जी को प्राप्त था। यह उनके सार्वजनिक व्यवहार के अति समीप थी।

जवाहरलाल जी का यह विचार कि यह हिन्दू दल था, सर्वथा ठीक था। इस पर भी यह वास्तविक रूप में राष्ट्रीय दल ही था। जवाहरलाल जी तो राष्ट्रीय थे नहीं। वे राष्ट्रीयता को इस प्रकार समझते थे—

....Nationalism is essentially an anti-feeling, and it feeds and fattens on hatred and anger against other national groups.[121]

राष्ट्रीयता एक विरोध भावना है। यह जातीय समुदायों के विपरीत क्रोध और घृणा से पलती है और पनपती है।

इस प्रकार के विकृत विचारों का ही परिणाम हुआ है कि जवाहरलाल जी के प्रधान-मन्त्रीत्व काल में भारत में राष्ट्रीय भावना रही ही नहीं। देश में साधारण-से मतभेद पर पृथक् जाति बन जाती है।

इन्हीं विचारों के कारण उनको बंगाल के क्रान्तिकारियों और तिलक इत्यादि नेताओं के विचारों में हिन्दू मज़हबी राष्ट्रवाद दिखाई दिया और मौलाना मुहम्मद अली एक राष्ट्रीय नेता समझे गए।

हमारी श्री नेहरू तथा उनके मत के लोगों को चुनौती है कि वे हिन्दुओं, हिन्दू महासभा तथा नेशनलिस्ट दल के किसी कार्य अथवा किसी वक्तव्य से यह स्पष्ट करें कि उन्होंने किसी अहिन्दू को देश की नागरिकता से वंचित रखने के लिए यत्न किया हो।

जवाहरलाल जी का विचार है कि राष्ट्रीयता दूसरों के प्रति घृणा तथा क्रोध मात्र होती है। यह उनकी मिथ्या दृष्टि है और उनके प्रधान-मन्त्रीत्व काल में देश के लिए अति भयंकर सिद्ध हुई थी। जिस सुगमता से ये देश के भाग पाकिस्तान तथा चीन को देने के लिए तैयार हो गए थे, इससे उनकी इस अराष्ट्रीय दृष्टि की भयंकरता का पता चला है। इस विषय में आगे चलकर और अधिक स्पष्ट किया जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 4 ::

जवाहरलाल जी का सन् 1926 में यूरोप जाना एक और परिणामकारी सिद्ध हुआ। स्विट्ज़रलैण्ड में जवाहरलाल का कुछ कम्युनिस्टों से सम्पर्क बन गया। कम्युनिस्टों ने बूसेल्ज़ में एक कॉन्फ्रेन्स बुलाई थी। इसे पद-दलित जातियों की कॉन्फ्रेन्स (Congress of Oppressed Nations) कहा जाता है। वास्तव में यह कम्युनिस्ट प्रचार के हेतु बुलाई गई थी। इसका प्रबन्ध अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट दल ने किया था और इसका खर्चा रूसी सरकार ने दिया था।

जवाहरलाल जी हिन्दुस्तानी कांग्रेस के प्रतिनिधि बन उसमें सम्मिलित हुए थे। वहाँ पर जवाहरलाल जी को रूसी क्रान्ति की वर्षगांठ के समारोह का निमन्त्रण मिला और वे मास्को को चल पड़े।

मास्को में आप केवल तीन दिन रहे, परन्तु हिन्दुस्तान लौट कर आपने रूस और कम्युनिज़्म पर कई लेख लिखे और एक पुस्तक ऐसे लिख दी, मानो आप वहाँ वर्षों रह कर आए हैं। सम्भवतया वहाँ की सरकार ने आपको अपना सर्वथा मिथ्या प्रचार साहित्य दिया था और उसके आधार पर आपने कम्युनिज़्म का प्रचार आरम्भ कर दिया।

जवाहरलाल जी उस समय 37 वर्ष की वयस के थे। हिन्दुस्तानी कांग्रेस पार्टी के नेता थे। यूरोप जाने से पहले आप कांग्रेस के प्रधान मन्त्री भी रहे थे। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मानसिक विकास के विचार से आप उस समय भी सात वर्ष के बालक के तुल्य ही थे।

आप रूस में रूसी क्रान्ति का वार्षिक उत्सव देखने गए थे। किसी कारण से आप वहाँ एक दिन देरी से पहुँचे और वहाँ का जुलूस नहीं देख सके। इससे आपको भारी निराशा हुई और उस निराशा को आप अपनी पुस्तक 'सोवियत रशा' में प्रकट करते हैं।

The real anniversary celebration had taken place the day before and we had missed it....

Effigies were there of Chamberlain and Briand and Baldwin; some of them were very clever. One of these showed Chamberlain wedged in a sickle with the hammer falling on his head.[122]

असली वार्षिक उत्सव तो हमारे वहाँ पहुँचने से एक दिन पहले हो चुका था।

उसमें चेम्बरलेन, ब्रायण्ड और बाल्डविन के बुत थे। एक में दिखाया गया था कि किस प्रकार चेम्बरलेन हंसिया में फँसा हुआ है और हथौड़े से पीटा जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाहरलाल जी को यह दृश्य न देख सकने का बहुत शोक हुआ।

अपनी इसी पुस्तक 'सोवियत रशा' (Soviet Russia, some Random Sketches) में नेहरू जी रूस की प्रशंसा के वे पुल बाँध गए हैं कि उनकी 'बुद्धि' की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता। कुछ इसी बेहूदगी के उदाहरण हम पाठकों के ज्ञानवर्धन के लिए दे देना आवश्यक समझते हैं।

इस पुस्तक में, जवाहरलाल जी ने सोवियत सरकार को निश्छल और सच्ची सरकार लिखा है। आप लिखते हैं—

On seizing power they had voluntarily liquidated the special privileges which the Tsarist Government had claimed in countries such as Persia, Constantinophle Turkis waters etc.[123]

शक्ति प्राप्त करते ही इन्होंने (सोवियत सरकार) ईरान, तुर्की कुस्तन्तुनिया इत्यादि देशों पर अपने सब दावे, जो ज़ार के काल में रूस रखता था, त्याग दिए थे।

रूस कितना न्यायप्रिय और निश्छल था, वह तो पता चला, जब रूस के पास शक्ति आ गई थी। जवाहरलाल जी ने उस काल की बात लिखी है, जब रूस कई कारणों से अति दुर्बल हो चुका था। तब की बात सुनकर जवाहरलाल जी उसकी प्रशंसा के पुल बाँधने लगे थे।

आज रूस और चीन की सरकार ही साम्राज्यवादी है और वे इस साम्राज्य की सफाई कम्युनिज़्म में देते हैं, जैसे मुसलमान दूसरे देशों पर आक्रमण में बहाना इस्लाम को बताते हैं। किसी काल में ईसाई देश भी अपनी साम्राज्य लिप्सा की सफाई में सभ्यता और ईसाई धर्म की दुहाई दिया करते थे।

तीन दिन मास्को में रहने के उपरान्त जवाहरलाल रंगे-रंगाए कम्युनिस्ट बनकर लौट आए।

इन तीन दिनों में जव.हरलाल जी ने वहाँ क्या देखा होगा, यह तो भगवान ही जाने, परन्तु वे क्या बन गए, यह तो उनके लेखों और उनकी पुस्तक, सोवियत रसिया : सम रैण्डम स्कैचिज ऐण्ड इम्प्रेशन्ज़ (सोवियत रूस : बिखरे चित्र और संस्कार) के पढ़ने से पता चलता है। जवाहरलाल जी केवल तीन दिन रूस में रहे और वे भी मास्को में, परन्तु अपनी उक्त पुस्तक में वे कुछ ऐसा लिख रहे हैं, मानो वे वहाँ के ही रहने वाले हैं।

देखा तो उन्होंने क्या होगा! ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ की सरकार ने उनको अपना बहुत-सा प्रचार साहित्य दे दिया होगा और जवाहरलाल जी ने तोते की भाँति राम नाम जपना आरम्भ कर दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुस्तक के हम कुछ उदाहरण देना चाहते हैं। इनसे जवाहरलाल जी की मानसिक अवस्था का ज्ञान हो सकेगा। साथ ही उनका स्वराज्य काल का व्यवहार भी स्पष्ट हो जाएगा।

पुस्तक के आरम्भ में ही आप लिखते हैं—

Much depends on the prejudices and preconceived notions which he brings to his task. But whichever view may be right, no one can deny the fascination of this strange Eurasian country of the hammer and sickle, where workers and peasants sit on the thrones of the mighty and upset the best-laid schemes of mice and men.[124]

यह किसी के पूर्वग्रहों अथवा पहले के बने विचारों पर निर्भर है कि वह इस (रूस) के विषय में क्या समझता है। कुछ भी हो, इससे तो इन्कार नहीं किया जा सकता, कि यह यूरोप-एशिया का दरांती और हथौड़े वाला देश अति आकर्षक है। यहाँ मजदूर और किसान राजगद्दी पर बैठे हैं—उस राजगद्दी पर जहाँ कभी महान शक्तिशाली बैठे थे—जिन्होंने चूहों और बिल्लियों की योजनाओं को बिगाड़ दिया था।

इस कथन से जवाहरलाल जी यह बताना चाहते हैं कि वे इस देश के विषय में बहुत कुछ जानते हैं। कदाचित उनको यह भी पता नहीं कि रूस पर शासन करने वाले दल के सदस्यों की संख्या कितनी थी और है। सन् 1961 में बोल्शेविक दल की सदस्य संख्या रूस की पूर्ण जनसंख्या का चार प्रतिशत भी नहीं थी। उन दिनों जब जवाहरलाल जी वहाँ गए थे और जब की बाबत वे लिख रहे हैं, यह अनुपात डेढ़-दो प्रतिशत से अधिक नहीं था।

रूस के सरकारी आँकड़ों (Bulletin I, 1928) के अनुसार बोल्शेविक दल की सदस्य संख्या 28,00,000 थी और उस समय रूस की जनसंख्या 18,00,00,000 थी। दोनों की तुलना 1.5 प्रतिशत बनती है।

पीछे के आँकड़े कुछ अच्छे हैं। सन् 1961 में सदस्य संख्या 4 प्रतिशत तक पहुँच गई थी। 1926 में तो यह बहुत ही कम होगी। इसके साथ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि रूस में बोल्शेविक दल के अतिरिक्त अन्य कोई दल बन तथा काम नहीं कर सकता। भला इन डेढ़-दो प्रतिशत लोगों का राज्य कैसे मज़दूरों और किसानों का राज्य हो गया? सत्य बात तो यह है कि जवाहरलाल जी जो कुछ लिख रहे थे, वे तोते की भाँति सरकारी बातें कह रहे थे। वास्तविकता तो इससे सर्वथा उलट थी।

आप इसी पुस्तक में एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Russia thus interests us because it may help us to find some solution for the great problems which face the world to-day. It interests us especially because conditions there have not been, and are not even now, very dissimilar to conditions in India. Both are vast agricultural countries.[125]

रूस की बात हमको इसलिए रुचिकर है, क्योंकि इसमें हम समस्याओं के विषय में जान जाएँगे, जो आज दुनिया के सामने हैं। यह हमको विशेष रूप में रुचिकर है, क्योंकि वहाँ की अवस्था आज और पहले भी वैसी ही है, जैसी हिन्दुस्तान में है। दोनों कृषि प्रधान देश हैं।

1926 के हिन्दुस्तान और 1917 के रूस में कोई तुलना नहीं थी। किसी ने कुछ कह दिया और जवाहरलाल जी ने लिख दिया। हिन्दुस्तान एक विदेशीय सरकार के अधीन था और वह विदेशीय सरकार स्वयं अपनी सत्ता ढीली कर रही थी। इस विदेशीय सरकार के घर पर (इंग्लैंड) में प्रजातन्त्रात्मक राज्य था। वहाँ पार्लियामेंट थी और उसमें एक विरोधी दल था, जो प्रायः हिन्दुस्तान का पक्ष लेता रहता था। इंग्लैंड में स्त्री-पुरुष दोनों को मताधिकार था। रूस में राज्य बोल्शेविक दल का था और उनके सदस्यों की संख्या जनसंख्या की दो प्रतिशत से कम ही थी।

इसी पुस्तक में आप रूस की जेलों के विषय में लिखते हैं—

Our own visit to the chief prison in Moscow created a most favourable impression on our minds.[126]

It can be said without a shadow of doubt that to be in a Russian prison is far more preferable than to be a worker in Indian factory........ The mere fact that there are some prisons like the ones we saw is in inself something for the Soviet Government to be proud of.[127]

मास्को के मुख्य जेलखाने को देखने से हमारे मन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।....यह बिना संशय के कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तान की किसी फैक्टरी में काम करने से रूस के जेलखाने में रहना बहुत अच्छा है। इस विषय में जो हमने देखा है, उससे तो रूसी सरकार के लिए गर्व करने की बात है।

यह सम्भव है कि रूसी सरकार ने वहाँ के आने वाले महमानों को दिखाने के लिए किसी महमानखाने को जेल की सूरत-शक्ल दे रखी हो। वहाँ कैदियों से कैसा व्यवहार किया जाता है उसकी कहानी तो यहाँ के कैदियों के कथनानुसार सर्वथा दूसरी है।

जवाहरलाल जी की मिथ्या-वादिता कहें अथवा अज्ञानता कहें सत्य स्थिति तो वह नहीं थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 5 ::

अब तनिक वहाँ के कैदियों की बात भी पढ़ लें।

सुजाना लैबें अपनी पुस्तक 'स्टालिन का रूस' में लिखती हैं—

It is easy for a sadistic fantasy to perfect methods of torture which leave no trace. The simplest of all, the most widely used, and the most rational in view of the shortage of space, is to herd many prisoners into one cell. You take four bare walls, surrounding perhaps three yards or so square. Then you put about thirty prisoners into it. That is all........ You give them no soap or water, and no change of linen. And there you let them stand, walk, sleep, spit, sweat and relive all their natural urges for a week, two weeks, three weeks, a month, two months. three months.[128]

........that members of an accused man's family are sometimes executed before his eyes, if he opposes the will of his questioners.[129]

एक क्रूर व्यक्ति के लिए दंड की क्रूरता को सम्पूर्णता तक पहुँचाना, जिसके चिह्न भी दिखाई न दें सहज समझ में आ सकते हैं। सबसे सुगम उपाय है कि बहुत-से कैदियों को एक तंग जगह में बन्द कर दिया जाए। यह उपाय बहुत प्रयोग में लाया जाता है। इसको युक्ति-युक्ति माना जाता है और इसमें स्थान की भी बचत होती है। चारदिवारी में तीन-चार वर्ग गज स्थान घेर कर उसमें तीस अथवा अधिक कैदी बन्द कर दिए जाते हैं। इनको साबुन, पानी, बदलने को कपड़े नहीं दिए जाते। वे इसमें खड़े रहें, चलें, जागें, सोएँ, थूकें अथवा टट्टी-पेशाब करें। इस प्रकार सप्ताह पर सप्ताहों तक बन्द रखा जाता है।

सुजान लैबें ने अपनी पुस्तक वहाँ के समाचार-पत्रों के प्रमाण दे देकर लिखी है।

श्री जवाहरलाल जी ने जो कुछ लिखा है, वह उनको मूर्ख बनाकर लिखाया गया है अथवा वे अपने पाठकों को मूर्ख समझकर लिख रहे हैं, कहा नहीं जा सकता। इसमें सन्देह नहीं कि यह सत्य नहीं। हम नीचे डैविड जे. डार्ला की पुस्तक 'फोर्स्ड लेबर इन सोवियत रशा' में से एक-दो उद्धरण दे रहे हैं। इससे जवाहरलाल जी के उक्त वक्तव्य की असत्यता का ज्ञान भली-भाँति हो जाएगा। ये कैदियों के अपने बयान हैं, जो डार्ला ने लिये और फिर छपवाए।

The wife of a German Communist, herself a well known Communist leader, was arrested in Moscow in June, 1938, about a year after her husband was arrested and

एक जर्मन कम्युनिस्ट की पत्नी जो स्वयं भी एक विख्यात कम्युनिस्ट नेता थी, जून 1938 में पकड़ी गई। एक वर्ष पूर्व उसका पति पकड़ा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

disappeared. Because she had belonged to an anti-Stalinist faction of the party in Germany back in 1931-32, the NKVD now accused her of counter-revolution and sentenced her to five years of corrective labour. She was deported to the Karaganda region of Kazakhstan. Here is her story.

After a trip of several weeks, during which we were crowded together like cattle, I landed in Karaganda Camp in the Kazakhstan steppe. We convicts had the honour of cultivating the steppe, for the first time since the creation of the world, I presume. I had previously read of this in newspapers, which described it as a manifestation of socialist progress.

We lived in clay huts with thousands of lice, bugs and flease, fully on the level of the Kazakh nomad, but without his mutton steak and koumiss; we spent the short hours of the night lying on wooden boards or on the ground, without straw sacks, without blankets, only to line up for work at sunrise. Our work which lasted till sunset was rewarded with 600 gram (1.3 lbs.) of bread but only if the full quota of work was fulfilled (such as digging out 3,000 Metres of sunflower beds that had been sown by machine, and clearing the furrow on both sides). How one learns to hate the piti-less Siberian sun, to hate morning that it rises and that begins with yellying and profanity.[130]

था और पीछे उसका पता नहीं चला। यह औरत 1931-32 में जर्मनी के स्टालिन विरोधी गुट की नेता थी। उस दोष के लिए अब उसको (1938 में) पकड़कर, पाँच वर्ष का कठोर दण्ड दे, कज़ाखस्तान के कारागण्डा के क्षेत्र में भेज दिया गया। उसकी स्वलिखित कहानी इस प्रकार है :

कई सप्ताह की यात्रा के उपरान्त हम कारागण्डा पहुँचे। मार्ग में हमको इस प्रकार इकट्ठे रखा गया मानो हम पशु थे। कारागण्डा कज़ाखस्तान के स्टैपीज में है। स्टैपी उन मैदानों को कहते हैं जहाँ पेड़ नहीं होते। हम बंदियों को उन मैदानों में खेती-बाड़ी करने का सौभाग्य प्रात हुआ। मेरा विचार है कि जब से दुनिया बनी है, वहाँ पहली बार खेती की गई थी। उस कैम्प की बाबत मैं समाचार-पत्रों में पढ़ा करती थी। वहाँ का काम समाजवादी उन्नति का प्रमाण माना जाता था।

हम मिट्टी के झोपड़ों में रहते थे, जिनमें सहस्त्रों जूएँ, खटमल और मक्खियाँ भरी रहती थीं। वहाँ खानाबदोशों की भाँति हम रहते थे, परन्तु उनकी मांस की सीखें और कैमिस्स हमको प्राप्त नहीं थे। रात में आराम करने को बहुत कम समय होता था। हमको लकड़ी के तख्तों अथवा भूमि पर लेटना होता था। नीचे बिछाने को घास के बोरे भी तो नहीं होते थे। न ही हमको कम्बल मिले थे। सूर्य निकलते ही हमको पंक्ति में खड़े होकर काम पर जाना होता था। सूर्यास्त तक काम करना होता था और यदि काम पूरा हो गया तो 600 ग्राम रोटी मिलती थी। पूरा काम होता था—तीन हज़ार मीटर 'सन फ्लावर' बैड तैयार करना, जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पर मशीनें बीज बोती थीं। नालियाँ जो हम बनाते थे, उनके किनारे भी बनाने होते थे।

हम लोग सूर्य से घृणा करने लगे थे। उसके निकलते ही हमको काम पर जाना होता था। यह रोज ही निकलता था।

उसी पुस्तक में से एक और उद्धरण हम देना चाहते हैं।

लियोनिड शेख (Leonid Shehekash) पोलैण्ड के एक समाचार-पत्र का सम्पादक, सितम्बर 1940 में पकड़ा गया था और 1941 की वसन्त ऋतु में खारकोब से पिचोरा कैम्प में भेजा गया था। उसने अपने जेल जीवन के विषय में लिखा है। उस लेख के कुछ अंश यह हैं—

....We went on foot, walking along tracks of railroad line under construction. Day and night we were driven on. After a few days we could no longer distinguish between the days and nights, because the aurora borealis made the nights appear as bright as day. We had long lost track of the calendar and our lives had come to resemble a cattle-like existence........ We walked in this fashion through the taiga for an unknown number of days and nights, inadequately fed, receiving even insufficient amount of drinking water, sleeping in clothing drenched by rain and permeated by sweat, exhausted, broken physically and morally. We were in a state of complete stupor and indifference to our fate. ....

When, with some 700 others, I finally reached my destination after this long and unbearably strenuous forced march, I could not believe my eyes........ A tiny squad room, three quarters underground, without any equipment—a hut which resembled a dog house—served as sanpunkt (dispensary) ....

There was so little space on our cots that we had to sleep in a tightly packed row. Some of us could not even find that much room. Our room-mates told us, "When we go to work, you will be able to sleep on Our cots." ....

हम एक रेल की पटरी के किनारे-किनारे, जो अभी बन रही थी, पैदल चल रहे थे। दिन-रात हम चल रहे थे। कुछ दिन के उपरान्त दिन और रात में अन्तर प्रतीत होना बन्द हो गया। कारण यह है कि ध्रुव प्रकाश के कारण रात को भी पर्याप्त प्रकाश रहता था। हमको तिथियाँ और दिन स्मरण नहीं रहे। हम गाय-बैल की भाँति हाँके जाते अनुभव कर रहे थे।

इस प्रकार निरन्तर ले जाते, अगणित दिन और रातें व्यतीत हो गईं। खाने को अपर्याप्त मिलता था। पीने को पानी पर्याप्त नहीं होता था। उन कपड़ों में ही सोना होता था, जो वर्षा से भीगे होते थे अथवा पसीने से तर-बतर होते थे। हम थकावट से चूर-चूर और शरीर और मन से निढाल हो चुके थे। सर्वथा ज्ञानहीन और अपने भविष्य के विषय में कुछ न जानते हुए हम चलते जा रहे थे।

आखिर अपने सात सौ साथियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

About 5 A.M. everybody, even the sick was chased out of the barracks for roll call, which was attended by the chiefs of the camp ....,

To this day I cannot understand how we survived. We worked so hard and ate so little, resting only a few hours a day and living in filth that defies description. We made constant and conscious efforts not to succumb to moral depression. It grieved us to realize that we, the victims of Hitlerism, were fated to be slave labourers in the Soviet Union, and to suffer privation and humiliation. We were bitterly disappointed in Soviet Russia.[131]

के साथ हम मंज़िल पर पहुँचे। यात्रा लम्बी और अति कठोर थी। वहाँ पहुँचकर मैं अपनी आँखों पर विश्वास नहीं कर सका।

एक छोटा-सा कमरा, जो तीन-चौथाई भूमि से नीचे था और जिसमें कुछ भी सामान नहीं था, यह दवाईखाना था।

वहाँ बैरकों में स्थान इतना कम था कि हम एक दूसरे के साथ सटकर भी लेट नहीं सकते थे। हमारे कमरे के साथी कहते थे कि हम तब सो सकेंगे जब वे काम पर जाएँगे।

नित्य प्रातःकाल हमको (बीमारों को भी) धक्के देकर बाहर निकाला जाता था और हमारी हाज़िरी भरी जाती थी। हाज़िरी के समय कैम्प के-बड़े अधिकारी उपस्थित होते थे।

आज तक मैं समझ नहीं सका कि हम जीवित कैसे थे। काम अति कठोर होता था। खाने को कम मिलता था और आराम करने को समय अपर्याप्त होता था। हमारा रहना इतनी गन्दी जगह पर था कि वर्णन नहीं किया जा सकता। हम सदा यह यत्न करते रहते थे कि हमारे मन परास्त न हों। हमें दुःख इस बात का था कि हम हिटलर पंथ के शिकार दुर्भाग्य से सोवियत रूस के कैदी हुए और वहाँ जो कष्ट और अपमान सहन करने को मिला, वह वर्णनातीत है। हम सोवियत रूस से नितान्त निराश थे।

इस लम्बे उद्धरण को देने में प्रयोजन है। जवाहरलाल जी जैसे व्यक्ति ने रूस के विषय में इतना कुछ अनृत लिखा है कि उसका खंडन कैदियों के मुख से कराना ही आवश्यक था। यदि जवाहरलाल जी के विषय में किसी प्रकार की सफाई दी जाए तो यही कहा जा सकता है कि किसी ने उनको मूर्ख बनाया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि जवाहरलाल जी को कोई नुमायश का मकान दिखाकर उसको जेल बता दिया गया और आप बिना इस बात का कहीं से समर्थन कराए, उस पर लट्टू हो गए थे।

हम विस्मय करते हैं कि कहीं जवाहरलाल जी वहाँ कुछ दिन अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते तो क्या वे यथार्थ बात जान पाते? जवाहरलाल जी पर कम्युनिज़्म का नशा इतना गहरा था कि कदाचित् वह कन्सेन्ट्रेशन कैम्प में रहने पर भी न उतर सकता।

परन्तु संसार में दूसरे लोग ऐसे हुए हैं, जो इस सच्चाई को जान गए थे।

एक यहूदी कवि की कहानी पढ़ने योग्य है। डा० जूलियस मारगोलिन युद्ध से पूर्व पोलैंड में एक समाचार-पत्र के संवाददाता थे। ये सन् 1939 में पकड़े गए और 1946 में छोड़े गए। आपने अपनी कहानी लिखी है। उसमें आप लिखते हैं—

"सोवियत यूनियन में लगभग सात वर्ष तक रहा हूँ। इनमें से पाँच वर्ष तक कठोर दण्ड भोगा है।....

1939 के पहले मेरे विचार यू.एस.एस.आर. के विरुद्ध नहीं रहे थे। हम यूरोप के बुद्धिशील लोग रूस और दूसरे देशों से तटस्थ भाव बना बैठे थे। यह सत्य था कि हम उनकी राज्य प्रणाली यूरोप वालों के लिए ठीक नहीं मानते थे, परन्तु हम विचार करने लगे थे कि रूस के रहने वाले उनको पसन्द करते हैं, तो वे जानें। हमको क्या, हम योरुप में रहने वाले तो इसको एक महान परीक्षण ही समझते थे।....

1939 से पूर्व जब मैं रूस के विरुद्ध पढ़ता था तो यह समझता था कि ईश्वर का धन्यवाद है कि मैं इतना संकुचित विचार का नहीं था।....

पिछले सात वर्षों के अनुभव ने मुझे सोवियत पद्धति का पक्का और घोर शत्रु बना दिया है।....

मिलियन्स (करोड़ों) लोग सोवियत यूनियन (रूसी) के कैम्पों में घुल-घुल कर मर रहे हैं।....

रूस दो भागों में बँटा हुआ है। एक स्वतन्त्र रूस है। इसके एक भाग को ही पर्यटक देख पाते हैं। मास्को के महल और दुकानें, इन के गन्दे सहन भी।

रूस का एक दूसरा भाग है। सहस्रों कैम्प जिनको कांटेदार तारों से घेरा होता है, और जिनमें करोड़ों रूसी रहते हैं। कठोर मेहनत करते हैं। ये वहाँ के समाज से निकाले गए हैं।

सारी कहानी अति दुःखद् है और लम्बी है।[132]

ऐसे अनेक और लोग हैं जिनकी आँखें रूस में कुछ समय तक रहने पर खुल गई थीं।

एक श्री ए. रुडोल्फ हैं। इन्होंने रूस जाने से पहले एक पुस्तक लिखी थी। 'Fifteen Delegates in the Soviet Union'। यह रूस की अत्यन्त प्रशंसा में लिखी गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये तीन वर्ष रूस में एक स्वतन्त्र नागरिक के रूप में रहकर लौट आए और आकर आपने एक अन्य पुस्तक लिखी 'Why I Left the Soviet Union.'

इस पुस्तक के आरम्भ में ही आप लिखते हैं—

It was only much later than I discovered that at first I had seen only the surface of things, and that it is impossible for anyone, no matter who he may be, to judge the situation in the Soviet Union accurately after only a few months' stay, after a visit made as a delegate, carefully guided towards what he is desired to see and equally carefully headed off from everything he is not intended to see. It was only little by little that I discovered that I had been shown only model institutions and that all the difficulties and the enormous defects had been hidden from me."[133]

यह तो बहुत पीछे जाकर पता चला कि मुझे केवल वस्तुएँ बाहर से ही दिखाई गई थीं। सोवियत यूनियन में कुछ महीने रहकर भी ठीक-ठीक बात को समझना असम्भव है। भले ही वह कोई भी क्यों न हो। डेलीगेट के रूप में वहाँ जाने पर सावधानी से वे वस्तुएँ दिखाई जाती हैं, जिनको वे दिखाना चाहते हों और वे नहीं दिखाई जातीं, जिनको न दिखाना चाहते हों, यह तो धीरे-धीरे, थोड़ी-थोड़ी करके, मुझको पता चला था कि केवल नमूने की बातें दिखाई गई थीं और जो वहाँ पर त्रुटियाँ और कठिनाइयाँ हैं, उनको छुपा कर रखा गया था।

उस समय जवाहरलाल जी की आयु सैंतीस वर्ष से अधिक थी और उस आयु में भी आप बच्चों की भाँति स्वप्न-लोक में विचरते थे।

:: 6 ::

रूस में मास्को के दर्शन मात्र से नेहरू जी कम्युनिस्ट हो गए। हिन्दुस्तान में आकर वे कांग्रेस को भी रूसी ऐनक में से देखने लगे। उस रंगीन ऐनक से कांग्रेस में भी उनको बुर्जुआ शोषणकारी दिखाई देने लगे। कांग्रेस के विषय में आप अपनी 'Glimpses of World History' नामक पुस्तक में लिखते हैं—

It is interesting to note that the early waves of nationalism in India in the nineteenth century were religious and Hindu. The Muslims naturally could take no part in this Hindu nationalism. They kept apart ... and then as with the Hindus, their (Muslim's) nationalism took the shape of Muslim nationalism.[134]

यह जानना रुचिकर होगा कि हिन्दुस्तान में प्रथम राष्ट्रीयता की लहर, जो उन्नीसवीं शताब्दी में आई वह मज़हबी और हिन्दू राष्ट्रीयता की थी। स्वाभाविक रूप में मुसलमान इससे पृथक रहे। वे इसमें भाग नहीं ले सकते थे.... और तब हिन्दुओं की भाँति उनका भी राष्ट्रवाद चला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा प्रतीत होता है कि जवाहरलाल जी को कांग्रेस के इतिहास का भी ज्ञान नहीं था। यह (Glimpses of World History) पुस्तक, वास्तव में, नेहरू जी द्वारा अपनी पुत्री इन्दिरा को दिए इतिहास के पाठों का संग्रह है। कितनी मिथ्या शिक्षा इन्होंने अपनी पुत्री को दी है!

राष्ट्रीयता की प्रथम लहर (उन्नीसवीं शताब्दी) 1857 में फूटी थी और उसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों सम्मिलित थे।

इसके उपरान्त दूसरी लहर, जिसका अभिप्राय जवाहरलाल जी बता रहे हैं, थी 1885 की कांग्रेस। यह भी हिन्दू-मुसलमान, दोनों की सांझी संस्था थी। इसी को जवाहरलाल जी हिन्दू राष्ट्रवाद की लहर मानते हैं।

प्रथम तो कांग्रेस को उन्नीसवीं शताब्दी में राष्ट्रवाद की लहर कहना ही मिथ्या कथन है। इस संस्था की स्थापना की थी एक अंग्रेज़ ने। वह हिन्दुस्तान का एक उच्च अधिकारी रह चुका था। इस संस्था की स्थापना के पहले सैक्रेटरी ऑफ स्टेट और वाइसराय हिन्द की राय ले ली गई थी। इस संस्था का उद्देश्य था हिन्दुस्तानी पढ़े-लिखों को, अपनी राजनीतिक उन्नति करने में यत्नशील करना। वास्तव में वाइसराय हिन्द चाहते थे कि हिन्दुस्तानी पढ़े-लिखों को बक-झक करने का अवसर मिलता रहे और अधिक बक-झक करने वालों को इनाम दिया जाया करे।

यह न तो हिन्दू संस्था थी और न ही इसमें राष्ट्रीयता की गंध थी। यह ठीक है कि सैयद अहमद ने मुसलमानों को कांग्रेस का बहिष्कार करने के लिए कहा था। परन्तु इतने मात्र से यह हिन्दू राष्ट्रीय संस्था नहीं हो सकती थी। इस संस्था में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, सब समुदायों के लोग थे। साथ ही यह राष्ट्रीय उत्थान के लिए निर्माण नहीं की गई थी। इसमें स्वराज्य के लिए यत्न करने की गंध मात्र भी नहीं थी।

कांग्रेस में आरम्भ से ही मज़हबी बातों को करने की मनाही थी। उन्नीसवीं शताब्दी में तो तिलक इत्यादि का, इस संस्था में नाम लेना भी मना था। 1898 में तिलक जी पकड़े गए थे। किसी हिन्दू आन्दोलन के कारण नहीं वरन कुछ अंग्रेज़ अफसरों के अत्याचार का विरोध करने पर। कांग्रेस में तिलक जी के विषय में प्रस्ताव रखने का विचार हुआ, परन्तु प्रधान ने स्वीकृति नहीं दी। इस संस्था को जवाहरलाल जी राष्ट्रीय और हिन्दू संस्था मानते हैं और कहते हैं कि इसके विरोध में मुसलमान राष्ट्रवाद पैदा हुआ। यह नितान्त अज्ञतापूर्ण कथन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री नेहरू की इसमें युक्ति यह है कि कांग्रेस को मुसलमानों ने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि यह हिन्दू संस्था थी और इसका राष्ट्रवाद हिन्दू राष्ट्रवाद था। उस समय मुसलमानों में कांग्रेस के विरोधी सैयद अहमद और उनके साथी थे। यह हम सप्रमाण बता चुके हैं कि वे कांग्रेस के विरोधी क्यों थे।

यहाँ हम श्री के.एम. मुंशी के विचार लिख देना चाहते हैं। श्री मुंशी लिखते हैं—

Jawaharlal Nehru, a scion of an aristocratic family of Kashmir, which in the past was closely associated with the Muslim rulers, never could understand the problem. He was alergic to Hinduism. He attributed to chauvinism even a defensive action by the Hindus, and viewed the master-race complex of the Muslims with complacence if not indulgence....

....

Between A.D. 999 and 1761, the Turk, Afghan and Mongol invaders uprooted Hindu kingdoms in several parts of the country. During the course of their campaigns, they forcibly converted to Islam large masses of men and women; they and their camp followers also took to themselves Hindu women captured or kidnapped, as wives.

....

In the territories ruled over by Muslims chiefs, the converts enjoyed many of the privileges of the ruling class. The rulers were their co-religionists; every office carrying influence or high emoluments was theirs, so were all the good things of life..,[135]

श्री जवाहरलाल नेहरू कश्मीर के एक सम्भ्रान्त परिवार की उपज थे, जो मुसलमान शासकों से घनिष्टतया सम्बन्धित था। अतः वह (हिन्दू-मुसलमान) समस्या को कभी समझ ही नहीं सकते थे। हिन्दू धर्म से उन्हें अरुचि थी। वह हिन्दुओं के अपनी रक्षा में किए गए किसी प्रकार के कार्य को भी संदेह की दृष्टि से देखते थे और मुसलमानों के एक श्रेष्ठ जाति होने के विचार को स्वीकार नहीं तो सहन अवश्य करते थे।

सन् 999 से लेकर सन् 1761 तक तुर्क, अफगान और मुग़ल आक्रमण करते रहे थे। और एक के बाद दूसरे हिन्दू राज्य को विनष्ट करते रहे। अपने आक्रमणों में वे बहुत बड़ी संख्या में हिन्दू पुरुष तथा स्त्रियों को बलपूर्वक मुसलमान बनाते रहे। वे और उनके साथ आने वाले, हिन्दू स्त्रियों को पकड़ लेते थे अथवा उनका अपहरण कर उनको अपनी पत्नियाँ बना लेते थे।

मुसलमानों के राज्य क्षेत्रों में, मुसलमान हो जाने वाले लोग शासक-जाति की सुख-सुविधा का भोग करते थे। शासक उनके हम-मज़हब होने से, वे ऊँची पदवियों को पाते थे और उन पदवियों पर बड़े-बड़े वेतन तथा अन्य बढ़िया भोग वस्तुएँ प्राप्त कर लेते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमान अभी भी यही कुछ चाहते थे और कांग्रेस से उनके इस प्रकार के स्वप्न सिद्ध नहीं हो सकते थे। वास्तव में तत्कालीन कांग्रेस का उद्देश्य स्वराज्य प्राप्त करना था ही नहीं।

इस सम्बन्ध में जवाहरलाल जी और भी लिखते हैं—

नई बुर्जुआ अर्थात् मध्यम श्रेणी ब्रिटिश राज्य की उपज थी। एक विचार से वे राज्य पर पलने वाले थे। जनसाधारण के शोषण में वे एक सीमा तक हिस्सेदार थे—

The new bourgeoisie, or middle class was a direct outcome of British rule; in a sense they were the hangerson on of this rule. They shared to a small extent in the exploitation of the masses...The great majority of these people of the new bourgeoisie were Hindus... the Muslims were generally poor...the land-lord was usually a Hindu and so was the village "bania".... in the same way the high cast Hindus, especially in the South, exploited the so-called "depressed" class....

As the bourgeoisie grew, their appetite grew. They wanted to get on to make more money, to have more posts in Government services, more fascilities to start factories...so they began agitating and this was the origin of the nationalist movement ...Thus was the Indian National Congress founded...[136]

... इस नई बुर्जुआ श्रेणी में बहुसंख्या में हिन्दू थे। यह उनकी आर्थिक स्थिति के कुछ अच्छा होने के कारण था। साथ ही उनके अंग्रेज़ी शिक्षा के लेने के कारण था। मुसलमान इन दोनों बातों में पिछड़े हुए थे—मुसलमान प्रायः निर्धन थे—जमींदार प्रायः हिन्दू था। इसी प्रकार गाँव का बनिया हिन्दू था। इसी प्रकार हिन्दुओं में विशेष रूप में दक्षिण में ऊँची जाति छोटी जाति वालों का शोषण करती थी—ज्यों-ज्यों बुर्जुआ बढ़ता गया त्यों-त्यों उसकी भूख बढ़ती गई। वह और आगे बढ़ना चाहता था। अधिक धन कमाना चाहता था। और अपने कारखानों के लिए अधिक सुविधाएँ चाहता था।

....इस प्रकार 1885 में ये लोग एकत्रित हो गए और उन्होंने एक संस्था बना ली कि अपनी माँग उपस्थित करें। यह थी इण्डियन नेशनल कांग्रेस, जो 1885 में स्थापित हुई...

यह सब मिथ्या इतिहास है। इतिहास की यह विवेचना कार्ल मार्क्स की दी हुई है। पहली बात तो यह है कि कांग्रेस की स्थापना किसी हिन्दुस्तानी के कहने पर नहीं की गई। यह हम ऊपर बता चुके हैं कि कांग्रेस की स्थापना एक अंग्रेज़ ने की थी। उसका नाम सर ए.ओ. ह्यूम था। किसी श्रेणी के हिन्दुस्तानियों ने कोई अपना मतलब सिद्ध करने के लिए कांग्रेस की स्थापना नहीं की थी। यदि यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा जाए कि ब्रिटिश सरकार ने अपने किसी मतलब को सिद्ध करने के लिए यह बनाई थी, तो अधिक उचित होगा।

इसमें हिन्दू सम्मिलत हुए अथवा बुर्जुआ हुए और उन्होंने इसमें सम्मिलित होकर क्या कार्य सिद्ध किया, ये पृथक् प्रश्न हैं। यदि यह सत्य है कि किसी ने कांग्रेस में पहुँचकर किसी प्रकार का स्वार्थ सिद्ध किया है तो यही कहा जाए कि उसने कांग्रेस का अर्थात् ब्रिटिश सरकार का शोषण किया है। जनसाधारण तो सरकार द्वारा पहले ही लूटा जा रहा था। यह सिद्ध करना जवाहरलाल जी का काम था कि उन हिन्दुओं ने सरकार की, जनसाधारण को लूटने में किसी प्रकार की सहायता की थी। कांग्रेस हिन्दू संस्था तब मानी जा सकती थी, यदि इसमें मुसलमान के प्रवेश पर प्रतिबन्ध होता। मुसलमान गरीब थे और अंग्रेज़ी सरकार की नीति के कारण वे निर्धन थे, हिन्दुओं ने अंग्रेज़ी पढ़ ली थी और मुसलमान अंग्रेज़ी नहीं पढ़ा था—हिन्दू ज़मींदार था और वह दुकानदार था, ये सब अनर्गल बातें हैं। जवाहरलाल जी को विदित होना चाहिए था कि अंग्रेज़ों के हिन्दुस्तान में आने से पहले मुसलमान हिन्दुस्तान में सात सौ वर्ष तक राज्य करते रहे थे और उस राज्य करने पर भी यदि वे गरीब रहे, पददलित थे और निर्धन थे तो इसमें हिन्दुओं का दोष नहीं था, दोष इस्लाम का था। इस्लाम एक इस प्रकार की जीवन-मीमांसा है कि इसको मानता हुआ कोई उन्नति कर ही नहीं सकता। सात सौ वर्ष तक इस्लामी राज्य के नीचे पिसता हुआ, यही हिन्दू प्रबल था तो कुछ हिन्दुत्व में विशेषता के कारण ही था।

जब कोई अपनी योग्यता के कारण किसी विशेष स्थिति पर पहुँचता है तो वह उस विशेषता का लाभ उठाता ही है। विचारणीय बात यह होती है कि उसने उस विशेष अवस्था को प्राप्त कैसे किया था? साथ ही जो कुछ उस विशेषावस्था से प्राप्त कर रहा है, उसके पीछे समाज की स्वीकृति थी अथवा नहीं।

हिन्दू अपनी योग्यता के कारण मुसलमानी राज्य में भी जमींदार था, साहूकार था और विद्वान था तो उसको गाली देने में यह कोई कारण नहीं। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि इस्लामी राज्य में हिन्दू के साथ किसी प्रकार की रियायत तो की नहीं जाती थी। उस पर अन्याय अवश्य होता था। इस पर भी यदि वह पढ़ा-लिखा और सम्पन्न था तो किसी विशेष योग्यता के कारण ही था। इसमें हिन्दू और मुसलमान का प्रश्न था ही नहीं।

इस पर भी हिन्दू और मुसलमान का झगड़ा आर्थिक नहीं था। मुसलमान तो हिन्दू का विरोध तब भी करता था, जब वह मालिक था और हिन्दू प्रजा थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दू यदि इस्लाम के सामने नतमस्तक नहीं हुआ तो अपनी किसी नैसर्गिक श्रेष्ठता के कारण ही नहीं हुआ। मुसलमानों ने तो इस्लाम के प्रसार के लिए तलवार चलाने में भी संकोच नहीं किया।

जवाहरलाल जी की इतिहास की इस विवेचना पर, इस लम्बे वक्तव्य को देने का अभिप्राय यह बताना है कि वे इतिहास से सर्वथा अज्ञ थे और रूसी तानाशाहों से मिथ्या प्रचार की पुस्तिकाएँ ले तथा पढ़कर अपने को इतिहास के ज्ञाता प्रकट कर रहे हैं।

यूरोपियन ढंग से पढ़े हुओं में सबसे बड़ा अवगुण यह है कि वे किसी दूसरे की बात को सुनने को भी तैयार नहीं होते, उस पर विचार करना तो दूर रहा। यूरोपियन, विशेष रूप में मार्क्सवादी सबसे पहली बात अभिमान करना सीखते हैं। ये मूढ़मति संसार में जितना दुःख दर्द, अत्याचार और अनाचार फैलाने वाले सिद्ध हुए हैं, उतना संसार में और कोई नहीं हुआ।

जो लोग संसार में शारीरिक सुख भोग को ही केवल उपलब्ध करने योग्य मानते हैं, उनकी प्रवृत्ति में अभिमान का आ जाना एक अनिवार्य बात है। भारतीय शास्त्र उनको आसुरी प्रवृत्ति का मानता है।

संसार के सुख-साधन मानव के कल्याण में साधन मात्र हैं। जहाँ ये स्वयं उद्देश्य बन जाते हैं वहाँ लूट-खसोट, बलात्कार अवश्यम्भावी हो जाते हैं। मार्क्सवाद इसी प्रवृत्ति का प्रतीक है और यही जवाहरलाल जी मास्को से सीख कर आए थे।

रूस की जेलों और अस्पतालों की झूठी प्रशंसा करने के अतिरिक्त जवाहरलाल जी वहाँ के नैतिक दोषों को भी छिपाने का यत्न करने लगे।

आप अक्तूबर की क्रांति के विषय में लिखते हैं—

The October Revolution was undoubtedly one of the great events of world history, the greatest since the first French Revolution, and its story is more absorbing from the human and the dramatic point of view, than any tale of phantasy.[137]

रूस की (1917) अक्तूबर की क्रांति निस्सन्देह विश्व की एक महानतम घटना है। फ्रांस की प्रथम क्रांति के बाद अन्य सबसे महान् थी यह। मानवता और नाटकीय विचार से किसी भी काल्पनिक घटना से यह अधिक रुचिकर कहानी है।

अपनी 'ग्लिम्प्सिज़ आफ वर्ल्ड हिस्ट्री' नामक पुस्तक में इसी के विषय में आप लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Apart from its effect on the war, the Revolution was in itself a tremendous event, unique in world history. Although it was the first revolution of its kind, it may not long remain the only one of its type, for it has become a challenge to other countries and an example for many revolutionaries all over the world.[138]

इस (अक्तूबर की क्रांति) के युद्ध पर प्रभाव के अतिरिक्त भी, यह स्वयं विश्व इतिहास में एक बहुत बड़ी घटना थी। यद्यपि यह अपने प्रकार की प्रथम घटना थी, परन्तु यह अपनी प्रकार की अंतिम घटना नहीं होगी। यह दूसरे देशों के लिए चुनौती बन गई है और दुनिया के दूसरे क्रांतिकारियों के लिए एक उदाहरण बन गई है।

फ्रांस में तो एक गुलटीन मशीन से हत्याएँ की गई थीं। यह मशीन एक झटके से ही सिर उतार कर पृथक कर देती थी, परन्तु रूसी क्रांति में तो आग तपाते तवे पर जीवित मनुष्यों को भून कर तमाशा देखा जाता था। अहिंसा के पुजारी का इन दोनों क्रांतियों को मानवतापूर्ण तथा नाटकीय कहानी लिखते देख रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु अपने देश के क्रांतिकारियों के विषय में निन्दा के अतिरिक्त उनके मुख में कोई शब्द नहीं।

जवाहरलाल जी इनको आतंकवादी कहते हैं और लिखते हैं—

...Terrorism is a dying thing in India and else-where, not because of Government coercion, which can only suppress and bottle up, not eradicate, but because of basic causes and world events. Terrorism usually represents the infancy of a revolutionary urge in a country...India has undoubtedly passed that stage...[139]

दूसरे स्थानों की भाँति आतंकवाद हिन्दुस्तान में भी मर रहा है। यह इस कारण नहीं कि सरकार दमन कर रही है। सरकार तो इसको दबा सकती है, जैसे कोई वस्तु बोतल में बन्द की जाती है। सरकार इसको निर्मूल नहीं कर सकती। यह मर रहा है मौलिक कारणों से और दुनिया की घटनाओं से। आतंकवाद क्रांतिकारी उत्प्रेरणा का बाल्यकाल ही होता है। भारत निश्चित ही उस स्थिति से निकल चुका है।

जवाहरलाल जी अपने को क्रांतिकारी मानते हैं और आतंकवाद को क्रांति का बाल्यकाल मानते हैं। इस प्रकार के वक्तव्यों से ही तो जवाहरलाल जी अपने को इतिहास से अनभिज्ञ प्रकट करते हैं। आतंकवाद का अपना कार्य और अपना स्थान है और क्रांति का अपना। दोनों के उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं। आतंकवाद व्यक्तिगत सत्याग्रह का हिंसात्मक रूप है। महात्मा जी ने सत्याग्रह के जो अर्थ अपने व्यवहार से प्रकट किए थे, वे सर्वथा मिथ्या हैं। केवल मात्र 'सत्य' शब्द आ जाने से सत्याग्रह अहिंसात्मक नहीं हो जाता। एक हिंसात्मक कार्य भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्याग्रह हो सकता है, यदि वह सत्य के प्रतिपादन के लिए किया गया हो। सत्य के लिए आग्रह ही सत्याग्रह है। भले ही वह हिंसात्मक हो।

हिंसात्मक सत्याग्रह ठीक है अथवा अहिंसात्मक? यह एक भिन्न प्रश्न है। इसके विषय में हमारा केवल यही कहना है कि किसी कार्य के हिंसात्मक होने अथवा अहिंसात्मक होने से उसकी श्रेष्ठता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

रही बात यह कि क्रांति क्या है? क्रांति और सामूहिक सत्याग्रह एक ही स्तर के कार्य हैं और ये दोनों ही पागलपन हैं। ये पागलपन इस कारण हैं कि ये तब तक सम्भव नहीं, जब तक सामूहिक उन्माद (Mass hysteria) उत्पन्न न कर दिया जाए। सत्याग्रह चाहे वह हिंसात्मक हो, चाहे अहिंसात्मक, विचार कर किया हुआ कार्य होता है। व्यक्तिगत सत्याग्रह का एक उदाहरण (अहिंसात्मक) गुरु तेगबहादुर का बलिदान था। हिंसात्मक सत्याग्रह का उदाहरण भगतसिंह का था, जब वह दिल्ली के असैम्बली चैम्बर में बम्ब फेंकने गया था। दोनों कार्य भलीभाँति विचारित और परिणामों को समझकर किए गए थे।

वैसे रूस की अथवा फ्रांस की क्रांति सामूहिक उन्माद था। ठीक वही बात गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलनों में थी। ये सब-के-सब 'Mass hysteria' (सामूहिक उन्माद) ही थे। श्री जवाहरलाल जी ने इनको स्वयं माना है। सन् 1922 के सत्याग्रह आन्दोलन के विषय में आप लिखते हैं—

हम में से बहुत-से लोग जो कांग्रेस का कार्य कर रहे थे, एक प्रकार से, नशे में थे। हम उत्तेजना तथा असंतुलित आवेश में भरे हुए थे। हम एक ऐसे आदमी की भाँति खुश थे जो किसी उद्देश्य के लिए जी-जान की बाजी लगाए हुए हो। हमारे मन में संशय अथवा किसी प्रकार की झिझक नहीं थी और हमको अपना मार्ग सामने स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

Many of us who worked for the Congress programme lived in a kind of intoxication during the year 1921. We were full of excitement and optimism and a buoyant enthusiasm.[140]

आप और भी लिखते हैं—

हमारे व्याख्यानों में दिखावा और फूहड़पन की कमी नहीं थी।

There was sufficient posing there and no lack of vulgarity in our flamboyant addresses.[141]

क्रान्तियाँ सदा अपने लक्ष्य से विचलित हो जाती हैं। यही बात गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलनों की थी। गांधी जी जो कुछ चाहते थे, उससे सर्वथा उलट होता था। क्या मिला है, यह हम स्वराज्य काल की बातें बताते हुए बताएँगे।

हमारा कहना यह है कि जवाहरलाल जी अक्तूबर की क्रान्ति की प्रशंसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते हैं और हिन्दुस्तान के जांबाज क्रांतिकारियों की निन्दा करते हैं। वे सफेद को काला और काले को सफेद कह रहे हैं।

आतंकवाद सदा जीवित रहता है। वह आज भी जीवित है हिन्दुस्तान अथवा हिन्दुस्तान से बाहर भी। कहा नहीं जा सकता कि कभी ऐसा समय आएगा, जब लोग स्वेच्छा से भली राह पर चलने लगेंगे और तब उनको डराने-धमकाने की आवश्यकता नहीं रहेगी। परन्तु अमेरिका के प्रधान कैनेडी और उनके भाई जॉन कैनेडी की हत्या, किंग मार्टिन लूथर की हत्या और इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ के मुख्य सचिव की हत्या, यह सिद्ध करती है कि अभी आतंकवाद का काल समाप्त नहीं हुआ। कारण स्पष्ट है कि संसार में आततायी और मूर्ख अभी भी विद्यमान हैं।

यहाँ विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि जवाहरलाल जी गांधी जी के शिष्य होकर रूस की क्रांति की प्रशंसा करते हैं। केवल इतना ही नहीं, वरन वे ऐसी ही क्रांति दूसरे देशों में भी करना चाहते हैं।

:: 7 ::

नेहरू कम्युनिज़्म के विषय में लिखते हैं—

A study of Marx and Lenin produced a powerful effect on my mind and helped me to see history and current affairs in a new light. The long chain of history and of social development appeared to have some meaning, some sequence, and the future lost some of its obscurity. The practical achievements of Soviet Union were also tremendously impressive. Often I disliked or did not understand some development there and it seemed to me to be too closely concerned with the opportunism of the moment or the power politics of the day. But despite all these developments and possible distortions of the original passion for human betterment, I had no doubt that the Soviet Revolution had advanced human society by a great leap and had lit a bright flame which could not be smothered, and that it

मार्क्स और लेनिन के अध्ययन ने मेरे मन पर बहुत प्रबल प्रभाव उत्पन्न किया है। इसने इतिहास और वर्तमान घटनाओं को एक नवीन रंग में उपस्थित किया है। ऐतिहासिक घटनाओं की एक लम्बी शृंखला और सामाजिक प्रगति अब अर्थ-युक्त प्रतीत होने लगी है। इसमें कुछ क्रम दिखाई देने लगा है और भविष्य का अनिश्चितपन कुछ मिट गया है। सोवियत यूनियन की व्यावहारिक सफलता ने भी मेरे मन पर बहुत प्रभाव डाला है। कई घटनाएँ मैंने पसन्द नहीं कीं और मैं समझ नहीं सका। मैं समझता हूँ कि वे समय की देन थीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

had laid the foundations for that 'new civilization' towards which the world would advance....

Much in the Marxist philosophical outlook I could accept without difficulty.[142]

....Marx's general analysis of social development seems to have been remarkably correct...[143]

अथवा राजनीतिक शक्ति को प्राप्त करने के कारण थीं। इन घटनाओं के होने में मानव कल्याण के लिए जोश का विकृत हो जाना भी कारण हो सकता है। मैं नि:सन्देह कह सकता हूँ कि सोवियत क्रांति ने मानव समाज को एक बड़ी छलांग में आगे बढ़ाया है। इसने एक प्रकाश-युक्त ज्योति जलाई है जो अब बुझाई नहीं जा सकती और इसने एक नवीन संस्कृति की नींव रख दी है जिधर विश्व प्रगति करेगा...

मार्क्स की मीमांसा और दृष्टिकोण में बहुत कुछ मैं सहज ही स्वीकार कर सकता हूँ।

मार्क्स का सामाजिक घटनाओं का विश्लेषण सर्वथा ठीक प्रतीत होता है।

इससे स्पष्ट कथन अन्य नहीं हो सकता। जवाहरलाल जी का स्वराज्य काल में कम्युनिस्टों से प्रेम, उनके दोषों को न देखना, देश को मार्क्स की मीमांसा के अनुसार चलाने का यत्न, कम्युनिस्टों की भाँति विरोधी पक्ष वालों को बदनाम कर समाप्त करना, देश की विदेश नीति को सदा रूस की ओर झुकाए रखना इत्यादि राज्य-काल के पूर्ण कार्यों का विवरण जवाहरलाल जी के उक्त कथन का समर्थन ही हैं।

यदि यह कहा जाए कि जवाहरलाल जी जान-बूझ कर कम्युनिस्ट विचारधारा को गलत-सलत कर अपने पाठकों को धोखा दे रहे थे, तो कुछ गलत न होगा। जिस किसी ने भी कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा-पत्र पढ़ा है और वह ईमानदार है, तो वह जवाहरलाल जी की भाँति इस वाद की और कार्ल मार्क्स की प्रशंसा नहीं कर सकता। कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र कार्लमार्क्स का लिखा हुआ है। घोषणा-पत्र के अन्तिम शब्द इस प्रकार हैं—

The Communists disdain to conceal their views and aims. They openly declare that their ends can be attained only by the forcible overthrow of all existing social conditions. Let the ruling class tremble at a communist revolution.[144]

कम्युनिस्ट अपने विचारों और उद्देश्यों को छिपाकर रखने से घृणा करते हैं। वे खुलेआम घोषणा करते हैं कि उनके उद्देश्यों की पूर्ति वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों को बलपूर्वक विनष्ट करने से हो सकती है। शासक श्रेणी को कम्युनिस्ट क्रांति के भय से काँपना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विस्मय करने की बात तो यह है कि अहिंसा और सत्याग्रह के उपासक श्री नेहरू उक्त घोषणा करने वाले कार्लमार्क्स की प्रशंसा के पुल बाँध रहे हैं। इसी से यह कहा जाता है कि गांधीवादियों की अहिंसा की नीति उनकी भीरुता की सूचक थी। हम सोवियत राज्य-पद्धति तथा मार्क-मीमांसा के विषय में श्री नेहरू के ही शब्दों में लिख देना चाहते हैं। आप अपनी पुस्तक 'सोवियत रशिया' में लिखते हैं।...

सोवियत (सोशलिस्ट) विचार खुले रूप में यह मानता है कि समाज में भिन्न-भिन्न गुट (Groups) उपस्थित हैं। इनको वर्ग (Classes) कहते हैं। प्रत्येक वर्ग का अपना आर्थिक हित होता है। जब तक ये वर्ग रहेंगे तब तक सरकार इन वर्गों की शक्ति का प्रतिबिम्ब होगी। इतिहास का लम्बा विवरण इन वर्गों के भीतर हो रहे युद्धों तथा संघर्षों का विवरण है। यह है इतिहास की आर्थिक विवेचना....

एक वर्ग का प्रभुत्व दूसरे पर सरकार के द्वारा नहीं रहा है। दूसरे वर्गों को प्राय: छलना खेल कर अपने अधीन रखा जाता है। अत: शासक वर्ग में परिवर्तन धीरे-धीरे होता है तो वह अपना अधिकार ईश्वरीय कहने लगता है। इस प्रकार वह वर्ग अपने अधि-कारों को सुरक्षित रखने लगता है।....[145]

यह मीमांसा सर्वथा मार्क्स की है। मार्क्स समाज को आर्थिक विचार से वर्गों में बाँटता है। पूर्ण भूल यहीं से आरम्भ होती है।

हम पूछते हैं कि क्या ये वर्ग हिन्दुओं की जातियों की भाँति जन्म से हैं अथवा इनमें नए लोग आते रहते हैं और पुराने निकलते रहते हैं। यदि ये ऐसे हैं कि इनमें लोग आ सकते हैं और जा सकते हैं तो फिर इनका वर्ग-हित (Class interests) नहीं हो सकता। वर्ग का सामूहिक हित तब हो सकता है जब वर्ग के घटकों में परिवर्तन न हो सकता हो।

उदाहरण के रूप में एक ज़मींदार है। यदि एक मजदूर का जमींदार हो सकना वर्जित हो तब तो जमींदारों का वर्ग बन सकता है और वर्ग-हित की बात हो सकती है। जमींदार का बेटा जमींदार होता है, यह ठीक है परन्तु एक किसान का बेटा भी जमींदार हो सकता है। इसकी मनाही कहीं नहीं।

इसी प्रकार एक साहूकार (Money lender) है। साहूकार का बेटा साहूकार हो सकता है। वह पैतृक सम्पत्ति का स्वामी होगा, परन्तु वह अपनी मूर्खता एवं बिगड़े आचरण से निर्धन हो, साहूकार नहीं भी रह सकता अथवा एक निर्धन अपनी बुद्धि के बल पर धनी बन साहूकार भी बन सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी स्थिति में जमींदार अथवा साहूकार स्वाभाविक वर्ग नहीं हो सकते। न ही मजदूर कोई स्थिर वर्ग है।

इस पर भी कभी सम्पत्तियुक्त अथवा चतुर व्यक्ति राज्य-सत्ता को प्रभावित कर दूसरों पर अन्याय कर सकते हैं। इसके लिए राज्य को सुदृढ़ तथा न्यायप्रिय बनाने की आवश्यकता है न कि सम्पत्तिधारियों की सम्पत्ति छीन लेने की।

जब मूर्ख लोग राज्य में सत्ता सम्पन्न बनने लगे तो फिर सब वर्गों के दुष्ट राज्य पर प्रभाव जमाने लगेंगे।

यह देखा गया है कि मूर्ख तथा दुर्बल राजाओं अथवा प्रधान-मन्त्रियों के नाई अथवा ड्राइवर भी उन पर प्रभाव जमा लेते हैं। तो क्या नाइयों के तथा ड्राइवरों के काम दूषित हो गए?

जब राजा लोग निरंकुश अर्थात् विद्वानों के नियन्त्रण से बाहर हुए तो वे अपने भंगी, चमारों, नौकरों, ड्राइवरों के प्रभाव में चलने लगे अथवा सम्बन्धियों, मित्रों, धन वालों इत्यादि के प्रभाव में चलने लगे।

लोगों ने समझा कि राजाओं को हटा कर प्रधान मन्त्री बनाओ। परन्तु जब वे भी निरंकुश शक्ति से सम्पन्न हुए तो उन पर भी विद्वानों का नियन्त्रण नहीं रहा। इस पर वे कैरों, साराबाई, मालवीय और पटनायक इत्यादि जैसों की उंगलियों पर नाचने लगे। दोष किसी के धनी अथवा जमींदार होने का नहीं। न ही इनका कोई स्थिर वर्ग है। दोष है शासकों के निरंकुश हो जाने का और उनको सम्पूर्ण प्रभुतासम्पन्न बनने की स्वीकृति देने का। आज पार्लियामेंट एक पूर्ण प्रभुतासम्पन्न (Sovereign) संस्था है। पार्लियामेंट पर विद्वानों का अंकुश नहीं। इस कारण यह विभिन्न वर्गों, व्यक्तियों तथा विशेष रूप में स्त्रियों के प्रभाव में आ जाती है। संसद का निर्वाचित होना, किसी प्रकार से भी इसके किसी अंकुश में होने का प्रतीक नहीं है। यह मान भी लिया जाए कि ऐसा समय आ जाएगा जब निर्वाचन पूरा स्वतन्त्रतापूर्वक हो सकेंगे और जनता प्रत्याशियों के हथकंडों को समझने की योग्यता प्राप्त कर लेगी। तब भी तो संसद् सदस्य को पाँच वर्ष उपरान्त ही हटाया जा सकता है। और यह देखा गया है, कि पाँच वर्ष में भी एक सदस्य क्या कुछ अन्धेर मचा सकता है।

शासक, भले ही वह वयस्क मतदान से निर्वाचित हो Sovereign (निरंकुश) नहीं होना चाहिए। अंकुश विद्वानों का होना चाहिए। विद्वान के लक्षण शास्त्र में लिखे हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शमो दमस्तपः शौच क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥[146]

शान्त स्वभाव, इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखने वाले, तपस्वी, मन-वचन-कर्म से शुद्ध रहने वाले, क्षमा तथा सरलता का स्वभाव रखने वाले, लौकिक ज्ञान तथा ब्रह्म के ज्ञाता, आस्तिक बुद्धि ब्राह्मण (विद्वान) के स्वाभाविक कर्म हैं।

ऐसे लोग जब राज्यसत्ता सम्पन्न लोगों पर नियन्त्रण रखते हैं तब कोई वर्ग किसी राज्य पर प्रभाव जमा कर किसी प्रकार का अनुचित कार्य नहीं करा सकता। इसमें भी एक आवश्यक शर्त है कि विद्वान भी राज्य का सेवक नहीं होना चाहिए। ब्राह्मण कभी भी वेतनधारी नहीं हो सकता।

हमारा तो कहना है कि यह मीमांसा ही मिथ्या है कि समाज में आर्थिक दृष्टि से वर्ग हैं और वे वर्ग संघर्ष कर रहे हैं; धनवान वर्ग राज्य पर प्रभाव रख सकता है इत्यादि।

वर्ग और वर्ग-हित तब हो सकते हैं जब वर्गों में केवल जन्म से ही आने वाले लोग हों। न तो कोई धनी सदा धनवान रहने का विश्वास रखता है न ही किसी निर्धन के धनवान बनने में बाधा है।

यदि वर्ग माने जाएँ तो श्री जवाहरलाल जी किस वर्ग के हैं? क्या वह भी जनता को धोखा देकर अपने वर्ग की भारत सरकार पर प्रभुता दिलवा रहे थे? हम तो इस सब युक्ति को ही अनर्गल मानते हैं।

दोष राज्य में है। राज्य की मूर्खता अथवा दुर्बलता के कारण अनिच्छित लोग अथवा वर्ग राज्य पर प्रभाव जमा लेते हैं। क्या ऐसा जवाहरलाल जी के राज्य में नहीं हुआ है? यह इस कारण हुआ है कि राज्य मूर्ख और अयोग्यों के हाथ में चला गया था।

रूस में 'सोवियत' उन सभाओं को कहते हैं जो सोशलिस्ट हैं और रूस पर शासन करती हैं। ये 'सोवियत' गाँव-गाँव में और मुहल्ले-मुहल्ले में बनी हैं। परन्तु इनमें सब लोग सम्मिलित नहीं किए जाते। इन 'सोवियतों' के विषय में जवाहरलाल जी अपनी पुस्तक में लिखते हैं—

"जिस सिद्धान्त से लोग सोवियत में लिये जाते हैं या निकाले जाते हैं, इस प्रकार है—जो व्यक्ति अथवा वर्ग समाज की उन्नति के लिए आवश्यक अथवा लाभकारी होता है, वह सम्मिलित कर लिया जाता है अथवा वे लोग तथा वर्ग जो प्रगतिशील होते हैं उस में ले लिए जाते हैं।[147]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् जब आवश्यकता अथवा उपकारिता नहीं रहती, तब वे निकाल दिए जाते हैं। सबसे भयानक बात है 'जो प्रगतिशील नहीं माने जाते।' किसी को सोवियत में लेने का अथवा निकालने का 'प्रगतिशील' सुगमता से बहाना बनाया जा सकता है।

सोवियत सदस्यों की संख्या 1963 में रूस की पूर्ण जनता का चार प्रतिशत थी। सबसे मज़ेदार यह बात है कि 'सोवियत' का मन्त्री सर्वशक्तिसम्पन्न होता है और वह सोवियत से निर्वाचित नहीं होता, न ही वह सोवियत के अधीन होता है।

पूर्ण रूस की सोवियत यूनियन का मन्त्री (General Secretary) राज्यों की, सोवियतों के मन्त्री नियुक्त करता है। राज्यों की सोवियत के मन्त्री जिला की सोवियतों के मन्त्रियों की नियुक्ति करते हैं और जिलों के मन्त्री प्रारम्भिक अर्थात् गाँव की सोवियतों के मन्त्रियों को। मन्त्री किसी को उपकारी और आवश्यक अथवा प्रगतिशील मान कर सोवियत में ले सकता है अथवा अनुपकारी घोषित कर तथा उसके प्रगतिशील न रहने पर उसको निकाल सकता है। यह है रूस की यू.एस.एस.आर. का ढाँचा जिसकी नेहरू साहब बहुत प्रशंसा करते हैं।

यदि इस प्रक्रिया को देखा जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि देश का प्रधान मन्त्री पूर्ण रूप में देश का तानाशाह (dictator) होगा। इस डिक्टेटर की इच्छा पर पूर्ण देश का आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवहार चलता है।

'सोवियतों' की सिफारिश, वस्तुत: सोवियतों के मन्त्रियों की सिफारिश पर देश की सेवा में, पुलिस, खुफिया पुलिस तथा अन्य आवश्यक सेवाओं में भरती की जाती है। ये चार प्रतिशत लोग रूस के शासक हैं और इनके निर्वाचन का पूर्ण दायित्व प्रधान मन्त्री पर है। इन चार प्रतिशत पर भी नियन्त्रण रखा जाता है। नियंत्रण प्रधान मन्त्री का सोवियत के मन्त्रियों द्वारा होता है।

जवाहरलाल जी लिखते हैं—

There is generally a big non-communist majority in the village soviet, but a few communists are always present, and as these are usually the most active and intelligent members, their influence is considerable.[148]

साधारण रूप में गाँव की सोवियत में गैर कम्युनिस्ट अधिक होते हैं, परन्तु कुछ कम्युनिस्ट वहाँ अवश्य होते हैं। क्योंकि वे प्राय: अधिक बुद्धिमान और सजग होते हैं। उनका प्रभाव बहुत अधिक होता है।

जवाहरलाल जी भी बहुत भोली बात कह गए हैं। भला ये कम्युनिस्ट जो अधिक बुद्धिशील और सजग होते हैं कौन होते हैं ? ये कैसे सोवियत में आते हैं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी ने जवाहरलाल जी को बहका दिया है अथवा जवाहरलाल जी जान-बूझकर हिन्दुस्तानी जनता को मूर्ख बना रहे हैं।

ये कम्युनिस्ट कोई सींगधारी आकाश से उतरे हुए जीव-जन्तु नहीं होते। वरंच ये सरकार की ओर से पौलिटिकली-शिक्षित (doctrinated) परीक्षा लेकर गाँव-गाँव में भेजे जाते हैं और गाँव की सोविएट मन्त्री को आज्ञा होती है कि इनको प्रगतिशील मानकर सोवियत में सम्मिलित कर लिया जाए। ये लोग एक ओर गाँव की सोवियत पर शासन करते हैं, खुफिया पुलिस का काम करते हैं और दूसरी ओर सरकार के विरोधी लोगों की सूची बना-बनाकर उनको कॉन्सेन्ट्रेशन कैम्पों में भेजने की सिफारिश करते हैं। वास्तव में ये लोग हैं जो देश में कम्युनिस्ट सरकार का आतंक बनाते हैं।

यह सब ढंग अति भयानक और मानसिक स्वतन्त्रता का घातक है। ये कम्युनिस्ट, बुद्धिशील, सजग सदस्य सब सोविएटों में गाँव, जिला, राज्य, नगर मुहल्लों कारखानों स्कूलों कालेजों, विश्वविद्यालयों अभिप्राय यह कि सब जगह होते हैं। इनकी कृपा से ही रूस में चुपचाप लाखों लोग प्रतिवर्ष कन्सेन्ट्रेशन कैम्पों में भेजे जाते हैं और सहस्रों मृत्यु-दण्ड पा जाते हैं।

मास्को और अन्य बड़े नगरों में कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता निर्माण करने के स्कूल खुले हैं और वे कार्यकर्त्ता शिक्षा प्राप्त कर रूस की जनता की विचार स्वतन्त्रता का हनन करने के लिए देशभर में भेजे जाते हैं।

जवाहरलाल जी यह मिथ्या प्रचार अनजाने में कर गए हैं अथवा सबकुछ जानते हुए कर गए हैं, दोनों अवस्थाओं में हिन्दुस्तान की सरल चित्त जनता को गलत मार्ग दिखाने का पाप कर गए हैं।

आप कह गए हैं—

But still the communist philosophy of life gave me comfort and hope.[149]	*इस पर भी कम्युनिस्ट जीवन-मीमांसा मुझे शान्ति और आशा प्रदान करती है।*

और यह कम्युनिस्ट जीवन-मीमांसा क्या है? इसका एक अंश कि मानव समाज वर्गों में बंटी है, ऊपर लिख चुके हैं। और भी देखिए।

सन् 1935 में जवाहरलाल जी यूरोप में थे। वे कमला नेहरू की तीमारदारी के लिए वहाँ गए हुए थे। वहाँ पर रहते हुए कुछ लोगों से उनका पत्र-व्यवहार चलता रहा था। पत्र-व्यवहार करने वालों में एक लॉर्ड लोथियन भी थे। लॉर्ड लोथियन चाहते थे कि कांग्रेस सन् 1935 का संविधान मान ले। श्री नेहरू जी इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधान को मानने के विरुद्ध थे। इस पत्र-व्यवहार में लॉर्ड लोथियन ने समाजवाद के विषय में भी लिखा था। लॉर्ड लोथियन लिखते हैं—

You may say that I am ignoring the economic factor—the Marxian thesis. I don't think I am. Marx overstates the case for the materialist or economic interpretation of hitsory. Economics profoundly influence and in some degree control current religious, political and social thinking, but they are essentially secondary. Capitalism stimulates acquisitiveness but it also immensely raises the standard of living. It also exaggerates the evils of international anarchy, but it does not create it. It may produce competition, but it does not create civil war inside the state. In any case I do not think there is any doubt that in practical politics the political phase come first—except in the wholly exceptional circumstances of Russia when you had the collapse of an effete Tsarism through defeat in an external war combined with the existence of an exceptionally well-led revolutionary movement....[150]

आप कह सकते हैं कि मैं आर्थिक दृष्टिकोण को छोड़ रहा हूँ, अर्थात् मार्क्स के विचारों को। मैं समझता हूँ कि नहीं। मार्क्स ने इतिहास की विवेचना करते हुए अर्थ के प्रभाव को अधिक करके वर्णन किया है। यह ठीक है कि अर्थ-व्यवस्था प्रभाव डालती है और कई हालतों में नियन्त्रण करती है, मज़हबी, राजनीतिक और सामाजिक विचारों को, परन्तु निश्चय ही यह प्रभाव और नियन्त्रण गौण है। पूँजीवाद, प्राप्त करने की इच्छा को प्रोत्साहन देता है, परन्तु साथ ही यह जीवन-स्वर को बहुत सीमा तक ऊँचा भी करता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाता है, परन्तु यह उनको पैदा नहीं करता। यह परस्पर प्रतिस्पर्धा को पैदा करता है परन्तु यह किसी राज्य में गृहयुद्ध उत्पन्न नहीं करता। किसी भी अवस्था में मैं समझता हूँ कि व्यावहारिक राजनीतिक में निःसन्देह राजनीतिक काल पहले आता है (और अर्थव्यवस्था का पीछे), रूस में विशेष परिस्थिति के कारण कुछ उल्टा हुआ। इसमें कारण यह था कि किसी बाहरी देश के साथ युद्ध में पराजय होने के साथ आभ्यान्तरिक क्रान्तिकारी आन्दोलन सफलता से चलाया जा सका था। परन्तु ये अपवाद हैं।

जवाहरलाल जी इस पत्र के उत्तर में समाजवाद की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं—

The two ideals you have mentioned run into each other and I do not think they can be separated. The second ideal, of Socialism, indeed includes the first, and it may be said that real world order and peace will

दो आदर्शों (स्वराज्य और समाजवाद) के विषय में आपने लिखा है। वे एक-दूसरे में मिले-जुले हैं। मैं समझता हूँ कि वे पृथक् पृथक् नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

only come when Socialism is realised on a world scale.[151]

किए जा सकते। दूसरा आदर्श समाजवाद का सत्य ही पहले को भी अपने भीतर ही रखता है और यह कहा जा सकता है कि दुनिया में वास्तविक न्याय और शान्ति तब आएगी जब समाजवाद पूर्ण दुनिया में प्रचलित हो जाएगा।

जवाहरलाल जी ने लॉर्ड लोथियन के दो आदर्शों को, एक साम्राज्यवाद को मिटाना और दूसरे समाजवाद को स्थापित करना, एक-दूसरे में मिला हुआ माना है। यह इसलिए कि जवाहरलाल जी यह समझते हैं कि साम्राज्यवाद के आधार में केवलमात्र आर्थिक उन्नति ही है। यह बात सर्वथा सत्य नहीं है। साम्राज्य का विस्तार और स्थापना स्वरक्षा के विचार से भी की जाती है। जैसे—हिन्दुस्तान की ब्रिटिश सरकार तिब्बत में अपने अधिकार बनाए हुए थी। इसी प्रकार हिन्दुस्तान की ब्रिटिश सरकार काबुल में अपना प्रभाव रखे हुए थी और वहाँ किसी अन्य देश के प्रभाव का विरोध करती थी। रूस ने हंगरी एवं रूमानिया में यही कर रखा है। चीन ने हिमालय पर अधिकार इसी प्रयोजन से किया है।

जवाहरलाल जी का यह विचार कि स्वशासन और समाजवाद साथ-साथ चलते हैं, मिथ्या है। दुनिया में अनेक देश हैं जहाँ समाजवाद नहीं और वहाँ स्वशासन चल रहा है और जनता को उतना ही और कहीं-कहीं तो उससे भी अधिक सुख-सुविधा पहुँचा रहा है।

यदि 1935 का विधान मान लिया जाता तो क्या होता; इस समय कहना कठिन है। इतना निश्चय है कि गांधी जी और जवाहरलाल जी ने अन्य नेताओं के विचारों में इतना विभ्रम फैला रखा था कि कुछ स्थिर नहीं था।

गांधी जी अहिंसा की वेदी पर पाकिस्तान की नींव डाल रहे थे। छोटा-सा समुदाय सिक्खों का भी, पूर्ण देश की स्वतन्त्रता के मार्ग में बाधाएँ खड़ी कर रहा था। मुसलमानों का पूर्ण आन्दोलन ही गांधी जी और गांधी के प्रभृति विचार वालों का निर्माण किया हुआ था। देश में राष्ट्रीय विचार के लोगों को राष्ट्र के नाम पर एकत्रित होने का अवसर भी नहीं दिया गया। देश के लिए सर्वस्व बलिदान करने वाले प्रायः हिन्दू थे और उनको राजनीति में अछूत, मान, आन्दोलन से पृथक् रखा जाता था। जनसाधारण इन बातों को जानता नहीं था। कारण यह कि पूर्ण अंग्रेज़ी प्रेस, नेहरू और गांधी जी के नाम की डुग्गी पीट रहा था। प्रेस समझता था कि नेहरू तथा गांधी से ही उनका काम चल सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यथा यदि राष्ट्रीयता के नाम पर संगठन चलाया जाता, तो मुसलमान सिर उठा ही न सकते। अंग्रेज़ अपनी दुर्बलता के कारण जा रहे थे, परन्तु गांधी जी ने राष्ट्रवादियों को अहिंसा के चक्र में डाल कर दुर्बल कर रखा था।

नेहरू जी ने समाजवाद का हो-हल्ला कर सम्पत्ति रखने वालों और सम्पत्ति विहीनों में झगड़ा खड़ा कर रखा था। इस प्रकार राष्ट्रीय शक्तियों को दुर्बल कर देश का बँटवारा कराया गया।

:: 8 ::

पंडित मदनमोहन मालवीय और तिलक जी राजनीति क्षेत्र से धकेलकर बाहर कर दिए गए। दोनों का दोष यह था कि वे बुद्धिशील थे और हिन्दू धर्म पर निष्ठा रखते थे। गांधी जी इन नेताओं के विरुद्ध थे और नेहरू परिवार के पक्ष में थे। नेहरू परिवार हिन्दू शब्द हिन्दू आचार और व्यवहार से घृणा करता था। गांधी जी हिन्दुओं में अपनी ख्याति के कारण इस अहिन्दू परिवार की रक्षा करते थे।

मोतीलाल जी के मन में उत्कट इच्छा थी कि हिन्दू और मुसलमान में सीमा रेखा मिट जाए। मुसलमान वे रेखा एक ही शर्त पर मिटाने को तैयार थे। वह यह कि सब हिन्दू मुसलमान हो जाएँ। मोतीलाल जी इसमें कोई हानि नहीं मानते थे। अन्य थे जो हिन्दुओं के अस्तित्व को प्रबल रखना चाहते थे। नेहरू पिता-पुत्र ऐसा चाहने वालों के विरोधी थे। यही कारण है कि जब स्वामी श्रद्धानन्द जी की हत्या हुई, तब इनको चिन्ता हो गई कि कहीं हिन्दू इसका प्रतिकार न लें।

केवल हिन्दू-मुसलमान का ही प्रश्न नहीं था, जिसमें गांधी जी अपने आपको निष्ठावान् हिन्दू कहते हुए मुसलमानों का पक्ष लेने वालों की सहायता और उनको ऊँचा करते रहे, वरंच राजनीतिक और आर्थिक विषयों में भी इनके सामने नतमस्तक होते रहे।

जवाहरलाल नेहरू मास्को से होकर आए और लेख तथा पुस्तकें रूस और कम्युनिज़्म के पक्ष में लिखते रहे। तब भी गांधी जी इनकी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सीना तानकर इसके आगे खड़े रहे।

हमने यह बताया है कि जवाहरलाल जी की बुद्धि किस स्तर की थी। वे तीन दिन तक मास्को में रहकर अपने को मार्क्ससिज़्म और रूसी सरकार के विशेषज्ञ समझने लगे थे। वे हिन्दुस्तान में आते ही कम्युनिज़्म का प्रचार करने लगे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे दिसम्बर 1927 में यूरोप से लौटे और आते ही वे मद्रास कांग्रेस अधिवेशन में उपस्थित होने चले गए। इस अधिवेशन के प्रधान डाक्टर अन्सारी थे। जवाहरलाल जी ने वहाँ कई प्रस्ताव पास कराए। उन प्रस्तावों की दिशा कम्युनिज़्म की ओर थी। गांधी जी उस अधिवेशन में नहीं गए थे। उन्होंने, जब वे प्रस्ताव पढ़े तो जवाहरलाल जी को एक पत्र लिखा। इस पत्र में लिखा—

I feel that you love me too well to resent what I am about to write. In any case I love you too well to restrain my pen when I feel I must write.

You are going too fast. You should have taken time to think and become acclimatized. Most of the resolutions you framed and god carried could have been delayed for one year. Your plunging into the "republican army" was a hasty step. But I do not mind these acts of yours so much as I mind our encouraging mischief-makers and hooligans.[152]

मैं अनुभव करता हूँ कि तुम मुझसे इतना प्रेम करते हो कि मेरे इस लिखने पर नाराज़ नहीं होगे। मैं भी तुमसे बहुत प्रेम करता हूँ और इसी कारण मैं अपनी लेखनी को रोक नहीं सकता, जबकि मैं समझता हूँ कि मुझे लिखना चाहिए।

तुम बहुत तेज़ी से भागे चले जा रहे हो। तुमको विचार करने और यहाँ के वायुमण्डल के अनुकूल होने के लिए कुछ देर तक ठहरना चाहिए था। बहुत-से प्रस्ताव जो तुमने पास करा लिये हैं, कुछ काल के लिए रोके जा सकते थे। कम-से-कम एक वर्ष के लिए। तुम्हारा 'रिपब्लिकन आर्मी' में सम्मिलित हो जाना एक उतावली का पग है। इस पर भी मैं तुम्हारे इन कामों को इतना बुरा नहीं मानता, जितना तुम्हारा शरारती और गुंडों को प्रोत्साहन देना...

नेहरू जी ने इस बात की क्या सफाई दी, यह हमारे विचार का विषय नहीं है। हमारा तो यह कहना है कि 1927 में मद्रास कांग्रेस में जवाहरलाल जी ने न केवल समाजवाद की ओर मुख करने वाले बहुत-से प्रस्ताव पास करा लिये थे, प्रत्युत वे एक कम्युनिस्ट दल के सदस्य भी बन गए थे।

गांधी जी में जवाहरलाल जी के लिए भारी दुर्बलता थी। वे नेहरू परिवार से या तो भयभीत थे अथवा बिना विचार किए, कि वह किधर को जा रहा है, उसकी क्रियाशीलता पर मुग्ध हो उसके पीछे-पीछे भागने लगे थे।

हमारा कहना तो यह है कि महात्मा जी जवाहरलाल जी के विचार जानते थे, इस पर भी वे उनको अपने साथ रखे हुए थे अथवा स्वयं उनके साथ चल रहे थे। दोनों के मतभेद का एक और प्रमाण हम गांधी जी के शब्दों में ही दे देना चाहते हैं। ऊपर एक उद्धरण उस पत्र में से दिया है जो गांधी जी ने जवाहरलाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी को 4 जनवरी, 1928 को लिखा था। नीचे हम 17 जनवरी, 1928 के एक अन्य पत्र में से एक अंश दे रहे हैं—

....I see quite clearly that you must carry on open warfare against me and my views. For, if I am wrong I am evidently doing irreparable harm to the country and it is your duty after having known it to rise in revolt against me. Or, if you have any doubt as to the correctness of your conclusions, I shall gladly discuss them with you personally. The differences between you and me appear to me to be so vast and radical that there seems to be no meeting ground between us.[153]

मुझको समझ आ रहा है कि तुम मेरे विरुद्ध और मेरे विचारों के विपरीत खुला युद्ध आरम्भ करोगे। यदि मैं गलत हूँ तो निःसंदेह मैं देश को न पूरी की जाने वाली हानि पहुँचा रहा हूँ तब यह जानकर तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम मेरे विपरीत विद्रोह कर दो। यदि तुमको अपने विचारों के ठीक होने में कुछ भी संदेह हो तो तुम मुझसे मिलकर बात कर सकते हो। इससे मुझे प्रसन्नता होगी। मुझे तो अन्तर इतना अधिक प्रतीत होता है और वह इतना सैद्धान्तिक है कि हम दोनों के लिए कोई मेल का स्थान नहीं रहा।

इस पत्र के उपरान्त ही महात्मा जी मेरठ केस के अभियुक्तों को देखने मेरठ जेल में गए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि महात्मा जी नेहरू को अपने साथ रखने के लिए ये सिद्धान्तों की बात भी भूल गए थे।

:: 9 ::

मेरठ षड्यन्त्र का मुकद्दमा यह था कि बम्बई में और देश के कुछ अन्य भागों में रूसी धन से ये लोग कम्युनिज़्म का प्रचार कर रहे थे। बम्बई की मिलों में काम करने वाले मजदूरों में इनका काम बहुत जोरों से चल रहा था। यह आन्दोलन केवल मजदूरों की अवस्था सुधारने के लिए होता तो अंग्रेज़ नौकरशाही प्रसन्न होती। बम्बई के मिल मालिकों ने गांधी जी के आन्दोलनों में बहुत सहायता दी थी। उनका सबकुछ भी बरबाद हो जाता, तो अंग्रेज़ को किंचित्मात्र भी शोक न होता। बम्बई की मिलों के तबाह होने पर मानचेस्टर की मिलों को लाभ होता।

वास्तविक बात यह थी कि तब भी ये कम्युनिस्ट हिन्दुस्तान में क्रांति उत्पन्न कर हिन्दुस्तान को रूस का पिछलगू बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ सरकार का उद्देश्य तो इंग्लैंड के हित में रूसी सरकार को हिन्दुस्तान में पग न जमाने देना था। नेहरू कम्युनिस्ट थे और इससे पहले रूस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कम्युनिज़्म के विषय में लेख लिख चुके थे। इस कारण उनका मेरठ मुकद्दमे में अभियुक्त की रक्षा के लिए यत्न करना स्वभाविक ही था।

परन्तु गांधी जी को यह विचार करना चाहिए था कि हिन्दुस्तान रूस के अधीन किसी प्रकार भी लाभ में नहीं होगा। गांधी जी ने अन्धाधुन्ध नेहरू जी के कहने पर 'मेरठ केस' को एक राष्ट्रीय प्रश्न बना दिया।

हमारे कथन का समर्थन उन अभियुक्तों के नाम पढ़ने से होगा जो इस मुकद्दमे में फँसे हुए थे। इनमें श्री डांगे, मिस्टर अब्दुल मजीद, श्री केदारनाथ सहगल, मिस्टर फिलिप्स स्प्रैट और एम.एन. राय थे। फिलिप्स स्प्रैट उस समय इंग्लैंड की कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य थे। अब्दुल मजीद पंजाब में रूसी रुपया बाँट रहा था।

जवाहरलाल जी जानते थे कि इस मुकद्दमे में अधिकांश कम्युनिस्ट हैं। इन्हीं लोगों की रिपब्लिकन आर्मी में तो वे सम्मिलित हुए थे। हमें आश्चर्य होता है गांधी जी का इनको नैतिक समर्थन देने पर।

हमारा विचार है कि यह जवाहरलाल जी को प्रसन्न करने के लिए था। जवाहरलाल जी ने अपने विचारों को कभी भी छिपाया नहीं था। इस पर भी गांधी जी ने इनको 1929 में अपने स्थान पर कांग्रेस का प्रधान बनाया। गांधी जी तो इन्हें 1927 के मद्रास अधिवेशन में ही प्रधान बनवाना चाहते थे। उनके एक पत्र से, जो उन्होंने नन्दी हिल्ल मैसूर में 25 मई 1927 को लिखा था, यह बात प्रकट होती है। आपने लिखा था—

There is some talk of your being chosen as President for the coming Congress. I am in correspondence with father about it. The outlook here is not at all happy in spite of the unanimous resolution of the A.I.C.C. on the Hindu-Muslim question. I do not know whether the proeess of breaking heads will in any way be checked.[154]

यहाँ आने वाले कांग्रेस अधिवेशन का तुम्हारे प्रधान चुने जाने पर चर्चा हो रही है। मैं तुम्हारे पिता से पत्र-व्यवहार कर रहा हूँ। हिन्दू-मुसलमान प्रश्न पर ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में सर्वसम्मत प्रस्ताव होने पर भी भविष्य उज्ज्वल प्रतीत नहीं होता। मैं नहीं जानता कि सिर फुटौअल रोकी भी जा सकेगी अथवा नहीं...

इसके उपरान्त लाहौर अधिवेशन श्री जवाहरलाल जी के प्रधानत्व में हुआ। तत्पश्चात् नमक सत्याग्रह और 1932 का सत्याग्रह हुआ। यह सब समय व्यर्थ के आन्दोलन में व्यय किया गया। इन आन्दोलनों से कांग्रेस की ख्याति तो कुछ बढ़ी, परन्तु देश स्वराज्य के निकट जाने के स्थान विघटन की ओर बढ़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन दिनों एक विशेष बात यह हुई कि कांग्रेस ने 1929 के गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में जाने से इन्कार किया और तदुपरांत नमक सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। नमक सत्याग्रह से क्या लाभ हुआ ? कोई भी बुद्धिशील व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि इस आन्दोलन से किंचित्मात्र भी लाभ हुआ हो।

एक बात यह हुई कि गांधी जी का हिन्दुस्तान के वायसराय लॉर्ड इरविन से समझौता हो गया। उस समझौते पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश सरकार ने एक इंच भर भी अपना स्थान नहीं छोड़ा और गांधी जी अपनी ग्यारह माँगों में से एक भी प्राप्त नहीं कर सके।

गांधी जी तथा पण्डित मोतीलाल और जवाहरलाल जी नमक सत्याग्रह से बहुत आशाएँ लगाए हुए थे। यह बात श्री मोतीलाल जी के सत्याग्रह से पूर्व लिखे एक पत्र से प्रकट होती है। यह पत्र आपने 17 फरवरी 1930 को डाक्टर अन्सारी को लिखा था। इस पत्र में आप लिखते हैं—

I hope you will give me the credit of fully realising what it means to me and mine to throw in my lot with Gandhiji in the coming struggle. Nothing but a deep conviction that the time for the greatest effort and the greatest sacrifice has come would have induced me to expose myself at my age and with my physical disabilities and with my family obligations to the tremendous risks I am incurring. I hear the clarion call of the country and I obey.[155]

मैं आशा करता हूँ कि आप मुझको इस बात का श्रेय देंगे कि मैं भली-भाँति समझता हूँ कि आने वाले संघर्ष में गांधी जी के साथ कूदने का कितना मूल्य मुझे, अपने और परिवार के साथ देना पड़ेगा। बिना इस बात का विश्वास हुए कि महान् प्रयास और महान् त्याग का अवसर आ गया है, मैं अपनी इस आयु में और स्वास्थ्य की अवस्था में तथा अपने परिवार की अवस्था में इसमें न कूदता। मैं बहुत बड़ा खतरा मोल ले रहा हूँ। देश का आह्वान सुन रहा हूँ और मैं उसके पीछे चल रहा हूँ।

श्री जवाहरलाल जी भी अपने स्व-रचित जीवन चरित्र में लिखते हैं कि गांधी जी ने नमक सत्याग्रह के पूर्व जो माँगें वायसराय से की हैं, वे निरर्थक हैं। आपके शब्द हैं—

...Another suprising development was Gandhiji's announcement of his "Eleven Points." What was the point of making a list of some political and social reforms—good in themselves, no doubt—when we were talking in

चकित करने वाली एक और बात गांधी जी की ग्यारह बातों की घोषणा थी। जब हम पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर चुके थे, इस प्रकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

terms of independence? Did Gandhiji mean the same thing when he used this term as we did, or did we speak a different language? We had no time to argue for events were on the move.[156]

राजनीतिक और सामाजिक सुधारों के लिए माँग करने के क्या अर्थ हो सकते थे? क्या इसके ये अर्थ नहीं थे कि गांधी जी स्वराज्य के वे अर्थ नहीं लेते थे, जो हम पूर्ण स्वतन्त्रता से समझते थे? क्या हम भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते थे? परन्तु बहस करने का समय नहीं था। घटनाएँ तेजी से चलने लगी थीं।

इन दोनों उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि पिता, पुत्र नमक सत्याग्रह से बहुत ऊँची आशाएँ लगाए हुए थे। परन्तु हुआ गांधी-इरविन पैक्ट।

जवाहरलाल इस समझौते में बच्चों की भाँति नाराज़ हो गए और गांधी जी उन्हें मनाते रहे। कराची कांग्रेस अधिवेशन में भी गांधी जी जवाहरलाल से बनाए प्रस्ताव को उपस्थित करा पारित कराने में लग गए। श्री वल्लभभाई पटेल उस प्रस्ताव को समय से पूर्व मान, उसका विरोध कर रहे थे। परन्तु जवाहरलाल जी रूठे हुए थे और गांधी जी उनको मना रहे थे।

गांधी जी से मतभेद के विषय में जवाहरलाल जी स्वयं लिखते हैं—

....He might disagree about the methods but not about the ideal. So I thought then, but I realise now that there are basic differences between Gandhiji's ideals and the socialist objective.[157]

गांधी जी उपायों के विषय में मतभेद रख सकते थे, परन्तु उद्देश्य में मतभेद प्रकट नहीं करते थे। परन्तु मैं अब विचार करता हूँ कि गांधी जी में और समाजवादी उद्देश्यों में आधारभूत अन्तर था।

हमारा यह स्थिर मत है कि किसी भी कारण से हुआ हो, 1924 से लेकर मरणपर्यन्त गांधी जी जवाहरलाल जी को अपनी ख्याति और प्रभाव का संरक्षण देते रहे और सैद्धान्तिक मतभेद होने पर भी वे जवाहरलाल जी के पीछे-पीछे चलते रहे। इसके एक-दो उदाहरण दे दें तो अधिक ठीक होगा।

1. 1927-28 में मतभेद की बात हम ऊपर बता चुके हैं और उस मतभेद के होते हुए भी गांधी जी ने अपने प्रभाव से, 1929 में लाहौर कांग्रेस अधिवेशन का प्रधान श्री जवाहरलाल को बनवाया था।

2. 1931 में गांधी जी 'इरविन पैक्ट' में संयुक्त राज्य प्रणाली के समर्थक जवाहरलाल जी के कारण हुए।

3. 1936 में पुनः जवाहरलाल जी लखनऊ कांग्रेस के प्रधान बने। यह भी गांधी जी की सहायता से। इस समय सरदार पटेल इस पद के प्रत्याशी थे। गांधी जी ने सरदार का विरोध किया। सरदार ने गांधी जी को बताया भी कि बहुमत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाहरलाल के समाजवादी विचारों का विरोध करता है, परन्तु गांधी जी माने नहीं। उन्होंने जवाहरलाल जी के लिए अपना समर्थन घोषित कर दिया और जवाहरलाल जी प्रधान चुन लिये गए।

यह बात सत्य थी कि कांग्रेस कार्यकारिणी में बहुसंख्यक समाजवाद को पमन्द नहीं करती थी।

श्री जवाहरलाल जी ने लखनऊ में अध्यक्षीय भाषण में यह कहा था—

Socialism is thus for me not merely an economic doctrine which I favour; it is a vital creed which I hold with all my head and heart. I work for Indian independence because the nationalist in me cannot tolerate alien domination; I work for it even more because for me it is the inevitable step to social and economic change. I should like the Congress to become a Socialist organization and to join hands with the other forces in the world who are working for the new civilization. But I realize that the majority in the Congress, as it is constituted today, may not be prepared to go thus far.[158]

अतः मेरे लिए समाजवाद जिसका मैं पक्ष लेता हूँ, केवल एक आर्थिक व्यवधान नहीं है वरन एक सजीव विश्वास है जिसे मैं अपनी पूर्ण बुद्धि और मन से मानता हूँ। मैं भारत की स्वतन्त्रता का कार्य कर रहा हूँ। यह इस कारण कि मुझमें हिन्दुस्तानीपन विपक्षियों का प्रभुत्व सहन नहीं कर सकता। मैं इसके लिए और भी लग्न से कार्य कर रहा हूँ, क्योंकि इसका अनिवार्य परिणाम सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन होंगे। मैं चाहूँगा कि कांग्रेस समाजवादी संस्था बन जाए जो भूमण्डल की अन्य शक्तियों, जो नई सभ्यता का कार्य कर रही हैं, से सहयोग कर सके। परन्तु मैं जानता हूँ कि कांग्रेस, जिस प्रकार यह आज संगठित है, इतनी दूर तक नहीं जा सकेगी।

इस विषय में नेहरू का जीवन-चरित्र लिखने वाले फ्रैंक मौरेस लिखते हैं—

While listening to him respectfully the Congress was not prepared to follow his lead in every detail. It joined with him in condemning the Government of India Act and in resolving to contest the elections. But on the question of office acceptance it kept the issue open, leaving the All India Congress Committee to decide it at the proper moment.

Nor did the Congress approach economic problems with the revolutionary outlook which Jawaharlal favoured.[159]

आदरयुक्त भाव में उनकी बात सुनते हुए भी, कांग्रेस उनके नेतृत्व में चलने को तैयार नहीं थी। कांग्रेस ने गवर्नमैंट ऑफ इण्डिया ऐक्ट (1935) की निन्दा में उनका साथ दिया, परन्तु निर्वाचन लड़ने का निर्णय किया। मन्त्रिमण्डल बनाने के विचार को निश्चय किए बिना स्थगित कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेस ने जवाहरलाल जी की उग्र आर्थिक नीति का समर्थन नहीं किया। कृषि-सम्बन्धी सुधारों पर भी इसने केवल अपनी पहली बात ही दोहराई कि किसानों पर दबाव और कठिनाइयाँ दूर की जाएँगी।

इससे स्पष्ट है कि गांधी जी ने देश और कांग्रेस के मन के विपरीत जवाहरलाल को देश पर थोपा था।

4. गांधी जी कांग्रेस से पृथक् हो जाने पर भी कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में उपस्थित थे। यही कारण है कि समस्त कांग्रेसी, जवाहरलाल के विचारों को न चाहते हुए भी, गांधी जी के प्रभाव में चुप थे।

गांधी जी का जवाहरलाल जी के पक्ष में समर्थन, उस समय प्राय: सब बड़े-बड़े नेता जानते थे। यह बात श्री सुभाषचन्द्र बोस के एक पत्र से भी प्रकट होती है।

उस समय श्री सुभाषचन्द्र बोस स्वास्थ्य सुधार के लिए आस्ट्रिया में गए हुए थे। आप ने लखनऊ अधिवेशन के पूर्व जवाहरलाल जी को एक पत्र लिखा था। इसमें बोस बाबू ने लिखा—

Among the front rank leaders of today—you are the only one to whom we can look up to for leading the Congress in a progressive direction. Moreover, your position is unique and I think that even Mahatma Gandhi will be more accommodating towards you than towards anybody else. I earnestly hope that you will fully utilise the strength of your public position in making decisions. Please do not consider your position to be weaker than it really is Gandhiji will never take a stand which will alienate you.[160]

प्रथम पंक्ति के नेताओं में केवल आप हैं, जिन पर हम दृष्टि रखे हुए हैं कि वे कांग्रेस को प्रगति की ओर ले जाएँगे। साथ ही आपकी स्थिति विशेष है और मैं समझता हूँ कि महात्मा गांधी भी आपकी बात कोई सबसे अधिक मानने के लिए तैयार होंगे। हृदय से आशा करता हूँ कि आप इस स्थिति का पूरा उपयोग करेंगे। कृपया अपनी स्थिति को दुर्बल मत समझिए। गांधी जी आपको नाराज़ करने के लिए कभी तैयार नहीं होंगे।

5. गांधी जी और नेहरू जी के विषय में एक स्थान पर फ्रैंक मौरेस लिखते हैं—

...It was whispered that the gulf between the Mahatma and Nehru was widening, and Gandhi was alleged to have said, "My life work is being ruined by Jawaharlal's utterances."[161]

यह कानों-कान कहा जा रहा था कि गांधी जी और जवाहरलाल जी में खाई बढ़ती जाती है और यह कहा जा रहा था कि गांधी जी ने यह कहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि जवाहरलाल के वक्तव्यों से मेरा जीवन-कार्य विनष्ट हो रहा है।

गांधी जी ने इसका तुरन्त प्रतिवाद किया था। उन्होंने 25 जुलाई के 'हरिजन' में 'Are We Rivals' शीर्षक से लेख लिखा था इसमें उन्होंने कहा—

So far as I am aware, Jawaharlal has come to the conclusion that India's freedom cannot be gained by violent means and that it can be gained by non-voilent means. and I know for a fact that he did not in Lucknow, "come out for the use of voilence in the struggle for independence". No doubt there are differences of opinion between us. They were clearly set forth in the letters we exchanged some years ago. But they do not affect our personal relations in any way whatsoever. We remain the same adherents to the Congress goal, that we have ever been. My lifework is not, cannot be ruined by Jawaharlal's programme, nor have I ever believed for that matter that it has been harmed even by "the firmness and repression of the British Government."[162]

जहाँ तक मुझे मालूम है जवाहरलाल इस परिणाम पर पहुँच गया है कि स्वतन्त्रता हिंसात्मक उपायों से प्राप्त नहीं हो सकती। यह मैं जानता हूँ कि उसने लखनऊ में स्वतन्त्रता के संघर्ष में हिंसा के प्रयोग की बात नहीं कही थी। इसमें सन्देह नहीं कि हम में मतभेद है। वे स्पष्ट हो गए थे जब, कुछ वर्ष हुए हमने इस पर पत्र-व्यवहार किया था। परन्तु उनसे हमारे निजी सम्बन्धों में अन्तर नहीं आया था। हम दोनों पहले से ही कांग्रेस के उद्देश्य से सम्बद्ध हैं। जवाहरलाल के कार्य से मेरा जीवन-कार्य विनष्ट नहीं हो सकता। न ही मेरा विश्वास है कि ब्रिटिश सरकार की करनी से विनष्ट हो सका है।....

गांधी जी ने जो कुछ लिखा था वह अदूरदर्शतापूर्ण बात ही थी। जवाहरलाल जी हिंसावादी थे, यद्यपि भीरू थे। वह हिंसा-अहिंसा के पचड़े में कभी नहीं पड़े। इसके अतिरिक्त गांधी जी जवाहरलाल से मतभेद रखते थे, परन्तु सदा उसी को आगे आने में सहायता देते रहते थे।

परिणाम स्वराज्यकाल में निकले। जवाहरलाल जी, देश में कम्युनिज़्म, जिसको वे समाजवाद का नाम देते थे, चलाकर देश के नैतिक, आर्थिक और सैनिक पतन में कारण हुए हैं। साथ ही उन्होंने गांधी जी की विचारधारा को भूल-चूक विनष्ट किया है।

गांधी जी स्वराज्यकाल में जीवित रहते तो क्या करते, कहना कठिन है परन्तु थोड़ा काल जब तक वे जीवित रहे, सरदार पटेल का विरोध करते रहे और जवाहरलाल का समर्थन करते रहे। यह हम आगे चलकर प्रमाणों से सिद्ध करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

6. द्वितीय विश्व युद्ध के आरम्भ में भी गांधी जी और जवाहरलाल जी में मतभेद रहा था। इस पर भी गांधी जी जवाहरलाल जी का विरोध नहीं करते थे। यह बात उन दिनों लिखे गए गांधी जी के एक अन्य पत्र से प्रकट होती है। उस पत्र में आपने लिखा था—

The professor is here; and he has told me everything. I have also learnt about your press interview. I find that the differences which divided our views are now creeping into our actions. In these circumstances, what are Vallabhbhai and others to do? If your policy is accepted, then the Committee should not remain as it is today.

The more I think of it, the feeling grows in me that you are somewhat mistaken. I see no good in entering into a guerilla warfare when the American and Chinese forces enter India.

....

I learnt yesterday that the Forward Block people in Utkal are armed, and that the Communists are ready for Guerilla warfare. I do not know how much truth there is in it.[163]

प्रोफेसर यहाँ पहुँच गया है। उसने मुझको सबकुछ बता दिया है। तुम्हारे सम्वाददाता गोष्ठी का भी समाचार मिला है। मैं समझता हूँ कि विचारों का मतभेद अब कार्य में घुसने लगा है। इस अवस्था में वल्लभभाई और अन्य क्या करें? यदि तुम्हारी नीति स्वीकार हो तो कमेटी (कांग्रेस कार्यकारिणी से युक्त युद्ध समिति) के रखने की अब क्या जरूरत है?

जितना मैं इस पर विचार करता हूँ, मुझे अनुभव होता है कि तुम भूल कर रहे हो। मैं गुरेला लड़ाई में, जब अमेरिकन और चीनी सेनाएँ हिन्दुस्तान में प्रवेश करें, कुछ लाभ नहीं समझता। तुमको सचेत करना मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूँ।

मैंने कल सुना है कि फॉरवर्ड ब्लाक के लोग उत्कल में शस्त्र धारण कर रहे हैं और कम्युनिस्ट गुरेला ढंग की लड़ाई के लिए तैयार हैं। मैं नहीं जानता कि इस समाचार में कितनी सच्चाई है।

7. सन् 1946 में हिन्दुस्तान की इन्टैरिम सरकार बनने से पहले यह उचित समझा गया कि कांग्रेस का नया प्रधान चुना जाए। सन् 1940 में कांग्रेस के रायगढ़ अधिवेशन से मौलाना आज़ाद कांग्रेस के प्रधान चले आते थे।

कांग्रेस कमेटी के अधिकांश सदस्य सरदार बल्लभभाई पटेल को प्रधान बनाना चाहते थे परन्तु अब फिर गांधी जी ने अपनी सम्मति जवाहरलाल के पक्ष में दी। इस घटना के विषय में श्री एन.बी. गाडगिल अपनी पुस्तक 'Government from Inside' में लिखते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

....Therefore Gandhiji suggested to the Maulana that the Congress should elect its President a new. Maulana Azad did not want Vallabhbhai as the president and proposed Nehru. The All India Congress Committee (AICC) met in Bombay in July 1946. Some of us had planned to propose Vallabhbhai's name for the Congress Presidentship. But some 'Gandhians' told us that Gandhiji wanted Jawaharlal as the President. Because, if he were not the President of the Congress, he would not be the Prime Minister and none knew how he would behave then. Consequently, Gandhiji called upon his disciplined soldier, Vallabhbhai, to desist from the temptation. [164]

अत: गांधी जी ने मौलाना को सुझाव दिया कि कांग्रेस अपने प्रधान का नया निर्वाचन करे। मौलाना आज़ाद वल्लभभाई पटेल को प्रधान बनाना नहीं चाहता था। उसने नेहरू का नाम उपस्थित कर दिया। आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक जुलाई 1946 में बम्बई में हुई। हममें से कुछ ने विचार किया कि सरदार वल्लभभाई पटेल का नाम उपस्थित करें, परन्तु गांधीवादियों ने कह दिया कि गांधी जी जवाहरलाल को प्रधान बनाना चाहते हैं। यदि वह कांग्रेस का प्रधान न बना तो वह प्रधान मन्त्री भी नहीं बन सकेगा और कोई नहीं कह सकता कि वह क्या करेगा? अत: गांधी ने अपने निष्ठावान सैनिक वल्लभभाई को कह दिया कि वह प्रधान पद के लिए खड़ा न हो।

सन् 1936 में भी ऐसा ही हुआ था।

(8) देश का विभाजन गांधी जी के विरोध पर भी हुआ। गांधी जी कहा करते थे कि देश का विभाजन मेरे शव पर होगा, परन्तु यह हुआ और गांधी जी जीवित रहे। हमें इसका शोक नहीं, परन्तु हम इस सन्दर्भ में पाठकों का ध्यान दो बातों की ओर ले जाना चाहते हैं।

गांधी जी कई बार भूख हड़ताल द्वारा ब्रिटिश सरकार को धमकी दे चुके थे। उनकी भूख हड़तालों से कभी किसी प्रकार का लाभ हुआ था अथवा नहीं; विवादास्पद है। इतना स्पष्ट है प्रत्येक बार किसी न किसी ढंग से भूख-हड़ताल समाप्त हो जाती थी और गांधी जी की जान बच जाती थी। इस बार वह मरते तो इनको कौन बचाता? क्या इनका सत्याग्रह जवाहरलाल के विरुद्ध होता, जिसने देश विभाजन स्वीकार कर लिया था?

गांधी जी जानते थे कि जवाहरलाल नहीं मानेगा। वे कभी भी जवाहरलाल को अपनी बात मनाने में सफल नहीं हुए थे।

फिर गांधी ने नोआखली में मुसलमानों के हिन्दुओं पर अत्याचार देखे थे, परन्तु वहाँ वे भूख हड़ताल अथवा सत्याग्रह करने का विचार भी मन में नहीं ला सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी का पूर्ण सत्याग्रह और उनकी भूख हड़तालें सदा हिन्दुओं को डरा-धमका कर अपने साथ करने के लिए ही होती थीं। उनकी दो भूख हड़तालें जो स्वराज्यकाल में की गईं, हिन्दुओं को अपने कहे अनुसार व्यवहार करने के निमित्त विवश करने के लिए ही थीं। एक 14 अगस्त 1947 को कलकत्ता में की गई थी। मुस्लिम लीग ने यह समझा था कि वे कलकत्ता को हिंसात्मक कार्यवाही से और लाहौर को राजनीतिक दबाव से पाकिस्तान में सम्मिलित करा सकेंगे। अतः उन्होंने कलकत्ता में मार-काट आरम्भ कर दी।

मुस्लिम लीग ने एक भूल की थी। यह सन् 1946 नहीं था और वहाँ सुहरावर्दी सरकार नहीं थी। अगले दिन स्वराज्य सरकार स्थापित होने वाली थी और वे हिन्दुओं को मार कर निकालते-निकालते स्वयं मार खाने लगे और कलकत्ता से भागने लगे। यह बात गांधी जी को पसन्द नहीं थी। उन्होंने भूख हड़ताल कर दी। मुसलमान तो सरकार द्वारा काबू में कर लिये और हिन्दू गांधी जी की भूख हड़ताल से प्रभावित हो शान्त हो गए।

दूसरी भूख हड़ताल गांधी जी ने पचपन करोड़ रुपया पाकिस्तान को दिलवाने के लिए की थी। यह पाकिस्तान के पक्ष में और भारत सरकार के निर्णय के विरुद्ध थी।

कश्मीर का युद्ध चल रहा था। देश-विभाजन के निर्णयानुसार पचपन करोड़ रुपया भारत ने पाकिस्तान को देना था, परन्तु अदायगी की तिथि के पूर्व ही पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया था। सरदार पटेल ने इस पर इस रुपये की अदायगी को रोक देने का प्रस्ताव कर दिया। यह प्रस्ताव मन्त्रिमण्डल ने जवाहरलाल जी और मौलाना आज़ाद के विरोध पर भी पारित कर दिया। ऐसा कहा जाता है कि इस निर्णय के उपरान्त जवाहरलाल जी लॉर्ड माउण्टबेटन के पास गए और माउण्टबेटन जवाहरलाल जी से मन्त्रिमण्डल के निर्णय को सुनकर गांधी जी से मिले। गांधी जी ने जब यह समाचार सुना तो भूख हड़ताल करने का निर्णय कर लिया।

यह भी कहा जाता है कि गांधी जी की भूख-हड़ताल के समाचार पर सरदार पटेल ने डाक्टर अम्बेडकर और डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी को लेकर, उनको समझाने के लिए जाना चाहा परन्तु डाक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने इन्कार कर दिया। मुखर्जी साहब का कहना था कि वे गांधी जी से इस विषय पर बातचीत करना उचित नहीं समझते। सरदार पटेल और डाक्टर अम्बेडकर गए और पीछे डाक्टर अम्बेडकर ने बताया कि गांधी जी ने सरदार को बहुत बुरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह डाँटा था। इससे सरदार के आँसू निकल आए थे।

इस डाँट-डपट का और भूख-हड़ताल के परिणाम में ही, ऐसा कहा जाता है कि मन्त्रिमण्डल ने अगले दिन अपना निर्णय बदल दिया और पचपन करोड़ रुपया पाकिस्तान को देना स्वीकार कर लिया।

गांधी जी ने जवाहरलाल की बात मन्त्रिमण्डल से मनवाने के लिए ही भूख हड़ताल की थी।

(9) गांधी जी ने जवाहरलाल जी और सरदार पटेल के विवाद में सदा जवाहरलाल का पक्ष लिया। इसका एक अन्य उदाहरण श्री वी.पी. मैनन की पुस्तक 'The Integration of the Indian States' में मिलता है।

जब जिन्ना ने यह सुना कि कश्मीर का भारत में समन्वय भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया है तो उसने वहाँ पाकिस्तान सेना भेजने की आज्ञा दे दी। पाकिस्तान की सेना भेजी नहीं जा सकी। सेना के सर्वोच्च अधिकारी लॉर्ड अक्कलनैक ने कहा कि वह पाकिस्तान और भारत, दोनों सेनाओं का सेनापति है। उसकी एक सेना दूसरी सेना के विरुद्ध नहीं लड़ सकती। इस पर जिन्ना ने लॉर्ड माउण्टबेटन और जवाहरलाल नेहरू को बातचीत के लिए लाहौर बुला लिया।

श्री मेनन इस निमन्त्रण के विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

Lord Mountbatten was eager that the invitation should be accepted and that he and Nehru should go to Lahore, but Sardar was strongly opposed to either of them making the visit. He said that, as Pakistan was the aggressor in this case, it was not right to follow a policy of appeasement by running after Jinnah. If Jinnah wanted to discuss the matter he sould come to Delhi. Nehru was inclined to agree with Lord Mountbatten. He argued that we had not gone to Kashmir for territorial acquisition and if we could find a peaceful solution of the problem we should not stand on prestige.

As there was a difference of opinion between Sardar and Nenru the matter was naturally referred to Gandhiji. That night I had a telephone call from his secretary who told me that Gandhiji wanted to see me urgently. I went to Birla House and

लॉर्ड माउण्टबेटन इस निमन्त्रण के स्वीकार किए जाने के लिए उत्सुक था। वह चाहता था स्वयं और श्री नेहरू लाहौर जाएँ परन्तु सरदार इस जाने का घोर विरोध कर रहा था। उसका कहना था कि क्योंकि पाकिस्तान आक्रमण करने वाला है इसलिए जिन्ना के पीछे-पीछे भाग कर उसको सन्तुष्ट करने की नीति ठीक नहीं होगी। यदि जिन्ना किसी विजय पर बातचीत करना चाहता है तो उसे दिल्ली आना चाहिए। नेहरू लॉर्ड माउण्टबेटन की सम्मति के अनुसार जाने के लिए तैयार थे। वह कहते थे कि हम कश्मीर में इस कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

found Nehru and Sardar conferring with Gandhiji. Gandhiji asked me what my objections were to Nehru going to Lahore. I replied that when this was mooted to me by Lord Mountbatten I was entirely opposed to the idea and I gave reasons for my stand. While the discussions were going on we noticed that Nehru was looking flushed and tired. It was found that he was actually running a high temperature. His going to Lahore was therefore out of the question.[165]

नहीं गए कि हमने उस क्षेत्र पर अधिकार जमाना है। यदि हम समस्या का कोई शान्तिमय झुकाव पा सकें तो ठीक होगा। हमें अपनी मान की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

क्योंकि सरदार और नेहरू में मतभेद था इस कारण बात गांधी जी के पास गई। उस रात गांधी जी के सेक्रेटरी ने मुझे (श्री मेनन को) टेलीफोन पर कहा कि गांधी जी मुझसे तुरन्त मिलना चाहते हैं। मैं बिड़ला हाउस गया और वहाँ देखा कि नेहरू और सरदार गांधी जी से बातचीत कर रहे हैं। गांधी जी ने मुझसे पूछा कि नेहरू जी के लाहौर जाने में क्या आपत्ति है? मैंने उत्तर दिया कि लॉर्ड माउण्टबेटन ने मुझसे यही बात पूछी थी और मैं इस विचार के सर्वथा विरुद्ध था। मैंने विचार की पुष्टि में युक्तियाँ दीं। अभी बातचीत चल ही रही थी कि मेरी दृष्टि नेहरू जी के लाल हुए चेहरे पर पड़ी। मैंने संकेत किया और देखा गया कि उनको तीव्र ज्वर है। अतः नेहरू जी का लाहौर जाना स्थगित हो गया।

यदि जवाहरलाल बीमार न होते तो गांधी जी जवाहरलाल जी का पक्ष लेते, वे लाहौर जाते और अवश्य कुछ न कुछ अनिष्ट कर आते।

पुस्तक के द्वितीय खण्ड में हमने महात्मा जी के सत्याग्रहों और इनमें नेहरू परिवार के सहयोग के कुछ उदाहरण देकर यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि सत्याग्रह आन्दोलन विफल हुए थे। मोतीलाल नेहरू और तदनन्तर जवाहरलाल नेहरू गांधी जी के साथ सहयोग देते रहे बिना गांधी जी की नीतियों को और सिद्धान्तों को मानते हुए। दूसरी ओर गांधी जी जवाहरलाल तथा मोतीलाल जी को, कांग्रेस में और देश में अधिमान की स्थिति में लाने यत्न करते रहे बिना यह देखे कि वे दोनों सज्जन उनके विचार, सिद्धान्त और नीति के घोर विरोधी हैं।

गांधी जी के विषय में तो यह कहा जाता है कि वे साधु प्रकृति थे और स्वराज्य प्राप्ति के लिए प्रत्येक विचार के व्यक्ति को आगे आने का अवसर देना चाहते थे। यह बात प्रत्यक्ष रूप में ठीक प्रतीत होती है, परन्तु यह बात निर्विवाद नहीं है। गांधी जी अपने विरोधियों को चिमटे से भी छूने को तैयार नहीं होते थे। विरुद्ध विचार रखने वालों को जनता में बदनाम करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कहा जाता है कि गांधी जी के सहयोग की दो शर्तें थीं—एक तो स्वराज्य प्राप्ति और दूसरे अहिंसा। हमारा निश्चित एवं युक्ति-युक्त मत है कि गांधी जी, नेहरू परिवार तथा मुसलमानों के लिए, इन स्वराज्य तथा अहिंसा का भी बलिदान करते रहे हैं।

नेहरू जी को अधिमान देने के हम कई उदाहरण ऊपर दे आए हैं। मुसलमानों को अधिमान की बात भी हम इस कण्डिका में सप्रमाण दे चुके हैं। यदि उन सबका संक्षेप में उल्लेख किया जाए तो इस प्रकार है।

क्रान्तिकारी तथा आतंकवादी भी स्वराज्य के लिए यत्नशील थे और गांधी जी उनकी निन्दा करते थकते नहीं थे। परन्तु मुसलमानों को साथ मिलाने का वे सदा प्रयत्न करते रहे। कलकत्ता के डायरेक्ट ऐक्शन के उपरान्त भी वे सुहरावर्दी को अपनी प्रार्थनाओं में साथ लेकर बैठते रहे।

जिन्ना से बातचीत करने के लिए वे सदा तैयार रहते थे। मिस्टर जिन्ना मुस्लिम लीग के प्रधान थे, जो हिंसात्मक कार्यवाही करने को सदा तत्पर रहती थी।

जवाहरलाल जी और मोतीलाल जी ने अहिंसा को कभी सिद्धान्त रूप में नहीं माना। इस पर भी जवाहरलाल जी के साथ गांधी जी ने सहयोग ही नहीं किया, वरंच दूसरों के सिर पर बैठाने का भी यत्न किया।

गांधी जी की नीति यह रही थी कि राष्ट्र-विरोधियों को अपने पक्ष में लाने के लिए वे राष्ट्र हितों का भी बलिदान करते रहे।

सरदार पटेल के विपरीत उनको क्या शिकायत थी? सरदार पटेल भी अहिंसात्मक उपायों का प्रयोग करते थे। निर्भीक और कट्टर देशभक्त थे। त्याग और तपस्या में वे मोतीलाल तथा जवाहरलाल से कम नहीं थे। हाँ, वे राष्ट्र-विरोधी मुसलमानों तथा कम्युनिस्टों के विरुद्ध थे। अन्यथा वे नेहरू जी से किसी बात में भी कम नहीं थे। यदि कुछ अन्तर था तो यह था कि श्री जवाहरलाल नेहरू एक सुन्दर गौर वर्ण, चिकना-चुपड़ा मुख रखते थे और पटेल, एक किसान की सन्तान होने के कारण मोटी रूप-रेखा तथा गहरे गन्दमी रंग के थे।

गांधी जी ने अपना प्रभाव सदा नेहरू जी को आगे करने में प्रयोग किया और पटेल को पीछे धकेलने में।

पटेल हिन्दू था। हिन्दू सभ्यता और परम्पराओं का आदर करता था। राष्ट्रवादियों का साथी और राष्ट्र-विरोधियों का शत्रु था। इसके विपरीत नेहरू हिन्दुओं का विरोधी, हिन्दू परम्पराओं की हँसी उड़ाने वाला, इस्लाम का और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब हिन्दू विरोधी शक्तियों का आदर करने वाला, अन्तर्राष्ट्रीय समाघोषों के प्रभाव में राष्ट्र-विरोधी व्यवहार अपनाने वाला था।

यौन सम्बन्धों के विषय में भी सरदार पटेल नेहरू से बहुत उच्च विचारों के समझे जाते थे।

हम गांधी जी को दोष नहीं देते। दोष था हिन्दू जनता में। वह सात सौ वर्ष की दासता के कारण और अनेकानेक धूर्त एवं मूर्ख गुरुओं के प्रभाव में, बुद्धि खो चुकी थी। जिसने भगवा पहन लिया, वह ज्ञानी हो गया। जिसने अपने को महात्मा कहलवाना स्वीकार किया, वह निर्भ्रान्त मान लिया गया। जिसने पूजा-भक्ति-प्रार्थना इत्यादि का ढोंग रचा, वह ही ईश्वर का प्यारा मान लिया गया।

आज देश में विघटनात्मक शक्तियों को सिर उठाने और देश को विदेशियों के पास बिकते देख, उस आधारभूत नीति और व्यवहार की याद आ जाती है जो 1920 से गांधी और नेहरू परिवार चलाते रहे हैं। उन नीतियों और व्यवहार के, स्वराज्य-काल में भी चलने के कारण, देश की वर्तमान स्थिति बनी है।

यह कहा जाता है कि गांधी जी ने स्वराज्य ले दिया और गांधी जी ने देश में राष्ट्र का निर्णय किया। इसी कारण गांधी जी को राष्ट्रपिता कहा जाता है।

यह सब मिथ्यावाद है। स्वराज्य गांधी जी की नीति और आन्दोलनों का परिणाम नहीं है। स्वराज्य मिला है देश में हिंसात्मक शक्तियों के उग्र हो जाने के कारण और द्वितीय विश्व युद्ध में इंग्लैंड के सर्वथा निर्बल हो जाने के कारण। साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों में रूस और अमेरिका के प्रमुख शक्ति बन जाने के कारण।

गांधी जी के आन्दोलनों का प्रभाव यह हुआ है कि हिन्दुस्तान में इस्लाम एक महान् शक्ति बन गई है। देश में राष्ट्रीय भावना विलुप्त होकर क्षेत्रीय, भाषायी, जातीय और स्वार्थ की भावना निर्माण हुई है।

गांधी जी की नीति से एक भावना यह भी बनी है कि विपक्षी का आदर करो और पक्ष वालों का अनादर करो! यह अहिंसात्मक व्यवहार का सीधा परिणाम है। शत्रु के मन में बैठ उसको अपने अनुकूल बनाने की मिथ्या भावना से ही शत्रु पक्ष को प्रबल करने का आयोजन किया गया था।

गांधी जी को राष्ट्रपिता तब ही माना जा सकता है, जब यह माना जाए कि पुत्रों में फूट डलवाने वाले को पिता कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय खण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

स्वराज्य कैसे आया?

हिन्दुओं ने 1921 में 1947 तक गांधी जी और जवाहरलाल जी की माला जपी। वे धीरे-धीरे उन सब महान् नेताओं को भूल गए जिन्होंने भारत में स्वराज्य की आधारशिला रखी थी। उनमें कुछ नाम हैं—स्वामी दयानन्द, श्यामजी कृष्ण वर्मा, बाल गंगाधर तिलक, श्री अरविन्द घोष, बंकिमचन्द्र पाल, विपिनचन्द्र पाल, श्री सावरकर, लाला हरदयाल, पंडित मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय, भाई परमानन्द, सरदार अजीत सिंह, सरदार भगत सिंह, खुदीराम बोस तथा अन्य अनेक देश की वेदी पर बलि हो जाने वाले वीर धीर क्रांतिकारी। ये सब विस्मरण हो गए और इनके स्थान पर आए गांधी जी। अपने साथ लाए मोतीलाल जी, मौलाना मुहम्मद अली, शौकत अली, अजमल और अन्सारी को। आगे आए जवाहरलाल, दीवान चमनलाल, डाक्टर सत्यपाल, राजगोपालाचार्य, हौर्निमैन, मौलाना आज़ाद, शेख अब्दुल्ला और अन्य अनेक अंग्रेज़ी सभ्यता और परम्पराओं के भक्त तथा भारत एवं भारतीयता की हँसी उड़ाने वाले। ये सब-के-सब, नेता बनने की लालसा करने वाले, स्वार्थी और ज्ञान-विज्ञान से अनभिज्ञ, इतिहास से कोरे, धर्म शब्द के अर्थों से भी अनभिज्ञ, राजगद्दी पर बैठ गए।

हिन्दुस्तान का विभाजन हुआ। हमारा अभिप्राय भारत और पाकिस्तान बनने से ही नहीं है। सांस्कृतिक, भाषायी, छूत-अछूत, जाट, बनिये, मारवाड़ी, बंगाली, पहाड़ी, मैदानी इत्यादि भावों से भी विभाजित होने से है। यह सब 1921 से लेकर 1947 तक मिथ्या एवं काल्पनिक आधारों पर विचार प्रचार और व्यवहार का परिणाम हआ है।

जहाँ घोष यह होना चाहिए था कि राष्ट्रवादी एक हों, वहाँ नारा यह लगा कि हिन्दू-मुसलमान एक हों, छूत-अछूत एक हों, पारसी-ईसाई एक हों, उत्तरी और दक्षिणी एक हों, गुजराती और मराठे एक हों, बंगाली और असमी एक हों, इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ घोष यह होना चाहिए था कि राष्ट्रवादी अपने हैं, वहाँ समाघोष यह हो गया सब भाई-भाई हैं। सबको फलने फूलने का अधिकार है।

जहाँ घोष यह होना चाहिए था कि एक राष्ट्र, एक संस्कृति, एक भाषा, एक भावना और एक न्याय हो। वहाँ समाघोष यह हो गया, राष्ट्रवाद मानवता विरोधी भावना है। संस्कृति, रोटी, कपड़ा और मकान है। भाषा भावना है और न्याय अपना-अपना है।

जहाँ घोष होना चाहिए था कि परिश्रम करना कर्त्तव्य है, वहाँ समाघोष हो गया कि फल पाना सबका अधिकार है। काम कम पारिश्रमिक अधिक अनुत्तरदायित्व और भोग में समानता, यह मिला है गांधी, जवाहर और कांग्रेस की अयुक्तिसंगत नीति से।

:: 2 ::

अब हम स्वराज्य के आगमन के कुछ कारण बताते हैं। सन् 1942 में गांधी जी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन चलाया था। 8 अगस्त 1942 को बम्बई में यह प्रस्ताव पारित किया गया। 9 अगस्त को प्रातःकाल प्रायः सब नेता पकड़ लिये गए और तब गांधी जी के विचारों के विपरीत देशभर में हिंसा का उग्र रूप प्रकट हुआ।

फ्रैंक मौरेस इस हिंसा के प्रदर्शन की एक अति संक्षिप्त झलक अपनी पुस्तक में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

There were peaceful hartals and protest meetings, but there were also outbreaks of mob violence, arson, murder and sabotage. Students and workers were prominent in these demonstrations, which were sometimes dispersed by tear gas and baton charges and sometimes fired upon. In Ballia in the United Provinces crowds were machine-gunned from the air. According to the Government of India's own figures for the period from August to December, 1942, the police and military had opened fire on demonstrating crowds, some of them violent, as many as 538 times, killing 940 and wounding 1,630 persons. Nehru, who thought these figures grossly underestimated, later put the number of those killed at

शान्तिमय हड़तालें और विरोध-सभाएँ भी हुईं परन्तु सामूहिक हिंसा के प्रदर्शन भी हुए, अग्निकांड हुए, हत्याएँ हुईं और विध्वंसक कार्यवाही भी हुई। इन प्रदर्शनों में विद्यार्थी और कर्मचारी सबसे आगे थे। इनको अश्रु गैस, बन्दूकों के कुंदों, लाठियों और गोलियों से तितर-बितर किया जाता था। संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के बलिया में जनता पर हवाई जहाज़ में से मशीनगन द्वारा गोलियाँ चलाई गई थीं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार अगस्त से दिसम्बर 1942 तक पुलिस और सेना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

about 10,000. By the end of 1942 over 60,000 had been arrested.

The initial damage and destruction done by violent mobs were considerable: Official statements for this period give the following statistics : 250 railway stations damaged or destroyed; 550 post offices attacked: 50 post offices burned; 200 post offices damaged; telegram and telephone wires cut at 3,500 places; 70 police stations burned and 85 other government buildings destroyed. In addition the military casualties were 11 dead and 7 wounded, while the number of police killed was 31, the total of those injured being described as "very large".

The public reaction was undoubtedly strong, widespread and in many places violent.[166]

ने जनता पर, जो हिंसात्मक थी, 538 बार गोली चलाई। इन गोली-काण्डों में 940 लोग मारे गए और 1630 घायल हुए। श्री नेहरू का विचार है कि ये आँकड़े कम करके लिखे गए हैं। उनका विचार है कि 10000 मारे गए और 60000 पकड़े गए थे।

भीड़ द्वारा जो हानि पहुँचाई गई, वह बहुत अधिक थी। सरकारी आँकड़े इस प्रकार हैं—240 रेलवे के स्टेशन तोड़े-फोड़े गए अथवा विनष्ट कर दिए गए, 550 डाक घरों पर आक्रमण किया गया, 50 डाक घर जला दिए गए, 200 डाक घर तोड़े-फोड़े गए, 3500 स्थानों पर तार और टेलीफोन की तारें तोड़ी गईं, 70 पुलिस स्टेशन जलाए गए तथा 85 अन्य सरकारी इमारतें विनष्ट की गईं। सेना के ग्यारह लोग मरे, सात घायल हुए। पुलिस के 31 मरे, घायल तो बहुत अधिक हुए।

जनता की प्रतिक्रिया बहुत प्रबल हुई। यह बहुत विस्तृत थी और बहुत स्थानों पर हिंसात्मक थी।

वास्तव में हिंसात्मक कार्यवाही इससे बहुत अधिक हुई। दिल्ली में 9 अगस्त को ही सब सड़कों के बिजली के हाण्डे तोड़ डाले गए थे। नगर के टाउन हॉल और रेल कार्यालय को आग लगा दी गई थी। रेल के स्टेशन को भी आग लगाने का यत्न किया गया था, परन्तु सेना ने इसे बचा लिया। कई दिन तक नगर में अराजकता रही।

यह सबकुछ हुआ जब गांधी जी लोगों को अहिंसा का पाठ पढ़ा रहे थे।

गांधी जी क्या कर रहे थे? उनके मस्तिष्क में भारत को अंग्रेज़ों से छुड़ाने की क्या योजना थी? कोई नहीं जानता। श्री के.एम. मुन्शी अपनी पुस्तक 'Pilgrimage to Freedom' में लिखते हैं—

The working committee did not arrive at any decision regarding the launching of a movement.

Gandhiji next sent Miss Slade

कांग्रेस वर्किंग कमेटी आन्दोलन के विषय में कोई निश्चय नहीं कर सकी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Mira Ben) to explain to Linlithgow the purport of the working committee's resolution. Linlithgow refused to meet her.

The A.I.C.C. met at Bombay on August 7, 1942. On August 8, it adopted the working committee's resolution popularly known as the "Quit India" resolution.[167]

उसके उपरान्त गांधी जी ने मिस स्लेड (मीरा बहिन) को भेजा कि वह वायसराय लॉर्ड लिनलिथगो को वर्किंग कमेटी के प्रस्ताव का अभिप्राय समझाएँ। वाइसराय ने मिस स्लेड को मिलने से इन्कार कर दिया।

वास्तव में गांधी जी को कुछ कार्यक्रम सूझ ही नहीं रहा था। वर्किंग कमेटी ने प्रस्ताव पारित किया था, और उसके उपरान्त ब्रिटिश समाचार-पत्रों के संवाददाताओं से गांधी जी ने कहा था, "I am not ready with a planned programme as yet." (मैंने अभी तक कोई विचारित योजना नहीं बनाई।)

बम्बई में कांग्रेस कमेटी की बैठक हो रही थी और गांधी जी वहाँ पहुँचने तक नहीं जानते थे कि आन्दोलन का क्या रूप होगा?

प्रस्ताव पास हुआ और गांधी जी ने घोषणा कर दी कि सब लोग कपड़े पर यह लिखकर, 'Do or die' छाती पर लगा लें, जिससे पता चल जाए कि कितने सत्याग्रही मरे हैं?

परन्तु पीछे जब तोड़-फोड़ आरम्भ हुई तो एक भी ऐसा मरा हुआ व्यक्ति नहीं पाया गया, जिसकी छाती पर 'Do or die' लिखा हुआ होता।

इससे पता चलता है कि लोगों ने गांधी जी का कहना मानना छोड़ दिया था। आगे श्री मुन्शी लिखते हैं—

Gandhiji issued no instruction regarding the implementation of the "Quit India" resolution.[168]

गांधी जी ने कांग्रेस प्रस्ताव पर कार्य करने के लिए कोई कार्यक्रम नहीं बनाया था।

इन बातों से यह सिद्ध होता है कि यदि लोग गांधी जी का कहा मान अहिंसात्मक रहते तो सन् 1942 का आन्दोलन भी 1930-32 के आन्दोलनों की भाँति प्रभावहीन होता। भारत में तोड़फोड़ बहुत जोरों पर चली और लगभग पाँच महीने तक चलती रही। इसमें सन्देह नहीं कि यह हिंसात्मक कार्यवाही सरकारी शक्ति के सामने शान्त हो गई, परन्तु इसका प्रभाव अंग्रेज़ी मस्तिष्क पर बहुत प्रबल हुआ।

लॉर्ड लिनलिथगो के जाने के उपरान्त भारत के वाइसराय लॉर्ड वेवल हुए। इसके आने के साथ ही नीति बदली और धीरे-धीरे कांग्रेसी नेता छूटने लगे। यह छूटना इस कारण नहीं था कि गांधी के अहिंसात्मक व्यवहार से ब्रिटिश सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ गई थी कि उसे भारतवासियों से न्याय करना है। ऐसा प्रतीत होता है कि इंग्लैंड में चर्चिल की सरकार भी समझने लगी थी कि भारत के युवक गांधी जी के हाथ से निकलकर कुछ अन्य लोगों के नेतृत्व में जा रहे हैं। कांग्रेस और गांधी जी के अतिरिक्त कम्युनिस्ट तो थे ही, जो 1942 की तोड़-फोड़ में सक्रिय भाग ले रहे थे। इनके अतिरिक्त हिन्दू महासभा भी थी, जो श्री विनायक दामोदर सावरकार के नेतृत्व में सिर उठाने लगी थी। ज़िन्ना गांधी के स्थान हिन्दू महासभा के नेताओं से बातचीत करने लगा था। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार यह समझने लगी थी कि यदि कुछ और वर्ष तक कांग्रेसी नेता जनता से पृथक् रखे गए तो जनता हिन्दू महासभा के नेतृत्व में आ जाएगी और वह मुस्लिम लीग के साथ सफलतापूर्वक किसी निर्णय पर पहुँच जाएगी।

ब्रिटिश सरकार यह समझती थी कि यदि जिन्ना और मुस्लिम लीग कांग्रेस से समझौता नहीं कर सकी तो वह इस कारण कि लातों के भूत बातों से नहीं मानते। मुसलमान और मुस्लिम लीग, जो सन् 1940 से पाकिस्तान के लिए बलवे, हत्याएँ और अग्निकाण्ड कर रहे थे और जिनको कांग्रेस के लोग अधिक और अधिक रियासतें देकर प्रसन्न करने का यत्न कर रहे थे, हिन्दू महासभा से 'tit for tat' (जैसे को तैसा) की नीति पाकर सीधे हो जाएँगे।

चर्चिल की सरकार और साधारण अंग्रेज़ गांधी के स्थान पर हिन्दू महासभा और सावरकर को आते देख चिन्तित थे। इस कारण ब्रिटिश सरकार और भारत की अंग्रेज़ी सरकार कांग्रेसी नेताओं को छोड़, उनको पुनः हिन्दुओं के मन पर अपनी प्रभुता जमाने का अवसर देना चाहती थी। उनकी यह धारणा थी कि कांग्रेस, नेहरू और गांधी, अंग्रेज़ों के अधिक समीप हैं और सावरकर इत्यादि, हिन्दू सभा के नेता अंग्रेज़ों की किसी बात को पसन्द नहीं करेंगे।

इंग्लैंड में इस विचारधारा ने ज़ोर पकड़ा। एक ओर भारत में गांधी इत्यादि छोड़ दिए गए। दूसरी ओर कुछ अंग्रेज़ लेखक और समाचार-पत्र जवाहरलाल और गांधी की प्रशंसा के पुल बाँधने लगे। इसके अतिरिक्त युद्ध समाप्त होते ही इंग्लैंड में टोरी पार्टी के स्थान पर लेबर पार्टी राज्यासीन हो गई। इंग्लैंड की जनता समझती थी कि युद्ध के उपरान्त की समस्याएँ चर्चिल की टोरी पार्टी सुलझा नहीं सकेगी।

ऐटली इंग्लैंड का प्रधान मन्त्री बन गया और उसने हिन्दुस्तान के वाइसराय वेवल को बुलाकर, तुरन्त हिन्दुस्तान की समस्या को सुलझाने का आदेश दे दिया।

यह तो मानना पड़ेगा कि कांग्रेस के नेतागण दूसरों के कार्य का श्रेय अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर लेने में बहुत चतुर हैं। ये पुन: हिन्दुओं के नेता बन, सन् 1942 के आन्दोलन की सफलता का श्रेय स्वयं लेने में सफल हो गए। आन्दोलन से पहले ये अहिंसा की कूक लगाते थे और आन्दोलन के उपरान्त सन् 1942 में हुए सब हिंसात्मक कार्यों का श्रेय लेने के लिए तैयार हो गए।

सन् 1945 में अहमदनगर दुर्ग से छुटने के उपरान्त श्री जवाहरलाल अलमोड़ा में आराम करने गए। वहाँ उनको पता चला कि विध्वंसक कार्यवाहियाँ करने वाले लोग जो भूम्यान्तर्गत हो गए थे, उनके वारंट निकले हुए हैं और जब वारंटों पर भी वे प्रकट नहीं हुए तो उनके घर और सम्पत्ति जप्त कर ली गई है। इस पर जवाहरलाल जी भड़क उठे और तुरन्त उनका एक वक्तव्य प्रकाशित हो गया। इसमें आपने कहा, बात कानूनी अथवा गैर-कानूनी हो, प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है कि आततायी सरकार का विरोध करे। इस प्रकार 1942 में जो हिंसात्मक कार्यवाही हुई, उसका श्रेय कांग्रेस, गांधी जी और जवाहरलाल जी लेने में अग्रसर हो गए। भोले हिन्दू समझने लगे कि जो कुछ 1942 में हुआ वह श्री जवाहरलाल और गांधी जी ने ही कराया है।

पीछे आज़ाद हिन्द सेना के मुकद्दमे में श्री जवाहरलाल का कूदकर आगे आ जाना, केवल इस उद्देश्य से था कि श्री सुभाषचन्द्र जी के विपुल प्रयास में अपने को साझीदार बना सकें। जब यह सेना बनी थी तब कांग्रेस, गांधी जी और श्री जवाहरलाल जी इसका विरोध करते थे। सुभाषचन्द्र बोस के विपरीत कांग्रेस की पूर्ण कार्यकारिणी थी, परन्तु जब इन सब अहिंसात्मक कार्यों के परिणाम निकलने लगे तो इन्होंने वे सब कार्य अपने द्वारा किए गए ही प्रकट करने का यत्न किया।

इसी प्रकार एक और घटना घटी, जिसका प्रभाव अंग्रेज़ मस्तिष्क पर बहुत प्रबल हुआ और जिसने हिन्दुस्तान को स्वराज्य दिलवाने में भारी सहयोग दिया।

आज़ाद हिन्द फौज के अधिकारियों के विषय में सेना के अफसरों में मत-संग्रह किया गया। मत-संग्रह का विषय यह था कि ये अधिकारी विद्रोही हैं अथवा नहीं ? बहुमत यह निकला कि वे देशभक्त हैं। क्या इसमें गांधी जी और जवाहरलाल जी का कुछ भी हाथ कहा जा सकता है ?

1946 की फरवरी में नौ-सेना में विद्रोह हो गया। इसके विषय में फ्रैंक मौरेस लिखते हैं—

The spark came from an unexpected quarter. On. February 19, 1946, Bombay Was the scene of

चिनगारी अप्रत्याशित दिशा से आई। 19 फरवरी 1946 को रायल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

demonstrations by some three thousand naval ratings of the Royal Indian Navy who rose in violent protest against differential treatment, food and living conditions. A number of British officers and men of the fighting services were attacked by the demonstrators, and trouble spread rapidly. The Congress tricolour was hoisted on some naval sloops in the harbour, and British personel were forced off the ships. Batches of ratings roamed the city in lorries.

By the next day the trouble had spread to other naval establishments in the suburbs. Slogans such as "Quit India" and Jai Hind (Hail India) were chalked by the ratings on walls and public places. Congress, League and even Communist flags fluttered from Royal Indian Navy lorries, and naval establishments in Karachi, Calcutta, Delhi and Madras were affected, military police opening fire on the strikers at the first centre and being fired upon in return by the ratings. In the first of several encounters, nine were injured, and one killed.

On February 21st the British military police opened fire on the naval demonstrators in Bombay, and feeling ran high. An attempt by the ratings to capture an armoury inside a barrack were foiled. British troops fired on the ratings elsewhere in the city, the demonstrators retaliating with hand grenades. The situation grew more explosive when over a thousand men in the Royal Indian Air Force camps in Bombay came out on a sympathetic strike.

On February 22nd the mutineers were in control of nearly twenty naval vessels in Bombay harbour; including the flagship of the British Vice-admiral, and trained the ships, guns on the city. On the privious day Sardar Patel who was in Bombay, appealed for a peaceful settlement.

इण्डियन नेवी के लगभग 3000 'रेटिंग्स' ने बम्बई में एक विशाल प्रदर्शन किया। यह प्रदर्शन उनके साथ किए गए भोजन तथा अन्य जीवन की सुविधाओं में भेदभाव पर एक हिंसात्मक विरोध था। एक भारी संख्या में सेना के ब्रिटिश अधिकारियों पर आक्रमण कर दिया गया और फिर यह विद्रोह द्रुत गति से विस्तार पा गया। कई नौ-सेना के जहाज़ों पर से और बन्दरगाह में, कांग्रेस तिरंगे ध्वज लहरा दिए गए और ब्रिटिश नौ-सैनिकों को जहाज़ों से उतर जाने पर विवश किया। 'रेटिंग्स' के झुण्ड के कुण्ड लारियों में बम्बई की सड़कों पर घूमने लगे।

अगले दिन विद्रोह नौ-सेना के अन्य संस्थानों में भी फैल गया। रेटिंग्स ने चाक द्वारा दीवारों और सार्वजनिक स्थानों पर 'क्विट इंडिया' और 'जय हिन्द' के नारे लिख दिए। कांग्रेस, मुस्लिम लीग और कहीं-कहीं कम्युनिस्ट झण्डे भी लारियों पर फहरा दिए गए। यह विद्रोह कराची, कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास में भी पहुँचा। मिलिटरी पुलिस ने इन विद्रोहियों पर गोली चलाई और उसके उत्तर में रेटिंग्स ने भी गोली-वर्षा की। इन झड़पों में नौ घायल हुए तथा एक मारा गया।

21 फरवरी को ब्रिटिश मिलिटरी पुलिस ने बम्बई के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

....There were widespread rioting in Bombay and Calcutta, and disturbances in Karachi and Madras. Mass violence on an unprecedented scale broke out in Bombay....[169]

प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाई। 'रेटिंग्स' ने शस्त्रागार पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में करने का यत्न किया। यह यत्न सफल नहीं हुआ। नगर के दूसरे स्थानों पर भी ब्रिटिश सेना ने इन 'रेटिंग्स' पर गोली चलाई और रेटिंग्स ने इसका विरोध हथगोले फेंक कर किया। स्थिति और भी भड़की, जब लगभग एक हज़ार रायल इण्डियन एयर फोर्स (वायु सेना) के युवकों ने काम छोड़ दिया और दफ्तरों से निकल बम्बई की सड़कों पर आ गए।

22 फरवरी तक बम्बई बन्दरगाह में बीस जहाज़ विद्रोहियों के हाथ में आ चुके थे। इनमें 'ब्रिटिश वाइस एडमिरल' का जहाज़ भी था। इन जहाज़ों पर से तोपों का मुँह नगर और किले की तरफ कर दिया गया।

यह विद्रोह सरदार पटेल के बीच में पड़ने से शान्त हो गया।

जिस दिन नौ-सेना के रेटिंग्स के बम्बई में विद्रोह का समाचार लन्दन पहुँचा, उसी दिन लन्दन की पार्लियामेंट में इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री श्री ऐटली ने यह घोषणा की कि हिन्दुस्तान में स्वराज्य की रूप-रेखा बनाने के लिए मन्त्रिमण्डल के तीन सदस्यों का एक मिशन भारत जाएगा।

हमारा यह दृढ़ मत है कि स्वराज्य प्राप्ति में हिंसात्मक आन्दोलनों का बहुत बड़ा हाथ है। गांधी जी के अहिंसात्मक आन्दोलनों का सदा यह परिणाम निकला है कि उन लोगों को महत्व मिला जो स्वराज्य प्राप्ति में किसी प्रकार का भी त्याग और तपस्या नहीं करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय परिच्छेद

देश विभाजन-1

यों तो हिन्दू-मुसलमान समस्या तब से आरम्भ हुई हैं, जब से मुसलमान आक्रमण करने वाले हिन्दुस्तान में आने आरम्भ हुए थे। आरम्भ में हिन्दुस्तान के रहने वाले हिन्दू इन आक्रमणों को केवल मात्र विदेशी राज्यों के आक्रमण समझते रहे। हिन्दुओं की यह प्रवृत्ति रही है कि वे राजनीति और संस्कृति तथा व्यक्तिगत आचार-विचार को पृथक्-पृथक् मानते रहे हैं और इसी के अनुरूप मुसलमान आक्रमणकारियों को वे केवल ऐसे विदेशी समझते रहे जो भारतीय संस्कृति, आचार-विचार के विरोधी नहीं थे। परन्तु मुसलमानों के राज्यकाल के व्यवहार से हिन्दुओं को यह ज्ञान होने लगा कि एक मुसलमान शासक केवल शासक ही नहीं, वरन वह इस्लामी सभ्यता और संस्कृति का प्रचारक भी है।

यह अनुभूति हिन्दुओं के मस्तिष्क में कई सौ वर्ष के इस्लामी राज्य के उपरान्त प्रवेश कर सकी और तब शिवाजी, गुरु गोविन्दसिंह, बन्दा बैरागी उत्पन्न हुए और इनके परिणामस्वरूप मध्य भारत में मराठा साम्राज्य और उत्तरी भारत में सिख साम्राज्य स्थापित हुए।

हिन्दुओं की यह प्रवृत्ति कि राजनीति और संस्कृति पृथक्-पृथक् हैं, नि:शेष नहीं हुई, परन्तु इस्लाम में राजनीति और संस्कृति का ऐक्य नैसर्गिक रूप में सदा विद्यमान रहा। यह बात अंग्रेज़ों के आने से पहले मुसलमानों में भी दबनी आरम्भ हो गई थी। अंग्रेज़ों ने इसे पुनः भड़काने का यत्न किया था, परन्तु यह यत्न सफल नहीं हो रहा था। मुसलमानों में भी ऐसे लोग एक भारी संख्या में उत्पन्न हो रहे थे, जो अंग्रेज़ों की इस चाल को भली-भाँति समझते थे और इससे बचने का यत्न करते थे।

यह हम बता चुके हैं कि मुसलमानों की इस नैसर्गिक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के लिए कैसे 1916 में कांग्रेस ने यत्न किया? इससे वे मुसलमान नेता जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस्लाम को राजनीति से पृथक् रखना चाहते थे, निरुत्साह हो गए और मुसलमानों के वे नेता जो अंग्रेज़ों की चाल के शिकार होकर मुसलमानों के लिए पृथक् अधिकार माँगने लगे थे, माननीय बन गए।

यह बात सिद्ध है कि मिस्टर जिन्ना 1916 तक मुसलमानों के लिए पृथक् अधिकारों के विरोधी रहे। 1921 में भी, वह कांग्रेस के खिलाफ़त आन्दोलन का विरोध करते रहे थे।

कांग्रेस द्वारा, मुसलमानों के लिए विशेष अधिकारों पर विचारार्थ नियुक्त उपसमिति में श्री जिन्ना और पण्डित मदनमोहन मालवीय भी थे। इस उप-समिति की बैठक 1915 में इलाहाबाद में हुई थी और वहाँ पर जिन्ना और मालवीय, दोनों ने ही मुसलमानों को विशेष अधिकार देने का विरोध किया था, परन्तु पीछे पण्डित मालवीय तो विरोध करते रहे और जिन्ना कांग्रेस के बहुमत के सामने झुक गए। श्री के.एम. मुन्शी इस विषय में अपनी पुस्तक 'Pilgrimage to Freedom' में इस प्रकार लिखते हैं—

When the nationalists accepted the Lucknow Pact, in the hope of building a united front against the British, they conceded to the Muslim minority a privileged position; the Hindus would excercise majority rights in political matters only if such exercise was permitted by the Muslims. At that time Jinnah himself was highly critical of separate electorates granted by the Minto-Morley Reforms in 1909, but he accepted them in the hope that thereby he would lead the Muslim masses into the nationalist camp.

Jinnah was then a nationalist to the core. I know it because I was closely associated with him in politics as in the legal profession.[170]

जब राष्ट्रवादियों ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा निर्माण करने के लिए 'लखनऊ पैक्ट' स्वीकार किया तो उन्होंने अल्पमत को अधिमानयुक्त स्थिति प्रदान कर दी। इसका अभिप्राय था कि हिन्दू राजनीतिक विषयों में भी अपने बहुमत का प्रयोग तब ही करेंगे जब मुसलमान ऐसा करने की स्वीकृति देंगे। उस समय इस पृथक् मतदाता सूची, जो मिण्टो मार्ले सुधारों (1909) में स्वीकार की गई थी, का जिन्ना भी आलोचक था, परन्तु उसने इस आशा में कि मुसलमान बहुत संख्या में राष्ट्रवादियों के साथ आ मिलेंगे, इसको स्वीकार कर लिया।

जिन्ना उस समय अपने अन्तरात्मा से राष्ट्रवादी था। मैं इसको भली-भाँति जानता हूँ। क्योंकि मेरा उससे सम्बन्ध राजनीति में और कानूनी व्यवसाय में घना था।

यह हम ऊपर बता चुके हैं कि जिन्ना (1921 में) किसलिए कांग्रेस छोड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया था? वह नहीं चाहता था कि राजनीति में मतान्ध मुल्ला, मौलानाओं को स्थान दिया जाए। गांधी जी और गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस यही कर रही थी।

1924 से लेकर 1931 तक देशभर में हिन्दू-मुसलमान झगड़े होते रहे और इन तमाम झगड़ों में गांधी जी और कांग्रेस, मुसलमानों की उच्छृंखलताओं तथा हिन्दुओं पर अत्याचारों को छिपाकर यह समझती रही कि मुसलमान इनसे प्रसन्न होकर इनकी राजनीतिक विचारधारा को स्वीकार कर लेंगे। कांग्रेस और गांधी जी के व्यवहार से जिन्ना इत्यादि राष्ट्रीय मुसलमान प्रसन्न नहीं हुए, प्रत्युत यह समझने लगे कि मुसलमान संगठित होकर हिन्दुओं से कुछ भी स्वीकार करा सकते हैं। अत: सन् 1927-28 में जिन्ना ने अपना व्यवहार बदला और 1931 में वह मुसलमानों का नेता बन गया। गांधी जी उन मुसलमानों का साथ देने के स्थान, जो कांग्रेस में सम्मिलित थे, सदा जिन्ना से सौदेबाजी करते रहे। इन्होंने देश में अराष्ट्रवादियों के विरुद्ध राष्ट्रवादी मोर्चा बनाने का कभी यत्न नहीं किया। कांग्रेस, गांधी जी और जवाहरलाल जी सदा राष्ट्रवादियों का विरोध करते रहे, जो देश की स्वतन्त्रता को हिंसात्मक उपायों से प्राप्त करना सम्भव समझते थे।

इस सन्दर्भ में जवाहरलाल जी का एक कथन लिख दिया जाए तो इनका राष्ट्रवादियों से विरोध और अराष्ट्रवादियों से इनकी मेल-मुलाकात सर्वथा स्पष्ट हो जाएगी।

नवम्बर 1931 में जवाहरलाल नेहरू कलकत्ता में थे। वहाँ यह लोगों से आतंकवाद के विषय में चर्चा करते रहे। उन चर्चाओं में इन्होंने आतंकवादियों के विषय में एक सार्वजनिक व्याख्यान में भी कुछ कहा था। जब यह कलकत्ता से लौटने लगे तो इनके वहाँ से चलने के कुछ पहले दो युवक इनसे मिलने आए। उनके विषय में आप इस प्रकार लिखते हैं—

On my last evening in Calcutta, a little before I was due to go to the station for my departure, two young men called on me. They were very young, about twenty, with pale, nervous faces and brilliant eyes. I did not know who they were, but soon I guessed their errand. They were very angry with me for my propaganda against terroristic violence. They said that it was producing a bad effect on young men, and they could not tolerate my intrusion in this way. We had a little argument; it was a hurried

अन्तिम सायंकाल, जब मैं कलकत्ता स्टेशन को चलने वाला था, दो युवक मुझसे मिलने आए। वे बहुत कम उम्र के थे। लगभग बीस वर्ष की वयस के होंगे। उनके मुख पीले और घबराए हुए थे। आँखें चमक रही थीं। मैं नहीं जानता था कि ये कौन हैं? परन्तु शीघ्र ही मुझे उनके आने का उद्देश्य पता चल गया। वे मुझसे बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

one, for the time for my departure was at hand. I am afraid our voices and our tempers rose, and I told them some hard things; and as I left them, they warned me finally that if I continued to misbehave in the future they would deal with me as they had dealt with others.[171]

नाराज़ थे, क्योंकि मैंने आतंकवादियों की हिंसा के विरुद्ध प्रचार किया था। उन्होंने कहा कि मेरे वाक्यों ने नवयुवकों पर बहुत बुरा प्रभाव डाला है और वे इस प्रकार के, मेरे उनके मामलों में दखल, सहन नहीं कर सकते। हममें विवाद छिड़ पड़ा। मैं जल्दी में था। इस कारण जल्दी-जल्दी में बातें हुईं। हमें क्रोध आ गया और हमारी आवाज़ ऊँची-ऊँची हो गई। मैंने उनको बहुत सख्त शब्द कहे और उनको छोड़ चला आया। उन्होंने मुझे अन्त में चेतावनी दी कि यदि मैंने अपना व्यवहार नहीं सुधारा तो वे मेरे साथ वैसा ही व्यवहार करेंगे जैसा वे दूसरों के साथ करते हैं।

इसका अर्थ स्पष्ट है कि जवाहरलाल जी ने कलकत्ता में इन क्रान्तिकारियों के विरुद्ध बहुत कुछ कहा होगा। तभी वे नवयुवक इनसे तू-तू, मैं-मैं करने चले आए होंगे। यही जवाहरलाल और उनके गुरु गांधी जी जिन्ना को जब वह Direct Action की धमकी दे रहा था, जनाब जिन्ना और कायदे आजम जिन्ना कहते हुए नहीं थकते थे।

गांधी और जवाहरलाल और इनके नेतृत्व में कांग्रेस ने देश की राष्ट्रीय शक्तियों को संगठित करने का कभी भी यत्न नहीं किया। ये सदा उनके पीछे भागते रहे और उनको रियायतें देने का वचन देते रहे, जिनके मन में राष्ट्रीयता की भावना नहीं थी और जिन्होंने देश का अंग्रेज़ों से स्वतन्त्र करने के लिए रंच मात्र भी त्याग और तपस्या नहीं की।

:: 2 ::

जैसे कि हम ऊपर लिख आए हैं, विभिन्न कारणों से अंग्रेज़ भारत छोड़ने पर तैयार हुए। जब इंग्लैंड में मजदूर दल की सरकार बनी तो वाइसराय लॉर्ड वेवल को आज्ञा दी गई कि हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों की सरकार बनाई जाए। इस पर लॉर्ड वेवल ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग को वाइसराय की 'ऐग्जैक्टिव कौन्सिल' में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दे दिया। कांग्रेस ने इन्कार कर दिया। कारण यह था कि वे इस कौन्सिल से अधिक शक्ति चाहते थे। इस अवरोध को पार करने के लिए ब्रिटिश कैबिनेट की राय से वाइसराय ने पूर्ण सत्ता सम्पन्न मन्त्रिमण्डल बनाने का प्रस्ताव कर दिया। इस प्रस्ताव को मुस्लिम लीग ने अस्वीकार कर दिया, परन्तु कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधी जी ने किसी समय यह कहा था कि यदि अंग्रेज़ हिन्दुस्तान में राज्य-सत्ता पूर्ण रूप से मुसलमानों को देकर जाएँगे तो भी वे पसन्द करेंगे।

जिन्ना यह समझ रहा था कि गांधी जी के इस प्रस्ताव के अनुसार वाइसराय उसे प्रथम स्वराज्य सरकार निर्माण करने का निमन्त्रण देगा और वह पूर्ण मन्त्रिमण्डल का निर्माण करेगा। जब वाइसराय ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों को आमन्त्रित किया और दोनों को अपने-अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए कहा तो जिन्ना ने समझा कि इस समय रूठ कर वह गांधी का प्रस्ताव स्वीकार करा लेगा और वह स्वयं प्रधान मन्त्री बनकर अपनी इच्छानुसार मन्त्रिमण्डल बनाएगा। यह बात लॉर्ड वेवल ने नहीं मानी। जिन्ना ने इस मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया और लॉर्ड वेवल ने केवल कांग्रेसियों को लेकर मन्त्रिमण्डल बना दिया। इसमें श्री जवाहरलाल को प्रधान मन्त्री बनाया गया और मुस्लिम लीग से बाहर के दो मुसलमानों को इसमें सम्मिलित कर लिया।

2 सितम्बर 1946 को स्वतन्त्रता का उदय-काल कहा जा सकता है। स्वतन्त्रता की प्राप्ति के उपरान्त जो कुछ हुआ, वह उन नेताओं के गुण-अवगुणों से ही हुआ मानना चाहिए, जिनको इस दिन वायसराय ने बुलाकर अन्तरिम सरकार बनाई।

श्री जवाहरलाल नेहरू महात्मा गांधी के प्रयत्नों से कांग्रेस के प्रधान बने थे। अतः स्वाभाविक रूप में अन्तरिम सरकार में श्री नेहरू नेता बन गए। नेहरू जी ने इस समय से लेकर अपने जीवन के अन्त काल तक जो कुछ किया, उस भले-बुरे का पूर्ण उत्तरदायित्व गांधी जी पर होना चाहिए। सन् 1936 में, बहुसंख्यक कांग्रेस सदस्यों की नीति के विरुद्ध, गांधी जी ने अपने प्रभाव से नेहरू जी को प्रधान बनाया था। तदनन्तर 1946 में पुनः गांधी जी और उनके चाटुकारों ने बहुसंख्यक कांग्रेस सदस्यों को डराया-धमकाया कि यदि श्री नेहरू को प्रधान न बनाया गया तो वे स्वराज्य सरकार में प्रधान मन्त्री नहीं बन सकेंगे और फिर वे क्या कुछ (अनर्थ) कर देंगे, कहा नहीं जा सकता, पुनः श्री नेहरू जी को प्रधान बनवाया। परिणामस्वरूप नेहरू अन्तरिम सरकार में प्रधान बन गए।

जो कुछ इन्होंने किया उसके विषय में श्री एन.बी. गाडगिल अपनी पुस्तक 'Government from Inside' में इस प्रकार लिखते हैं—

The main political force in the country was the Indian National Congress and its leaders were tired old	*देश में मुख्य राजनीतिक शक्ति 'इण्डियन नैशनल कांग्रेस' थी और*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

man. They were not quite sure of the gains of four decades of incessant struggle nor were they confident of what the future had in store for them. They were afraid to stretch too much lest it should break and all be lost. The result was that even the old and valiant fighters were inclined to compromise rather than stake their all.[172]

इसके नेतागण बूढ़े और थके हुए लोग थे। उनको पिछले चालीस वर्ष के निरन्तर संघर्ष से होने वाले लाभ पर विश्वास नहीं था। उनको भविष्य के विषय में भी भरोसा नहीं था। वे इस बात से डरते थे कि यदि कुछ अधिक खींचा-तानी की गई तो सबकुछ टूट-फूट कर विनष्ट हो जाएगा। परिणाम यह था कि पुराने बहादुर संघर्ष करने वाले भी समझौता करने पर तैयार थे और प्राप्त को भय में डालने की इच्छा नहीं रखते थे।

यह सबकुछ इस कारण था कि कांग्रेस ने सन् 1921 से लेकर अन्त तक ऐसे लोग तैयार नहीं किए, जो शासन का अनुभव प्राप्त किए होते। सन् 1921 से ही, गांधी जी की सम्मति से कांग्रेस प्रान्तीय और केन्द्रीय विधान सभाओं का बहिष्कार करती रही। कांग्रेस अपने सदस्यों में से कुछ विश्वस्त व्यक्तियों को कौन्सिलों में और मन्त्रिमण्डलों में भेजकर उनको शासन का अनुभव प्राप्त कराती तो 1946 में अन्तरिम सरकार बनने के समय ऐसे लोग होते, जो शासन की बागडोर को दृढ़ हाथों से पकड़कर शासन चला सकते। ऐसा इन्होंने नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि सन् 1946 में श्री नेहरू जैसे अयोग्य, अनुभवहीन और काल्पनिक लोक में विचरने वाले नेता बन गए।

वास्तव में यह एक अति कठिन समय था। पूर्ण देश में, 16 अगस्त 1946 से मुस्लिम लीग ने दंगे, फसाद, मार-काट, हत्याएँ और बलात्कार आरम्भ कर दिया था। मुस्लिम लीग का आरम्भ से यह व्यवहार रहा है कि उनकी मानी जाए, अन्यथा वे बलपूर्वक अपनी बात मनवाएँगे।

उस समय भारत में मुसलमानों की संख्या 15-16 प्रतिशत थी और मुस्लिम लीग यह चाहती थी कि हिन्दुओं के बराबर अधिकार और प्रतिनिधित्व मिले। हिन्दुस्तान में सिख, ईसाई, अछूत और अन्य समुदाय 20 प्रतिशत थे। और सवर्ण हिन्दू तथा मुसलमान शेष 80 प्रतिशत थे। इन 80 में 15 प्रतिशत मुसलमान थे और 65 प्रतिशत सवर्ण हिन्दू। मुस्लिम लीग यह चाहती थी कि मुसलमानों को कौन्सिलों में प्रतिनिधित्व, सरकारी सेवाओं और अन्य समस्त सरकारी सुविधाओं में भाग सवर्ण हिन्दुओं के समान मिले। इसके साथ ही मुसलमानों के विषय में किसी प्रकार की भी व्यवस्था मुसलमान सदस्यों की दो-तिहाई अनुमति के बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लागू न हो सके। यह माँग किसी भी सूझ-बूझ रखने वाले हिन्दुस्तानी अथवा अंग्रेज़ नीतिज्ञ को पसन्द नहीं आ सकती थी। अतः दो ही मार्ग खुले थे। एक यह कि अन्तरिम सरकार सुदृढ़ की जाती और दूसरे यह कि मुसलमानों का पृथक् देश बनाकर हिन्दु-मुसलमान जनता का विनिमय (exchange of population) कर दिया जाता।

जैसाकि श्री गाडगिल ने लिखा है, कांग्रेस नेता जो अन्तरिम सरकार में गए, वे बूढ़े और थके हुए थे। अतः वे उक्त दोनों बातें करने में असमर्थ थे।

इसके साथ एक बात और हुई कि 2 नवम्बर 1946 को वायसराय ने घोषणा की कि मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि भी सरकार में ले लिए जाएँगे। इस घोषणा को करते हुए वायसराय ने यह कहा था कि उन्होंने इनको लेने के विषय में श्री नेहरू से राय कर ली है। अन्तरिम सरकार में कांग्रेस के सदस्यों ने वायसराय की इस घोषणा और सूचना पर अचम्भा और भय प्रकट किया। श्री गाडगिल इस विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

Nehru was the leader of the party and as such had the moral obligation to consul his colleagues before committing himself to the Viceroy. On October 27, 1946 Lord Wavell invited the League to enter the Interim Government in a broadcast speech. He said that he had consulted Nehru before issuing that open invitation. I was stunned and immediately phoned Vallabhbhai. He said he was equally shocked! There was a fatal contradiction between the firm policy which we had decided upon in dealing with the League and the advice given to the Viceroy by Nehru.[174]

श्री नेहरू पार्टी के नेता थे। एतदर्थ यह उनका नैतिक कर्त्तव्य था कि वायसराय को किसी बात की राय देने से पूर्व अपने साथियों से राय कर लेते। 27 अक्टूबर 1946 को लॉर्ड वेवल ने मुस्लिम लीग को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया। इस निमन्त्रण को हमने रेडियो पर सुना। मैं चकित रह गया। मैंने उसी समय वल्लभभाई से टेलीफोन पर बात की। उसने कहा कि उसे भी बहुत धक्का लगा है। हमने यह निश्चय किया था कि मुस्लिम लीग से भविष्य में दृढ़तापूर्वक व्यवहार किया जाएगा। अतः श्री नेहरू का यह सम्मति देना कि मुस्लिम लीग को सरकार में सम्मिलित कर लिया जाए, हमारी उस दृढ़ता के निश्चय के विपरीत था।

इस घटना से एक बात स्पष्ट होती है कि मुसलमान दृढ़ता के सामने झुकते हैं। दोष गांधी और जवाहरलाल का था कि उनमें दृढ़ता थी ही नहीं। इनसे पहले मेरठ कांग्रेस अधिवेशन में यह निश्चय हो चुका था कि यदि मुस्लिम लीग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संविधान सभा में सम्मिलित नहीं होती तो उसके साथ मिलकर सरकार न बनाई जाए। मुस्लिम लीग ने संविधान सभा में बैठने से इन्कार कर दिया था। अत: सरदार पटेल और उसके साथी यह समझते थे कि जब मुस्लिम लीग संविधान बनाने में रुचि नहीं रखती तो उसका अधिकार नहीं कि वह देश की सरकार में सम्मिलित हो। नि:सन्देह मुस्लिम लीग तत्कालीन सरकार को दुर्बल बनाने के लिए ही उसमें सम्मिलित हुई थी। देशभर में मुस्लिम लीग बलवे और फसाद करा रही थी। अत: उसे सरकार में सम्मिलित होने का अधिकार देना भारी भूल थी और यह भूल नेहरू जी ने बिना अपने साथियों से राय किए की।

अन्तरिम सरकार 2 अक्टूबर 1946 को बनी थी। उस समय केवल कांग्रेसी इसमें सम्मिलित हुए थे और 2 सितम्बर से लेकर 27 अक्टूबर तक एक महीना और पच्चीस दिन के भीतर ही मुसलमान 'मुस्लिम लीग' को छोड़-छोड़कर कांग्रेस नेताओं के पास आने लगे थे। उनको लीग की नीति में भूल प्रतीत होने लगी थी। यह बात मुस्लिम लीग को भी अनुभव हुई होगी। यही कारण है कि वे अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने के लिए उतावली करने लगे थे। इस बात को श्री एन.बी. गाडगिल ने भी लिखा है—

...As the formation of an Interim Government became certain, non-League Muslims began to draw nearer to the Congress, Maulana Azad should have mobilised them; it was his duty. There was no compeer to him as an effective orator. But he seemed indefferent He had not wholeheartedly accepted the Congress decision to join the Interim Government. That is why he had put Asaf Ali's name in the Congress list of nominees to the Government. Azad had great influence with the thoughtful Muslims; but they too were being alienated from the Congress because of this indifference. The strange tribe of 'nationalist Muslims' which had arisen in our politics, was slowly dying. Vallabhbhai once jocularly, but most poignantly, observed that there was only one nationalist Muslim left in the country and he was Jawaharlal Nehru![7]

जब अन्तरिम सरकार का बनना निश्चित हो गया, लीग के अतिरिक्त मुसलमान कांग्रेस के समीप आने लगे। यह काम मौलाना आज़ाद का था कि वह उनको प्रेरणा देते। मुसलमानों में उसके बराबर का प्रभावी वक्ता और नहीं था, परन्तु वह इससे उदासीन था। उसने कांग्रेस के अन्तरिम सरकार बनाने के निश्चय को हृदय से स्वीकार नहीं किया था। यही कारण है कि उसने मुस्लिम प्रतिनिधियों में आसफ अली का नाम भेजा था। आज़ाद विचारशील मुसलमानों में बहुत प्रभाव रखता था, परन्तु वे भी आज़ाद की उदासीनता के कारण कांग्रेस से दूर होते जाते थे। हमारी राजनीति में राष्ट्रीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुसलमान एक विचित्र समुदाय बन गया था, जो धीरे-धीरे समाप्त होता जाता था। एक बार वल्लभभाई पटेल ने हँसी-हँसी में, परन्तु अति दुःख के साथ यह कहा था कि कांग्रेस में केवल एक राष्ट्रीय मुसलमान रह गया है और वह जवाहरलाल नेहरू है।

अन्तरिम सरकार में कांग्रेस के सम्मिलित होते ही सरकारी सचिवालय के हिन्दू अधिकारी सचिवालय में मुसलमान अधिकारियों द्वारा की जाने वाली शरारतों का परिचय श्री नेहरू इत्यादि को देना चाहते थे, परन्तु नेहरू उनसे बात करना पसन्द नहीं करते थे। इस घटना का उल्लेख भी श्री गाडगिल ने अपनी पुस्तक में किया है। वे लिखते हैं कि अन्तरिम सरकार में कांग्रेस के आते ही कुछ दिन उपरान्त एक उच्च I.C.S अधिकारी श्री गुरुनाथ बीबूर उसके पास आए और सचिवालय की कुछ बातें श्री नेहरू साहब को बताने के लिए समय माँगने लगे। वे चाहते थे कि श्री गाडगिल साहब कोई समय और स्थान निश्चित करें जहाँ वे (श्री बीबूर) और कुछ अन्य उच्च अधिकारी श्री नेहरू जी को रहस्य की बातें बता सकें।

I made an appointment with Nehru the next day at his residence and told him what the I. C. S. officers wanted. Nehru's reaction was characteristic. He flew into one of his tempers and said that nothing prevented them from seeing him in his office. I tried to persuade him and to explain that a meeting in office would not serve the purpose the officers had in view, But he refused to be persuaded. As I was leaving in disgust, he called me back and said that he would think about it and give a date and time for the meeting. The date and time never came! [175]

मैंने अगले दिन ही नेहरू से मिलकर इन I.C.S. अधिकारियों की बात कही। नेहरू के मन पर प्रतिक्रिया उसके स्वभावानुकूल ही हुई। वह क्रोध में बोला, ''उनको किसने मुझे कार्यालय में मिलने से मना किया है?''

मैंने नेहरू को समझाने का यत्न किया कि इस प्रकार की बातें कार्यालय में नहीं कही जा सकतीं और जो प्रयोजन इनसे पृथक् मिलकर सिद्ध होने वाला है, वह कार्यालय में बात करने से नहीं हो सकेगा; परन्तु नेहरू नहीं माना। मैं निराश उठ बैठा और आने लगा तो नेहरू ने बुला लिया और कहा, ''अच्छा, मैं दिन और समय निश्चय करूँगा।'' परन्तु यह दिन और समय कभी नहीं आया।

वास्तविक बात यह थी कि उस समय सचिवालय में हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों के अधिकारी (Officers) थे। प्रायः सब मुसलमान अफसर पाकिस्तान के स्वप्न ले रहे थे और वे अंग्रेज़ अधिकारियों के कान हिन्दुओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरुद्ध भरते रहते थे। इससे अंग्रेज़ अधिकारी जिनमें वायसराय भी सम्मिलित थे, हिन्दू पक्ष को समझ ही नहीं सकते थे। परिणामस्वरूप हिन्दुओं का पक्ष सदा से दुर्बल रहा है। इस बात को श्री एन.बी. गाडगिल अपनी पुस्तक में इस प्रकार लिखते हैं—

Even before the League entered the Cabinet officially, the Viceroy had no dearth of advisers who pleaded its cause. In fact, every Muslim officer was an advance guard of the League. After the League joined the Government, India's administration began to be openly balanced in favour of the Muslims. Liaquat Ali became the Finance Member....[176]

लीग के मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित होने से पहले ही वायसराय के पास लीग की सिफारिश करने वालों की कमी नहीं थी। यथार्थ में प्रत्येक मुसलमान अधिकारी मुस्लिम लीग का अग्रदूत के रूप में काम करता था। लीग के सरकार में सम्मिलित होने पर हिन्दुस्तान का शासन खुले रूप में मुसलमानों के पक्ष में हो गया।

इसके विपरीत हिन्दुओं का पक्ष लेने वाली संस्था केवल कांग्रेस ही थी। हिन्दुओं ने अपने लंगर तोड़कर कांग्रेस का समर्थन किया था और कांग्रेस के नेता थे श्री जवाहरलाल। श्री जवाहरलाल के विषय में श्री गाडगिल इस प्रकार लिखते हैं—

The leader of the Interim Cabinet was Nehru who was gradually unfolding his infinite capacity for procrastination. The Delhi Muslims used to go to Vallabhbhai Patel and press him to have no truce with the Muslim League. A firm policy towards the League, they said, would sap its power and a majority of Muslims would gravitate towards the Congress.[177]

अन्तरिम मन्त्रिमण्डल के नेता थे नेहरू, जो धीरे-धीरे अपनी दीर्घ सूत्री प्रवृत्ति को प्रकट कर रहे थे। दिल्ली के मुसलमान वल्लभभाई पटेल के पास यह कहने आते थे कि मुस्लिम लीग के साथ बातचीत बन्द की जाए। उनका कहना था कि मुस्लिम लीग के प्रति दृढ़ नीति बहुसंख्यक मुसलमानों को उधर से हटाकर कांग्रेस के साथ कर देगी, परन्तु नेता यह नहीं कर सके।

यह हम ऊपर बता चुके हैं कि कैसे नेहरू जी ने अपने साथियों से राय किए बिना वाइसराय को स्वीकृति दे दी कि मुस्लिम लीग को कौंसिल में ले लिया जाए। यह भी हम बता चुके हैं कि यह नेहरू जी की दुर्बल नीति का ही परिणाम था कि लीग को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का निमन्त्रण 27 अक्टूबर 1946 को दिया गया। लीग 2 नवम्बर 1946 को सम्मिलित हो गई। लीग के सदस्यों ने इसी दिन शपथ खाई और संविधान सभा की बैठक 9 दिसम्बर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1946 को आरम्भ हुई। इस पर भी लीग के प्रतिनिधि संविधान सभा में नहीं बैठे। श्री नेहरू कांग्रेस के निर्णयों और अपने साथियों की इच्छाओं के विपरीत मुस्लिम लीग के सदस्यों से सहयोग करते रहे।

मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि लियाकत अली खां हिन्दुस्तान के वित्त मन्त्री बन गए और उन्होंने फरवरी 1947 को आगामी वर्ष का बजट उपस्थित किया। यह बजट हिन्दू हितों के सर्वथा विपरीत माना जाता है। देश में इस बजट के विरुद्ध हाय-तौबा मच गई। इस बजट का परिणाम यह होने वाला था कि सब उद्योगपति और व्यापारी अपना काम-धन्धा बन्द करके बैठ जाते। इसके विषय में श्री गाडगिल इस प्रकार लिखते हैं—

The new budget was to be presented to the Assembly by the end of February. Normally new taxation proposals are not discussed with all the Ministers, but the Ministers directly concerned are given an opportunity to present their views, only the Finance Minister and Prime Minister discuss it and the outline of the Budget is revealed to the Cabinet which does discuss it but usually does not make any material changes. That year, Liaquat Ali had made revolutionary proposals. Nehru was given a rough idea of them. He seemed to have considered the proposals socialistic and agreed. Lord Wavell did not object because Nehru had agreed. As far as I know, Vallabhbhai was not consulted. Liaquat Ali presented the budget on the evening of February 28, and its impact shocked even the common man. The share market crashed and the capitalist class felt as if the sky had fallen. I did not think so. The dose was rather heavy, but I was of the opinion that a dose was necessary. When interviewed, I told the press that the proposals did sound the death-knell of capitalists, but they offered nothing much for the poor either.[178]

फरवरी के अन्त में बजट असैम्बली में उपस्थित होने वाला था। साधारणतया नए टैक्सों के प्रस्ताव मन्त्रिमण्डल में उपस्थित नहीं किए जाते, केवल व्यक्तिगत रूप में मन्त्रियों से उनके अपने विभाग के विषय में राय ली जाती है। प्रधान मन्त्री और वित्त मन्त्री बजट की मोटी-मोटी बातों पर बातचीत कर लेते हैं। इस वर्ष लियाकत अली ने क्रान्तिकारी प्रस्ताव रखे थे। नेहरू को उसका मोटा रूप बता दिया गया था। उसे वे प्रस्ताव समाजवादी प्रतीत हुए थे और वे वित्त मन्त्री से सहमत हो गए थे। लॉर्ड वेवल ने भी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। कारण यह कि उसे मालूम था कि नेहरू स्वीकार कर चुके हैं। मुझे मालूम है कि वल्लभभाई से राय नहीं ली गई थी। लियाकत अली ने 28 फरवरी 1947 को बजट उपस्थित किया। परिणाम में शेयर मार्केट बन्द हो गई और समस्त पूँजीपतियों को ऐसा प्रतीत हुआ कि आसमान गिर पड़ा है। मैं ऐसा नहीं मानता था। इस पर भी देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बोझा बढ़ गया था। मेरी सम्मति में यह आवश्यक था। जब मुझसे पत्रकारों ने भेंट की तो मैंने उनको बताया कि इस बजट से पूँजीपतियों की मौत की घण्टी बज गई है, परन्तु इससे गरीबों को भी कुछ लाभ नहीं हुआ।

इसमें विचारणीय बात यह है कि श्री नेहरू अन्तरिम सरकार बनने के समय से ही तानाशाह की भाँति व्यवहार रखने लगे थे। वैसे तो धनी-मानी व्यक्ति के पुत्र होने के कारण और अपनी शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव से उच्छृंखल तो ये सदा ही थे। इस व्यवहार का एक उदाहरण, श्री के.एम. मुन्शी अपनी पुस्तक में देते हैं—

In 1937, Bombay was the cockpit of Communism. In the first month of my office as Home Minister, a delicate situation arose over the orders of externment, internment or detention pending against Communist leaders about twenty in number. No sooner had I taken office than I began to wade through the relevant files discovering, as I did so, the sinister role played by the Communist Party of India, its ramifications and the sources from which its funds came. Once I told Lord Brabourne that we were considering the cancellation of some of these orders as we were pledged to do. He was emphatic : "You can do it only on my dead body," he said.

Soon after; Jawaharlal Nehru called me at Sardar's residence and asked me why I had not cancelled the orders against Communist Leaders. I told him that the law and order situation in the city of Bombay was very tricky ; that was studying the relative files; that I wanted to get a grip over the situation before I took the risk involved in cancelling the orders. Nehru, as was his habit, snapped at me and said contemptuously : "You have already become a police officer." His rudeness surprised me, but, I managed to suppress the retort which sprang to my lips. However, I left him somewhat abruptly and I think he saw how I felt.[179]

सन् 1937 में बम्बई कम्युनिज़्म का गढ़ था। मेरे प्रान्त के गृह-मन्त्री बनने के प्रथम मास में ही एक भयावह स्थिति उत्पन्न हो गई। वहाँ के कई कम्युनिस्टों के बन्दी बनाने, उनको प्रान्त से निकाल दिए जाने अथवा जेल में रोक लिये जाने की आज्ञाएँ चालू थीं। ऐसे कम्युनिस्टों की संख्या लगभग बीस थी। ज्यों ही मैं गृह-मन्त्री बना, मैंने इसके विषय में जाँच-पड़ताल करनी आरम्भ कर दी। मैंने देखा कि हिन्दुस्तान में कम्युनिस्ट पार्टी ने एक अति घिनौना व्यवहार अपनाया हुआ है। इसके सूत्र और इसके धन का स्रोत भी मुझे पता लग गया। लॉर्ड ब्रैबोर्न (प्रान्त के गवर्नर) से मैंने यह कहा था कि हम इनमें से कुछ को छोड़ने का विचार कर रहे हैं। उसने बलपूर्वक यह कहा था कि यह बात मेरे शव पर ही की जा सकेगी।

इसके कुछ दिन उपरान्त जवाहरलाल नेहरू सरदार के निवास स्थान पर मुझसे मिले और पूछने लगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि मैंने इन कम्युनिस्ट नेताओं के विरुद्ध सरकारी आज्ञाएँ रद्द क्यों नहीं कीं? मैंने बताया कि बम्बई नगर में शान्ति-व्यवस्था अस्थिर है और मैं इन लोगों के कागज़ देख रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि इनको छोड़ने से जो भय उत्पन्न होने वाला है, उस पर अधिकार पा लूँ, तब इनके विषय में विचार करूँगा। श्री नेहरू अपने स्वभावानुसार मुझको डाँटने लगे और घृणा से बोले, 'तुम तो अभी से पुलिस अफसर बन गए हो।' उसके इस उजड्डपने पर मुझे विस्मय हुआ। इस पर भी मैंने किसी प्रकार का उत्तर देने से अपने आपको रोका। उत्तर तो मेरे मुख पर था। मैं उठकर कमरे से बाहर निकल गया। मेरा विचार है कि उसे पता लग गया होगा कि मैंने उसके व्यवहार पर कैसा बुरा अनुभव किया है।

ऐसे थे श्री जवाहरलाल नेहरू, जिनको महात्मा गांधी बार-बार कांग्रेस का प्रधान बनवाते थे और जनता में अपने प्रभाव के द्वारा जिनकी रक्षा करते थे।

कांग्रेस के बहुत-से कार्यकर्त्ता और जवाहरलाल जी के साथ मन्त्रिमण्डल में राज्य के संचालन करने वाले, अब जवाहरलाल जी के विषय में अनेकानेक बातें लिख रहे हैं। उन सब बातों से यह सिद्ध होता है कि जवाहरलाल जी अकेले ही तानाशाह की भाँति देश की गतिविधियों को चलाते रहे हैं। दूसरे लोग और जो मन्त्रिमण्डलों से बाहर आकर जवाहरलाल जी के कार्यों की विवेचना करते हैं, वे उस समय जब वे उनके कार्यों में सहयोग देते थे, कुछ भी कहने अथना करने में असमर्थ रहे थे।

यह बात विख्यात है कि सरदार वल्लभभाई पटेल जवाहरलाल जी की नीतियों को पसन्द नहीं करते थे। दोनों में अनेकानेक विषयों पर मतभेद था। इस पर भी दोनों कांग्रेस में सम्मिलित रहे और पीछे मन्त्रिमण्डल में कार्य करते रहे। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इन लोगों ने उस समय जवाहरलाल जी के कार्यों का विरोध क्यों नहीं किया? इसमें कई कारण हो सकते हैं। हमारे विचार में सबसे प्रबल कारण गांधी जी थे और हिन्दू जनता का गांधी जी और जवाहरलाल जी पर अन्धविश्वास था। ये लोग जो नेहरू जी की नीतियों का विरोध करते थे, वे जनता के सामने विरोध नहीं कर सके। ये लोग डरते थे कि यदि उन्होंने नेहरू जी का विरोध किया तो जनता का नेतृत्व खो बैठेंगे और फिर उतना भी भला नहीं कर सकेंगे, जितना भीतर रहकर वे कर रहे हैं। हम उनके इस विचार को ठीक नहीं समझते। संसार में दुर्बल आत्माएँ समय पर बुराई का विरोध न कर सकने की सफाई में इसी प्रकार के बहाने उपस्थित करती रहती हैं। ऐसे लोग या तो अपने विचारों की सत्यता पर विश्वास नहीं करते अथवा सत्य के निरूपण का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहस नहीं रखते थे।

श्री गाडगिल अथवा सरदार श्री नेहरू के विपरीत अपने विचार प्रकट न कर सकने का बहाना इस प्रकार बनाते हैं—

The Congress members of the Executive Council were subjected to open criticism by the League in the Assembly and it was obvious that Jinnah encouraged them. The Congress Party was overwhelmed by the thought that it was responsible for the administration and handicapped by feeble leadership. Its lot was unenviable indeed........ Rajaji argued that it is the Congress Party which had formed the 'Cabinet'. The League was only a Junior partner. As such it was the responsibility of the Congress Party to see that the Government proposals went through.[180]

वायसराय की कौंसिल (मन्त्रिमण्डल) के कांग्रेस सदस्यों की, लीग के सदस्य आलोचना करते थे। यह स्पष्ट ही है कि ऐसा करने में जिन्ना उनको उत्साहित करते थे। कांग्रेस दल इस विचार से दबता जाता था कि यह देश के शासन के लिए उत्तरदायी है और इसमें त्रुटि इसके दुर्बल नेतृत्व में है। इसकी अवस्था सत्य ही दयनीय थी, मैंने इस अवस्था का विरोध करने के लिए एक योजना बनाई थी। वह योजना मैंने राजा जी को दिखाई।.... राजा जी ने वह योजना नहीं मानी। राजा जी की युक्ति यह थी कि मन्त्रिमण्डल कांग्रेस का है। लीग तो इसमें एक निम्न कोटि की भागीदार है। इस कारण यह कांग्रेस दल का उत्तरदायित्व है।

हम समझते हैं कि यह बुद्धि का फेर था। सन् 1921 से ही कांग्रेस तथा उनके नेतृत्व में देश के बहुसंख्यक हिन्दू मुसलमानों को एक अल्पसंख्यक समुदाय होने के कारण, अधिमान की स्थिति में स्वीकार करते आ रहे थे। उदारता, हृदय की विशालता और दया के हित में अपना सबकुछ निछावर करने वाले को इसलिए अस्वीकार करते रहे कि वे मुसलमानों के प्रति दृढ़ता की नीति के पक्ष में थे, इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमान अपनी अधिनियम की स्थिति को अपना अधिकार मानने लगे और वे भी कांग्रेस के साथ मिलकर उन देशभक्तों को देश-द्रोही घोषित करने लगे, जो समस्त देश-द्रोहियों के प्रति दृढ़ता का व्यवहार रखने के लिए कहते थे।

राजा जी का यह कहना कि देश के शासन का उत्तरदायित्व कांग्रेस के कन्धों पर है, ठीक था। परन्तु शासन तो अनधिकारियों को और देश से द्रोह करने वालों को दण्ड देने के लिए बनाया गया है, न कि उसको अधिमान की स्थिति में बैठाने के लिए।

वास्तव में अन्तरिम सरकार में इसी प्रकार के बुद्धिहीन और दुर्बल मन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले लोग थे। इनके ही कारण 16 अगस्त सन् 1946 से लेकर सन् 1947 के अन्त तक जस्टिस खोसला के अनुमान से, दस लाख लोगों की हत्या हुई थी। यह सब अहिंसा के अवतार महात्मा गांधी जी और उनके चेले-चाटों की करनी का फल है। हमारी इस बात का समर्थन भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री मेहरचन्द महाजन अपनी पुस्तक 'Looking Back' में करते हैं। आप लिखते हैं—

...There are others who claim that a peaceful partition of the country might have been possible if Jinnah had been taken more seriously earlier. I am sure, however, that the more the Congress had listened to Muslim clamour between 1921-1945, the worse would have been our fate. Partition was the inevitable fruit of communal representation with weightage that had been granted to the Muslims in 1909.[181]

कुछ लोग हैं जो यह दावा करते हैं कि यदि जिन्ना की बातों पर पहले ही गम्भीरतापूर्वक विचार कर लिया जाता तो देश-विभाजन न होता। पर मैं निश्चय से कह सकता हूँ कि कांग्रेस जितना अधिक सन् 1921 से सन् 1945 के भीतर मुसलमानों के हो-हल्ला को सुनती रही, उतना ही अधिक हमारे लिए बुरा होता गया। देश-विभाजन सन् 1909 में मुसलमानों को अधिमान की स्थिति मिलने से अनिवार्य हो गया था।

श्री महाजन आगे लिखते हैं—

If partition was inevitable, could it not have been carried out peacefully? Those who opposed partition compensated for their 'follly' by claiming independence as well.[182]

यदि विभाजन अनिवार्य था तो क्या वह शान्तिपूर्वक नहीं किया जा सकता था? मैं समझता हूँ कि वे लोग जो एक ओर स्वतन्त्रता की माँग करते थे और दूसरी ओर देश-विभाजन का विरोध करते थे, अपनी मूर्खता को कुछ तो कम कर रहे थे।

श्री महाजन का संकेत श्री गांधी जी की ओर है। गांधी जी मुसलमानों की माँगों के सामने आरम्भ से ही झुकते चले आ रहे थे और अन्त तक, अर्थात् जून सन् 1947 के तीसरे सप्ताह तक देश-विभाजन के विषय में कहते रहे कि यह उनके शव पर ही बनेगा।

देश-विभाजन का पूर्ण उत्तरदायित्व हिन्दू कांग्रेसी नेताओं पर है। यह उनके विचारों में दुर्बलता के परिणामस्वरूप हुआ। ऐटली जो भारत को स्वराज्य मिलने के समय इंग्लैंड का प्रधान मन्त्री था वह भी हिन्दुस्तान में घट रही दुर्घटना का कारण हिन्दुओं की अनिश्चयात्मक बुद्धि ही मानता था। श्री एन.बी. गाडगिल ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस बात का उल्लेख किया है। आप लिखते हैं—

...Atlee was correct in his judgement that the Hindu leaders were unwilling to take a firm decision but if a reasonable decision were to be imposed on them they would willy nilly accept it.[183]

ऐटली अपने अनुमान में ठीक था कि हिन्दू नेतागण किसी भी दृढ़ निश्चय को लेने के लिए तैयार नहीं थे। ऐटली समझता था कि यदि एक युक्तियुक्त निर्णय इन पर थोप दिया जाएगा तो वे किसी न किसी तरह मान जाएँगे। उसने यही किया और पाउण्टबेटन योजना हिन्दुस्तान में भेज दी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय परिच्छेद

देश-विभाजन-2

जिस जाति में ब्राह्मण-बल और क्षत्रिय-बल का समन्वय नहीं होता, वहाँ निराशा, असफलता और विनाश अवश्यम्भावी है। यही कांग्रेस के साथ हुआ। राजनीति में कार्य करने वालों को, जहाँ विद्वानों की सम्मति की सदा आवश्यकता रहती है, वहाँ अपने कार्यों को कार्यान्वित करने के लिए क्षात्र-बल की भी आवश्यकता होती है। कांग्रेस सन् 1886 से लेकर सन् 1916 तक तो राजनीतिक संस्था थी ही नहीं। तिलक इत्यादि कुछ लोग इसमें राजनीति भरने का यत्न करते रहे थे, परन्तु कांग्रेस के कर्णधार उन्हें कांग्रेस के समीप आने से रोकते रहे। सन् 1914-15 में कांग्रेस को यह समझ में आया कि उनकी नीति में परिवर्तन की आवश्यकता है। यदि वे परिवर्तन नहीं करेंगे तो राजनीतिक नेता कांग्रेस अधिकारियों को धक्के दे-देकर बाहर निकाल देंगे। अत: उन्होंने कांग्रेस के द्वार राजनीति के लिए खोल दिए। कांग्रेस ने स्वराज्य की माँग की और उस स्वराज्य की रूप-रेखा बनाने के लिए एक उप-समिति नियुक्त कर दी। इस उप-समिति का प्रस्ताव कांग्रेस ने सन् 1916 में स्वीकार किया। इस रूप-रेखा में कांग्रेस ने हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी सरकार की नीति को कि हिन्दू और मुसलमान दो भिन्न-भिन्न राष्ट्र हैं, स्वीकार कर लिया। इसके उपरान्त जो कुछ हुआ वह इसी निर्णय के परिणामस्वरूप ही हुआ।

कांग्रेस के सन् 1916 के निर्णय से पण्डित श्री मदनमोहन मालवीय, श्री बाल गंगाधर तिलक सहमत नहीं थे। ऐसा कहा जाता है कि श्री एम.ए. जिन्ना भी इस निर्णय से सहमत नहीं थे। दोनों विद्वान आदमी तत्कालीन कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं के हो-हल्ले में मौन हो गए। दुर्भाग्य की बात है कि ये तीनों आगे चलकर साम्प्रदायिक नेता माने गए और जिन्होंने सन् 1916 की साम्प्रदायिक नीति को स्वीकार किया था, वे अपने को राष्ट्रीय नेता घोषित करते रहे। इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथित राष्ट्रीय नेताओं में थे श्री मोतीलाल नेहरू, श्री सी.आर. दास, श्री महात्मा गांधी इत्यादि।

वह बात देश में बुद्धिशील वर्ग की शून्यता को प्रकट करती है। ऐसा ब्राह्मण (विद्वान व्यक्ति) जो अकेला होने पर भी सत्य का अवलम्बन न छोड़े, देश में कहीं नहीं था। यदि कहीं कोई था भी तो देश उसके साथ नहीं था। देश उन लोगों के साथ था, जो अविचारशीलता से देश-विभाजन के पक्ष में हो गए थे।

यह बात सत्य है कि ब्रिटिश सरकार ने सन् 1909 में भारत के टुकड़े-टुकड़े करने की नींव डाल दी थी। श्री मेहरचन्द्र महाजन का कथन जो हम पिछली कण्डिका में लिख आए हैं, ठीक है। कांग्रेस और उसके मोतीलाल नेहरू प्रभृति नेताओं ने न केवल ब्रिटिश सरकार की सन् 1909 की योजना का, सन् 1916 में समर्थन किया था, वरन वे निरन्तर उस योजना को सफल बनाने में यत्नशील रहे। कांग्रेस के सन् 1919 वाले अमृतसर अधिवेशन में पारित प्रस्ताव पर यदि कार्य किया जाता, तो वह कार्य देश की राष्ट्रीय शक्तियों के एक करने में सहायक होता। उस समय राष्ट्रीयता की भावना देश की हिन्दू समाज में अति उग्र थी। प्रायः सब विचारशील लोग ब्रिटिश सरकार की कुनीति को समझ रहे थे। उस समय श्री गांधी और श्री मोतीलाल नेहरू ने देश का ध्यान राष्ट्रीय संगठन से हटा कर अराष्ट्रीय शक्तियों को प्रसन्न करने और आगे लाने में लगा दिया। तब से पग-पग करके कांग्रेस गांधी जी के नेतृत्व में अराष्ट्रीय मुसलमानों के सम्मुख घुटने टेकती रही और फिर जब कुछ कारणों से स्वराज्य मिलने लगा तो यही कांग्रेस अपने खड़े किए भूत अर्थात् मुसलमानी अधिमान का विरोध नहीं कर सकी। गांधी जी की यह घोषणा कि वे देश-विभाजन से पूर्व प्राण त्याग देंगे, जनता को धोखा देना था। ज्यों ही गांधी जी को पता चला कि जवाहरलाल नेहरू लॉर्ड माउण्टबेटन की योजना को मान गए हैं; वे भी मान गए।

हम समझते हैं कि गांधी जी का, किसी भी प्रकार से देश-विभाजन का विरोध करने का विचार नहीं था। हिन्दू जनता कांग्रेस के नेतृत्व के थोथापन को समझने लगी थी। श्री सावरकर जी के नेतृत्व में हिन्दू एकत्रित होकर मुसलमानों की माँग का विरोध करने को तैयार थे। गांधी जी कांग्रेस के पाँव तले से मिट्टी खिसकती देख, वह मरने की घोषणा करने लगे।

श्री सावरकर इत्यादि व्यावहारिक दृष्टिकोण रखते थे। जानते थे कि पिछले 27-28 वर्षों में कांग्रेस ने देश के क्षात्र-बल को निस्तेज किया है। यदि उन युवकों को, जो देश और राष्ट्र के लिए मरने-मारने में संकोच नहीं करते थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेस अपने साथ रख सकती और उनको नि:शेष करने के लिए उनके कार्यों की निन्दा न करती तो यह सम्भव था कि जो कुछ मुसलमानों ने सन् 1940 से लेकर सन् 1948 के आरम्भ तक किया, वे न कर पाते। कदाचित् उनके आतंक का प्रभाव ब्रिटिश सरकार पर भी इतना न होता कि वह मुसलमानों का पक्ष इतनी उग्रता से ले सकती, जितनी उग्रता से उसने सन् 1930 से सन् 1947 तक लिया था। व्यावहारिक रूप में ब्रिटिश सरकार सन् 1930 की गोलमेज़ कॉन्फ्रेन्स के बाद से निरन्तर मुसलमानों को आगे लाकर देश की स्वराज्य प्राप्ति में बाधाएँ खड़ी करती रही थी।

दुर्भाग्य की बात यह है कि देश में क्षात्र-बल राष्ट्रीय शक्तियों का सहयोगी नहीं था। वह ब्रिटिश सरकार का सहयोगी रहा। देश का ब्राह्मण वर्ग (intelligentia) भी कांग्रेस के साथ नहीं था। वह निराश था, उदासीन था और अपने आपको असहाय पाता था। कांग्रेस बुद्धिशील व्यक्तियों और क्षात्र-धर्म के पालन करने वालों से रहित कल्पना के घोड़े दौड़ाने वाले स्वार्थी वकीलों का एक मजमा था। हमारी इस बात का समर्थन श्री एन.बी. गाडगिल अपनी पुस्तक में इस प्रकार करते हैं—

....I met Bhulabhai and asked whether I should contest the elections, and if so, for which seat, Provincial or Central. Bhulabhai replied, 'Within two years the British would transfer power and leave India,' and sarcastically remarked, 'whether they leave a united or a divided India depends on your leaders.' He told me that although my work in the Central Legislature was commended by the Congress high ups, I would not get into the Central Cabinet, 'because all those people are hungry for power and once they occupy seats of power, they would not leave them till death.[184]

मैं भूलाभाई देसाई से मिला और मैंने पूछा कि आगामी निर्वाचनों में प्रान्तीय विधान सभा के लिए खड़ा होऊँ अथवा केन्द्रीय विधान सभा के लिए?

भूलाभाई ने उत्तर दिया, ''दो वर्ष में ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तान को छोड़ जाएगी।'' और फिर व्यंगात्मक भाव में कहा, ''जाते समय वे एक हिन्दुस्तान छोड़ जाएँगे अथवा विभाजित हिन्दुस्तान यह हमारे नेताओं पर निर्भर करता है।'' यद्यपि मेरा केन्द्रीय विधान सभा में पिछला कार्य प्रशंसनीय रहा है और उच्च कांग्रेसी लोगों ने इसे पसन्द किया है, तथापि देसाई साहब ने कहा कि मुझे केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में नहीं लिया जाएगा। कारण यह कि वे सब लोग अधिकार के भूखे हैं और एक बार वे अधिकार के स्थान पर पहुँच गए, तब वे मरने से पहले उसे छोड़ेंगे नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत: उसकी राय थी कि मैं प्रान्तीय विधान सभा के लिए खड़ा होऊँ।

भूलाभाई देसाई विधान सभा के कांग्रेस दल के नेता थे। वह एक योग्य वकील थे और क्योंकि वह सन् 1942 सत्याग्रह में सम्मिलित नहीं हो सके और जेल नहीं गए, इस कारण कांग्रेस में उनकी प्रतिष्ठा बहुत कम थी। वह भी यह समझते थे कि तत्कालीन कांग्रेस में अधिकारों के भूखे लोग भरे पड़े हैं। यही बात हमने ऊपर लिखी है।

जब मुस्लिम लीग अन्तरिम सरकार में सम्मिलित हुई और दुर्बल कांग्रेसी नेताओं को निष्क्रिय करने में सफल हो गई तो बंगाल और पंजाब में मुसलमानों ने वह उधम मचाया कि वहाँ की जनता भाग-भाग कर निकलने लगी। लाहौर से लेकर पेशावर तक पूर्ण पंजाब धू-धू कर जलने लगा। मुसलमान मुल्ला-मौलानाओं ने जानवरों की हड्डियाँ दिखा-दिखाकर मुसलमानों को भड़काया कि यह बिहार में हिन्दुओं के अत्याचार से बहुत-से मुसलमानों की हड्डियाँ हैं। इससे संगठित रूप में मुस्लिम लीग के वालंटियर (रज़ाकार) चुन-चुन कर हिन्दुओं के मोहल्लों और मकानों को लूटने लगे, आग लगाने लगे, स्त्रियों से बलात्कार करने लगे और उनका अपहरण करने लगे। यही बात बंगाल में होने लगी। पंजाब और बंगाल के हिन्दू त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!! करने लगे। इस सब समय श्री जवाहरलाल और उनके साथी अशक्त बैठे मुख देखते रहे। गांधी ने मिस्टर जिन्ना के साथ एक विज्ञप्ति प्रकाशित कर दी, जिसमें हिन्दुओं तथा मुसलमानों को शान्ति से रहने का उपदेश दे दिया। सब हिन्दू जानते थे कि पंजाब, बंगाल और सीमा प्रान्त में मुस्लिम लीग ही बलवे करा रही है और मुस्लिम लीग का नेता, उक्त विज्ञप्ति में गांधी जी के साथ हस्ताक्षर कर, गांधी जी की और हिन्दू समाज की हँसी उड़ा रहा है।

परन्तु हिन्दुओं ने अपने हाथ काट कर गांधी को दे रखे थे और गांधी जी ने देश का भाग्य विधाता नेहरू जी को बना रखा था। नेहरू जी हिन्दुओं के साथ किसी प्रकार की सहानुभूति रखते प्रतीत नहीं होते थे।

16 अगस्त 1946 को कलकत्ता में 'डायरेक्ट ऐक्शन' के नाम से एक विशाल स्तर पर बलवा किया गया। इस बलवे में हज़ारों हिन्दू और मुसलमान मारे गए। कई करोड़ रुपये की सम्पत्ति विनष्ट की गई। उस समय बंगाल में मुस्लिम लीग मन्त्रिमण्डल था और वह कलकत्ता के इस बलवे की जाँच कराना नहीं चाहता था। 2 सितम्बर सन् 1946 को दिल्ली में अन्तरिम सरकार बनी। नेहरू जी प्रधान मन्त्री बन गए। इस समय तक नौआखली का हत्याकाण्ड हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। लोग हिन्दुस्तान की केन्द्रीय सरकार से माँग करने लगे कि इन दोनों हत्याकाण्डों की जाँच की जाए और अपराधियों को दण्ड दिया जाए। लोग खुलेआम कह रहे थे कि बंगाल के मुख्य मन्त्री सुहरावर्दी इस हत्याकाण्ड के मूल कारण हैं। केन्द्रीय सरकार, दूसरे शब्दों में श्री नेहरू इस जाँच से आनाकानी करते रहे। जब जनमत का दबाव अधिक हो गया तो केन्द्रीय सरकार ने अपनी ओर से कोई जाँच-कर्त्ता नियुक्त करने के स्थान बंगाल सरकार को जाँच-कर्त्ता नियुक्त करने को कह दिया।

जब बिहार में बलवा हुआ और यह कहा जाने लगा कि हिन्दुओं ने मुसलमानों को मारा है, तो श्री नेहरू और गांधी भागे-भागे वहाँ जा पहुँचे और बिहार सरकार को विवश करने लगे कि मुसलमानों की हानि पूरी करे। वास्तव में बिहार में बलवा आरम्भ करने वाले भी मुसलमान ही थे, परन्तु अल्पसंख्या में होने के कारण वे पिट गए। उत्तर प्रदेश में भी मुसलमानों ने बलवा किया। यहाँ वे हिन्दुओं को हानि पहुँचाने में सफल हुए। दिल्ली में भी बलवा हुआ। 2 नवम्बर सन् 1946 को मुस्लिम लीग के सदस्य अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने के समय सौगन्ध लेने के लिए वायसराय भवन में गए। श्री नेहरू जी भी वहाँ गए थे। इनकी मोटर गाड़ी भवन के बाहर खड़ी थी और वहाँ, कहा जाता है, मुसलमान भीड़ ने मोटर गाड़ी को आग लगा दी।

इसी दिन लियाकत अली इत्यादि मुसलमान नेता केन्द्रीय विधान सभा में भाग लेने के लिए आए तो जवाहरलाल जी की मोटर गाड़ी को मुसलमान भीड़ ने घेर लेने का यत्न किया और यदि उस समय कुछ हिन्दू युवक नेहरू जी को बचाने के लिए उस मुस्लिम भीड़ पर आक्रमण न कर देते, तो नेहरू जी पर क्या बीतती, कहना कठिन है।

इसी दिन सायंकाल सदर बाज़ार दिल्ली में मुसलमानों की भीड़ ने ट्राम गाड़ियाँ रोक-रोककर हिन्दुओं को मुसलमानों से पृथक् कर उन्हें मारना-पीटना आरम्भ कर दिया। इसका विरोध भी कुछ हिन्दू युवकों ने किया। कई घण्टे तक मार-काट जारी रही।

मार्च सन् 1947 तक देश में शान्ति-व्यवस्था सर्वथा भंग हो गई। गुड़गांवा में मुसलमानों ने बहुत लूट-मार मचा रखी थी। वहाँ का डिप्टी कमिश्नर किसी कारण से कुछ कर नहीं रहा था। श्री वल्लभभाई पटेल मोटर ले वहाँ जा पहुँचे और डिप्टी कमिश्नर से वहाँ की व्यवस्था के विषय में पूछताछ करने लगे। डिप्टी कमिश्नर ने उत्तर देने से इन्कार कर दिया। पटेल जी अपना-सा मुख लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वापस आ गए। इस प्रकार का दुर्बल, नपुंसक मन्त्रिमण्डल अन्तरिम सरकार का था कि वे अपने एक मन्त्री के अपमान के विषय में एक डिप्टी कमिश्नर से पूछ नहीं सके।

इस समय लॉर्ड वेवल अपना पद त्याग कर, इंग्लैंड चले गए और उनके स्थान पर लॉर्ड माउण्टबेटन यहाँ आए। वे लॉर्ड एटली, इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री से यह निर्देश लेकर आए थे कि चूँकि हिन्दू नेता दुर्बल अनिश्चिन मन और अव्यावहारिक हैं, अतः उन पर किसी प्रकार का भी निर्णय थोप दिया जाए तो वे मान जाएँगे।

यह कहा जाता है कि श्री वी.पी. मैनन ने वाइसराय लॉर्ड माउण्टबेटन की योजना में निर्माणात्मक सहयोग दिया और वह योजना लॉर्ड माउण्टबेटन इंग्लैंड में जा, वहाँ के मन्त्रिमण्डल से स्वीकार करा भारत में आए और 3 जून सन् 1947 को उसकी घोषणा कर दी गई। उस योजना पर जवाहरलाल जी और सरदार वल्लभभाई पटेल अपनी स्वीकृति 2 जून को ही वाइसराय को दे आए थे। लॉर्ड माउण्टबेटन ने जिन्ना को कहा, "यह योजना है। अगर स्वीकार न हो तो चौबीस घण्टे के अन्दर अपनी आपत्ति लिखो और तब मैं जो उचित समझूँगा, कर दूँगा।"

इस समय तक जिन्ना पाकिस्तान की माँग कर रहा था। उस पाकिस्तान में वह पश्चिमोत्तरी सीमा प्रान्त, सिन्ध, पूर्ण पंजाब, पूर्ण बंगाल, पूर्ण आसाम और फिर उत्तरी और पश्चिमी पााकिस्तान को मिलाने के लिए हिमालय के नीचे-नीचे एक सौ मील चौड़ी पट्टी (corridor) चाहता था।

माउण्टबेटन की योजना में यह था कि सिन्ध पूर्ण रूप से पाकिस्तान में जाए। पंजाब का पश्चिमी भाग पाकिस्तान में हो और पूर्वी भाग भारत में हो। बंगाल का पूर्वी भाग पाकिस्तान में हो और पश्चिमी भाग भारत में रहे। आसाम के सिलहट जिला में मतगणना की जाए, जिससे यह पता चले कि वह जिला पाकिस्तान में जाना चाहता है अथवा भारत में आना चाहता है। इसके साथ ही पश्चिमोत्तरी सीमा प्रान्त में आम चुनाव किए जाएँ, जिससे यह पता चले कि वह पाकिस्तान में जाना चाहता है अथवा भारत में ?

इस योजना में एक विशेष बात यह थी कि देशी रियासतों पर से इंग्लैंड के बादशाह का संरक्षण हटा लिया जाए और उन्हें स्वतन्त्रता दी जाए कि वे पाकिस्तान अथवा भारत, जिससे मिलना चाहते हैं, मिल जाएँ। इतनी राय दी गई कि उन्हें भारत अथवा पाकिस्तान, जो भाग समीप हो, उसमे मिलना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कुछ अव्यवस्था कांग्रेस ने कर रखी थी, उसमें यह योजना सर्वोत्तम थी और गांधी जी इसको मानने के लिए भी आनाकानी कर रहे थे।

माउण्टबेटन योजना का एक अंश कांग्रेस पहले ही मान चुकी थी। मार्च सन् 1947 में कांग्रेस की 'वर्किंग कमेटी' ने यह निश्चय कर दिया था कि पंजाब दो भागों में बाँट दिया जाए। एक जिसमें मुसलमान बहुसंख्या में हैं और दूसरे जिसमें हिन्दू बहुसंख्या में हैं। इस प्रस्ताव का समाचार पाकर गांधी जी ने श्री नेहरू और सरदार पटेल दोनों को लिखकर पूछा कि इसका क्या अर्थ है ? इसका अभिप्राय था कि गांधी जी के मस्तिष्क में बंगाल और पंजाब तो पाकिस्तान में जा ही चुके थे। जवाहरलाल जी और पटेल जी के उत्तर आए, जिनमें यह लिखा था कि ऐसा ही निर्णय बंगाल के विषय में होगा और जिन्ना की माँग का यही एक उत्तर है।

इसके उपरान्त जब माउण्टबेटन योजना प्रकाशित हुई तो गांधी जी कुछ भी समझ नहीं सके। पश्चिमोत्तरी सीमा प्रान्त में नए चुनाव की बात उनको और भी विक्षुब्ध करने वाली थी। गांधी जी को पंजाब के उन हिन्दुओं की चिन्ता नहीं थी, जिन पर 'डायरेक्ट एक्शन' का प्रभाव हुआ था। वे चिन्तित थे सीमा प्रान्त के मुसलमानों के विषय में। उन्हें सिलहट में मतगणना नहीं अखरी। केवल सीमा प्रान्त में ही मतगणना से वे दुःखी हुए।

अन्त में उस परिस्थिति को जिसके निर्माण में उनका अपना हाथ कम नहीं था, मानने पर वे विवश हो गए और वे फिर देश-विभाजन को माने ही नहीं, वरंच उसकी सिफारिश करने के लिए दिल्ली में हो रही कांग्रेस कमेटी में जा पहुँचे।

ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में, जिसकी बैठक जून, सन् 1947 के तीसरे सप्ताह दिल्ली में हुई थी, बंगाल और सिन्ध के सदस्यों ने बहुत हो-हल्ला किया। वे माउण्टबेटन की योजना के विरोधी थे। इस मीटिंग का वृत्तान्त श्री एन.बी. गाडगिल इस प्रकार लिखते हैं—

The plan needed the approval of the All India Congress Committee. A meeting was held at the Constitution Club in New Delhi in the third week of June and a resolution recommending the acceptance of the Mountbatten Plan was placed before it. Three or four speeches were made. But it was of the nature of going

माउण्टबेटन की योजना को ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी से स्वीकार कराना था। जून, सन् 1947 के तीसरे सप्ताह में इसकी एक बैठक नई दिल्ली में 'कांस्टिट्यूशन क्लब' में हुई और उसमें लॉर्ड माउण्टबेटन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

through a formula. All sang the same tune; 'Accept whatever is available (प्राप्तं प्राप्तं उपासीत)'. The speeches of the Hindu members from Bengal reflected the anguish and darkness of despair. They showed the painful awareness of the destiny which was taking Bengal to the slaughter house. But Dr. Choithram Gidwani's speech was historic and heartbreaking. Many of us sobbed unashamedly while he was speaking. He described graphically the tragic neglect of Sindhi Hindus by the Congress and their ultimate sacrifice on the altar of political expediency. He rejected the idea that what was happening was destined and unalterable. To accept it, he said, was to betray one's manhood. His speech was extraordinarily emotional yet it did not lack in thought and wisdom. For him, surrender to injustice was no part of wisdom.[185]

योजना को स्वीकार करने का प्रस्ताव उपस्थित किया गया। तीन-चार व्याख्यान इस योजना की विवेचना पर हुए। ये लोग कहते रहे कि जो मिलता है ले लो (प्राप्तं प्राप्तं उपासीत)। इसके उपरान्त बंगाल के हिन्दू सदस्यों के दुःख और अंधकारमय निराशा से भरे व्याख्यान होने लगे। उन्होंने बताया कि वे बंगाल के दुःखित भविष्य के विषय में यह जानते हैं कि वह कसाबखाने में हत्या के लिए ले जाया जा रहा है। डाक्टर चौथराम गिडवानी का भाषण सर्वाधिक हृदय विदीर्ण करने वाला था। जब वे बोल रहे थे तो हम में से बहुत, निर्लज्जों की भाँति रो रहे थे। उसने चित्र खींच कर वर्णन किया कांग्रेस ने कैसे सिन्धी हिन्दुओं की भयानक अवहेलना की है और कैसे उनको सामयिक राजनीतिक सुविधा की वेदी पर बलि किया है। उसने इस विचार का खण्डन किया कि जो कुछ हुआ है, वह होना ही था, बदला नहीं जा सकता था। इसको स्वीकार करना मानवता से गद्दारी करना है। यह पूर्ण भाषण बहुत ही भावुकता से भरा पड़ा था। इस पर भी इसमें बुद्धिमत्ता और विचारशीलता की कमी नहीं थी। उसने कहा था कि अन्याय के सामने झुक जाना बुद्धिमत्ता के लक्षण नहीं हैं।)

श्री गाडगिल ने इस वर्णन में एक बात जान-बूझकर छोड़ी है। वह यह है कि जिस समय डाक्टर चौथराम भाषण कर रहे थे, श्री नेहरू और पटेल इत्यादि को अपने पाँव तले से मिट्टी खिसकती दिखाई देने लगी थी। उस समय गांधी जी अपना साप्ताहिक व्रत रखे हुए हरिजन कालोनी में बैठे थे। कांग्रेसी नेताओं को यह समझ आने लगा था कि यदि डाक्टर चौथराम के व्याख्यान के बाद मतगणना की गई तो माउण्टबेटन की योजना को अस्वीकार कर दिया जाएगा। अतः उन्होंने एक विशेष दूत गांधी जी के पास भेजा कि वे कांग्रेस कमेटी में आकर अपने प्रिय जवाहरलाल की रक्षा करें। गांधी जी अपना व्रत समय से पहले तोड़कर भागे-भागे 'कांस्टिट्यूशन क्लब' में पहुँचे और डाक्टर साहब के भाषण के उपरान्त,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने नेताओं के मान की रक्षा का वास्ता डालकर, प्रस्ताव पारित करने का आग्रह करने लगे।

यह ठीक है कि सिन्ध, पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगाल वालों से बहुत अन्याय हुआ था। यह अन्याय गांधी जी की अहिंसात्मक नीति का सीधा परिणाम था। गांधी जी अपने पूर्ण जीवन काल में, हिंसा के आगे सिर झुकाते रहे थे। वे भली-भाँति जानते थे कि अंग्रेज़ भले ही अति कूटनीतिज्ञ हों, परन्तु निहत्थे शत्रु को मारना पसन्द नहीं करते। अत: उनका सत्याग्रह सदा अंग्रेज़ों के विरुद्ध ही रहा। मुसलमान तथा अन्य क्रूर हिंसात्मक कार्यवाही करने वालों के विपरीत कभी भी सत्याग्रह करने का उनका साहस नहीं हुआ। यही कारण था कि मुसलमानों के सम्मुख वे पग-पग कर पीछे हटते जाते थे। इस पर भी वे अपनी चतुराई से जनता में सदैव अपने को सफल घोषित करते थे।

तत्कालीन स्थिति इतनी भयंकर हो गई कि गांधी जी के लिए माउण्टबेटन योजना एक ईश्वरीय देन के रूप में प्रकट हुई और वे अपने कांग्रेसी चेले-चाटों के साथ इसको मान गए।

दिल्ली में अन्तरिम सरकार बने लगभग आठ महीने हो चुके थे। सरदार पटेल जिनकी दृढ़ता और व्यावहारिकता के विषय में दो-मत नहीं हो सकते, वे भी अपने साथियों, अपने नेता श्री जवाहरलाल और अन्तरिम सरकार के मुस्लिम सदस्यों के कारण कुछ नहीं कर सके थे। 'कलकत्ता डेली' के दिल्ली स्थित संवाददाता की एक रिपोर्ट मई सन् 1947 के दूसरे सप्ताह में इस प्रकार छपी थी—

My reading of the situation....is that Delhi may soon be centre of 'direct action' on the lines of what was recently witnessed in the Punjab and North-West Frontier Province... The Communications Department of the Government of India has lost no time in completely Muslimising all important posts in the higher cadre of the Delhi telephone system by replacing the European, Hindu and Sikh officers with Muslims.... All strategic and key posts have been placed in the charge of Muslim officers so that in case of an emergency like what the Punjab and the North-West Frontier Procince have recently passed through, communications by means of

परिस्थिति का मेरा अध्ययन इस प्रकार है....दिल्ली में वैसा ही 'डायरेक्ट ऐक्शन' शीघ्र होने वाला है, जैसा अभी-अभी पंजाब और पश्चिमोत्तरी सीमा प्रान्त में किया गया है।....हिन्दुस्तान की केन्द्रीय सरकार के संचार विभाग को अविलम्ब मुसलमानी बना दिया है। दिल्ली टेलीफोन विभाग के समस्त आवश्यक स्थानों पर यूरोपियन, हिन्दू और सिख अधिकारियों को निकालकर मुसलमान नियुक्त कर दिए गए हैं। समस्त आवश्यक स्थान मुसलमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

telephone between the different parts of Delhi itself and also beween Delhi and other parts of India through the trunk exchange may be absolutely under their control.[186]

अधिकारियों के हाथ में दे दिए गए हैं, जिससे वैसा ही समय पड़ने पर जैसा पंजाब और पश्चिमोत्तरी प्रान्त में अभी-अभी पड़ा था, समस्त संचार साधन दिल्ली के भीतर और दिल्ली के हिन्दुस्तान के अन्य भागों के साथ काट लिये जाएँ अथवा नियंत्रण में कर लिये जाएँ।

यह सबकुछ हुआ श्रीयुत सरदार वल्लभभाई पटेल की नाक के नीचे। दिल्ली में 'डायरेक्ट एक्शन' नहीं किया जा सका। दिल्ली के जानकार लोग जानते हैं कि इस 'डायरेक्ट ऐक्शन' को रोकने का श्रेय दिल्ली की पुलिस और सेना को नहीं है। टेलीफोन विभाग की तरह पुलिस भी पूर्ण रूप से मुसलमानी बना दी गई थी। दिल्ली के डिप्टी कमिश्नर एक मुसलमान थे और कमिश्नर एक असन्तुष्ट अंग्रेज़। दिल्ली को बचाने का श्रेय उन युवकों को देना होगा जिन्होंने असम्बली चैम्बर के बाहर जवाहरलाल जी की गाड़ी पर मुसलमानों के आक्रमण का विफल बनाया था और जिन्होंने उसी दिन सदर बाज़ार में मुसलमानों द्वारा किए जाने वाले कत्लेआम का विरोध किया था। दिल्ली में एक इस प्रकार की प्रबल संस्था थी जिसे कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल पर भरोसा नहीं था और जो मिथ्या अहिंसा का नाम जपते हुए मरने के लिए तैयार नहीं थी।

जिस समय अन्तरिम सरकार में देश के धन-सम्पद को पाकिस्तान और भारत में बाँटा जा रहा था, मुस्लिम लीग लॉर्ड माउण्टबेटन की योजना को विफल बनाने का यत्न कर रही थी। मिस्टर जिन्ना और महात्मा गांधी ने एक संयुक्त वक्तव्य निकाला था और उस वक्तव्य में से दोनों समुदायों के घटकों को परस्पर मैत्री भाव रखने के लिए कहा था। कम से कम मुस्लिम लीग की ओर से यह वक्तव्य हिन्दुओं की आँखों में धूल झोंकने के सदृश था। मुस्लिम लीग ने उस वक्तव्य की अवहेलना कर यह यत्न करना आरम्भ कर दिया कि हिन्दुस्तान के वह क्षेत्र जो वे पाकिस्तान में चाहते थे और जो माउण्टबेटन की योजना के अनुसार पाकिस्तान को नहीं मिले थे, उन पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया जाए। मुस्लिम लीग चाहती थी कि पूर्वी पंजाब भी पाकिस्तान में जाए। माउण्टबेटन योजना के अनुसार पूर्वी पंजाब भारत को मिलने वाला था। अतः पूर्वी पंजाब के उन क्षेत्रों में जहाँ मुसलमानों की जनसंख्या पर्याप्त थी, उन्होंने बलवे कराने आरम्भ कर दिए। दिल्ली के विषय में हम ऊपर प्रमाण दे चुके हैं। गुड़गांवा जिला में मेव जाति के मुसलमान एक भारी संख्या में बसे हुए थे। सन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

1947 के आरम्भ से जुलाई 1947 तक जिला गुड़गांवा के गाँव-गाँव में बलवे हुए। वहाँ के गुजर और जाटों ने मुसलमानों का विरोध किया। इस पर भी सैकड़ों गाँव जला डाले गए और वहाँ के गूजर, अहीर और जाट दिल्ली और गुड़गांवा में आश्रय पाने के लिए एकत्रित होने लगे।

योजना कुछ ऐसी थी कि दिल्ली और गुड़गांवा हिन्दुओं से खाली करा दिए जाएँ और यहाँ पर मुस्लिम लीग का अधिकार जमा लिया जाए। इसके लिए शस्त्रास्त्र भी 'स्मगल' करके लाए गए थे। मुस्लिम लीग की यह योजना कुछ तो दिल्ली के हिन्दू युवकों ने विफल कर दी और कुछ अलवर राज्य, जो जिला गुड़गांवा के किनारे पर था, ने चलने नहीं दी। अलवर में एक जाट राजा राज्य करता था। उसने अपना मुख्य मन्त्री एक हिन्दू सभा का नेता बना रखा था और इस राज्य के प्रयत्न से वहाँ के मेव अपनी योजना में सफल नहीं हो सके।

वैसे तो पूर्ण हिन्दुस्तान में खुलकर गृह-युद्ध की योजना बनाई गई थी। इसमें भारतीय सेना के अंग्रेज़ अफसर सहयोग दे रहे थे। इसके विषय में महात्मा गांधी का जीवन चरित्र लिखने वाले श्री प्यारेलाल इस प्रकार लिखते हैं—

Fresh evidence of wide ramifications of the intrigues of the Muslim League and its supporters all over the country kept pouring in. Some Commandos, who had been working behind the Japanese lines in Burma under Brigadiear Wyngate, were found engaged in disruptive activity. How they infiltrated into India was a mystery. Brisk, illegal traffic in arms was going on not without the connivance and sometimes active co-operation of British and Indian military officers. It had grown into an open scandle. Secret dumps of illegal arms including, in one instance, over a thousand Sten guns, were discovered at Nagpur, Jubbulpore, Kanpur and several other places. Later, the Congress High Command had documentry evidece of the complicity of the Political Department; how in league with certain Princes it was busy hatching a conspiracy to break up India's unity. Among other things, it brought to light a well-laid plan to run in large

मुस्लिम लीग और इसके सहायकों के षड्यन्त्र के सूत्रों का नवीन प्रमाण मिला था। कुछ सैनिक अधिकारी जो युद्धकाल में जापान की सेना के पीछे बर्मा में ब्रिगेडियर विंगेट (wyngate) के अधीन काम कर रहे थे, विध्वंसात्मक कार्यवाही करते पकड़े गए। वह किस प्रकार हिन्दुस्तान में घुस सके, यह एक रहस्यमय बात है। शस्त्रास्त्र के अवैधानिक रूप से हिन्दुस्तान में लाने की कार्यवाही बहुत तेजी से चल रही थी। इसमें हिन्दुस्तानी सेना के अंग्रेज़ अधिकारी सक्रिय योग दे रहे थे। यह एक खुली निन्दनीय बात थी। अवैधानिक शस्त्रास्त्रों के छिपे हुए कोष जिनमें हज़ारों स्टैन गन्स (Sten guns) थीं नागपुर, जबलपुर, कानपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

supplies of arms through some of the States to organise a D-Day all over India.[187]

और कई स्थानों पर पाए गए। कांग्रेस हाई कमाण्ड को इन कोषों के लिखित प्रमाण मिले थे और पता चला था कि ब्रिटिश सरकार का राजनीतिक विभाग (Political Department) भी इस कार्य में सम्मिलित है। यह विभाग कुछ राजा-महाराजाओं से मिलकर एक षड्यन्त्र बना रहा था, जिससे हिन्दुस्तान की एकता भंग हो सके। ऐसे भी प्रमाण मिले, जिससे एक व्यवस्थित योजना का पता चला कि शस्त्रास्त्र देशी रियासतों से हिन्दुस्तान भर में भेजकर एक डी-डे (D-Day) मनाया जा सके।

इसमें सन्देह नहीं कि बहुत-से शस्त्रास्त्र मस्जिदों में भी एकत्रित किए हुए मिले। ये शस्त्र तो निःसन्देह मुस्लिम लीगी राज्य स्थापित करने के लिए थे। हमारा अनुमान है कि जबलपुर, नागपुर इत्यादि नगरों में जो शस्त्रास्त्रों के कोष मिले थे, वे कदाचित् मुस्लिम लीग के विशाल षड्यन्त्र का ही परिणाम था। इन कोषों के निर्माण में राजा-महाराजों का कितना हाथ था, कहना कठिन है। कांग्रेस के उच्च अधिकारियों का, यह स्वभाव रहा है कि वे मुसलमानों को बचाने के लिए निर्दोष हिन्दुओं पर दोषारोपण करते रहे हैं। कुछ भी हो, वास्तविक बात यह है कि अन्तरिम सरकार बनने के उपरान्त पूर्ण हिन्दुस्तान में मुसलमानों का षड्यन्त्र चल पड़ा था जिससे यदि पूर्ण हिन्दुस्तान नहीं तो हिन्दुस्तान के बहुत-से भाग को पाकिस्तान बनाया जा सके।

लॉर्ड माउण्टबेटन की योजना को बदलने के लिए एक और चाल चली गई। सुरहावर्दी जो 16 अगस्त सन् 1946 के 'डायरेक्ट ऐक्शन' का मूल प्रेरक माना जाता है, एक योजना लेकर महात्मा गांधी के पास आया। योजना यह थी कि कांग्रेस मान जाए कि पूर्ण बंगाल को एक स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया जाए। गांधी जी इसके लिए तैयार हो गए। बाबू शरत् चन्द्र बोस और दूसरे बंगाली कांग्रेसी भी इस चाल में फँस गए और स्वतन्त्र बंगाल की योजना बनने लगी। परन्तु डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, जो हिन्दू महासभा के नेता थे, ने इस योजना का रहस्योद्घाटन कर दिया। डा. मुखर्जी का कहना था कि यह स्वतन्त्र बंगाल की योजना पूर्ण बंगाल को पाकिस्तान में सम्मिलित करने का षड्यन्त्र है। उन्होंने बताया है कि पहले बंगाल को एक स्वतन्त्र देश बनाया जाएगा और जब वह स्वतन्त्र देश अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने में असफल होगा तो वहाँ के बहुसंख्यक मुसलमान इसे पूर्ण का पूर्ण पाकिस्तान के हाथ में दे देंगे। बाबू शरत् चन्द्र और उनके बंगाली कांग्रेसी साथी सुरहावर्दी के द्वारा मुस्लिम लीग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कांग्रेस के साथ बातचीत करने लगे। डाक्टर मुखर्जी के महात्मा गांधी को मुसलमानों की पूर्ण योजना बताने का परिणाम यह हुआ कि महात्मा गांधी ने सुरहावर्दी और उसके मुसलमान साथियों के सामने एक शर्त रख दी। वह शर्त यह थी कि बंगाल विधानसभा के हिन्दू सदस्यों की तीन-चौथाई संख्या इस योजना को स्वीकार करे। गांधी जी ने कहा कि तब ही वे इस योजना को आशीर्वाद दे सकते हैं। इसके साथ ही महात्मा जी यह शर्त भी लगाना चाहते थे कि भविष्य में कभी भी कोई भी निश्चय तब तक मान्य नहीं होगा, जब तक स्वतन्त्र बंगाल की विधान सभा के 3/4 हिन्दू सदस्य उस निर्णय के पक्ष में नहीं होंगे।

मुस्लिम लीग यह बात मान गई कि स्वतन्त्र बंगाल की विधान सभा के निर्णय इसके सदस्यों की 3/4 मत से स्वीकार हुआ करेंगे। गांधी जी की माँग और आशय यह नहीं था। इसके साथ यह पता चला कि बंगाल की मुस्लिम लीग सुहरावर्दी की सहायता से बंगाल विधान सभा की अछूत जाति के सदस्यों को मुस्लिम लीग की योजना के पक्ष में करने लगी है। परन्तु मुस्लिम लीग की यह चाल भी असफल हुई।

इन सब में हिन्दुस्तान की अन्तरिम सरकार के कांग्रेसी सदस्य निस्सहाय बालकों की भाँति मुख देख रहे थे। देश में स्थान-स्थान पर बलवे, अग्नि-काण्ड, स्त्रियों का अपहरण और लूट-मार हो रही थी।

जस्टिस खोसला ने अपनी पुस्तक 'स्टर्न रैकनिंग' में पंजाब, पश्चिमोत्तरी सीमा प्रान्त, सिन्ध और बंगाल में हो रहे बलवों इत्यादि का अति स्पष्ट चित्र चित्रित किया है। हम तो एक शब्द में केवल यही कह सकते हैं कि कांग्रेस के नेता जो अन्तरिम सरकार में पहुँचे थे, अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सके। वे इस पदवी के सर्वथा अयोग्य थे।

:: 2 ::

15 अगस्त सन् 1947 को रात के बारह बज कर एक मिनट पर स्वराज्य प्राप्ति का उत्सव मनाया गया। संविधान सभा जो भारत की प्रथम संसद मान ली गई, का अधिवेशन हुआ और ठीक समय पर 'वन्देमातरम्' गीत से भारत में स्वराज्य-युग को आरम्भ किया गया।

जवाहरलाल नेहरू प्रथम प्रधान मन्त्री बने। उन्होंने अपना प्रथम मन्त्रिमण्डल बनाया। इस मन्त्रिमण्डल में प्रमुख सदस्य थे मौलाना आज़ाद, डाक्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेन्द्र प्रसाद, श्री वल्लभभाई पटेल, श्री जगजीवन राम, राजकुमारी अमृतकौर, डा. श्यामाप्रसाद मुखर्जी और एन.बी. गाडगिल।

कांग्रेस के हाथ में हिन्दू-हिन्दुस्तान (भारत) की राज्य सत्ता आने से यह मान लिया गया कि हिन्दुस्तान का स्वराज्य महात्मा गांधी और कांग्रेस की नीति का परिणाम है। सरकार ने इस बात की खूब डुग्गी पीटी और जन-जन के मस्तिष्क में यह बात बैठाने का यत्न किया। यह यत्न अभी तक किया जा रहा है कि यदि गांधी जी अपने अहिंसात्मक आन्दोलन न चलाते और कांग्रेस उन आन्दोलनों में अहिंसा पर कटिबद्ध न रहती तो अंग्रेज़ हिन्दुस्तान से नहीं जाते। ऐसा मानने वाले और कहने वाले भी हैं कि गांधी जी के आन्दोलन का परिणाम ही हुआ है, कि अंग्रेज़ बर्मा, लंका, सिंगापुर, अदन और बहुत-से अफ्रीकी उपनिवेशों को भी छोड़ गए हैं। इस विषय में हम अपनी सम्मति ऊपर दे चुके हैं; परन्तु भारत सरकार और कांग्रेस के इस प्रकार के प्रचार का परिणाम, स्वराज्य सरकार की पिछले बीस वर्ष की नीति पर बहुत गम्भीर हुआ है।

जवाहरलाल नेहरू गांधी जी की समाधि पर चर्खा चलाते हुए और मुख से अहिंसा-अहिंसा की कूक लगाते हुए भारत सरकार को समाजवादी सरकार बनाने का यत्न करते रहे हैं। अपनी प्रत्येक दुर्बलता को छिपाने के लिए वह गांधी जी के अहिंसावाद को आगे कर लेते थे और देश की आर्थिक दुर्व्यवस्था में अपनी सब मूर्खताओं को छिपाने के लिए समाजवाद का नाम ले लेते थे। वास्तव में न तो वह गांधीवादी थे और न ही समाजवादी। एक शासक के नाते शासन का कार्य अहिंसा से नहीं चल सकता। पकड़-धकड़ लाठी-चार्ज और गोली-काण्ड अपने विरोधी पक्ष वालों पर वे निरन्तर चलाते रहे। केवल मात्र सेना कम करने, पाकिस्तान से युद्ध न करने अथवा किसी विदेशी सबल सरकार से सैनिक समझौता न करने में गांधी जी की अहिंसा की माला जपते रहते थे। जब भी किसी प्रबल शक्ति का विरोध वे नहीं कर सकते थे, वे गांधी जी की अहिंसा की आड़ लेकर बदनामी से बच जाते थे।

आज जब हम यह पुस्तक लिख रहे हैं, स्वराज्य मिले बीस वर्ष से ऊपर हो चुके हैं। इन बीस वर्षों में देश ने बहुत यात्रा तय कर ली है। इस कारण सन् 1947 के देश से 1968 का देश बहुत अंशों में भिन्न हो चुका है।

इस भिन्नता को प्रकट करने के लिए यदि हम दिल्ली का उदाहरण लें तो बात स्पष्ट हो जाएगी। सन् 1937 में दिल्ली की जनसंख्या ढाई लाख थी। दिल्ली में सरकारी नौकरों की संख्या दस-बारह हज़ार से कम थी। दिल्ली, पूर्वी उत्तर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदेश, दक्षिण पश्चिमी पंजाब और पूर्वी राजस्थान व्यापार का केन्द्र था। सरकारी नौकरों और व्यापारियों के अतिरिक्त एक भारी संख्या में दस्तकार यहाँ रहते थे। ये लोग हाथी दांत का काम, कपड़ों पर कशीदा करने का काम और इसी प्रकार के छोटे-मोटे हाथ से करने के काम करते थे। सन् 1938-39 में केन्द्रीय सरकार के कार्यालय बारहों महीने के लिए दिल्ली में रखने का निर्णय हो गया। इससे जनसंख्या में कुछ वृद्धि हुई। पहले केन्द्रीय सरकार के सचिवालय का एक भाग स्थायी रूप में शिमला में रहता था। वह दिल्ली में आ गया। दिल्ली एक जिला था। शहर के अतिरिक्त कई सौ गाँव इसमें थे, उन गाँवों में रहने वाले खेती-बाड़ी का काम करते थे। शहर के लिए दूध, साग-भाजी पैदा करते थे और दिल्ली में खाने-पीने की वस्तुएँ बहुत सस्ती थीं। घी चौदह आने सेर था। गेहूँ रुपये का बारह सेर था। चावल एक रुपये के सात-आठ सेर मिलते थे। दूध रुपये का दस सेर था।

सन् 1939 में यूरोप में जर्मनी से युद्ध प्रारम्भ हुआ। हिन्दुस्तान सरकार ने युद्ध में अंग्रेज़ों का पक्ष लेना स्वीकार किया। इस अर्थ युद्ध कार्य के लिए सचिवालय के कई विभाग बढ़ाने पड़े। कई विभाग नए खोले गए। कुछ नई दस्तकारियाँ भी चालू हो गईं। परिणाम यह हुआ कि राजधानी दिल्ली का विस्तार होने लगा। युद्ध के अन्त तक, अभिप्राय यह कि सन् 1945 तक दिल्ली की जनसंख्या इसके आस-पास के सब गाँवों को मिलाकर चार-पाँच लाख के भीतर हो गई। इस समय वे सब नए दफ्तर जो युद्ध के लिए खोले गए थे, बन्द किए जाने लगे। कुछ दस्तकारियाँ भी, जो केवल-मात्र युद्ध के लिए चालू की गई थीं, बन्द होने लगीं। यदि यह प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से चलती तो एक-दो वर्ष में दिल्ली की जनसंख्या पुनः वही हो जाती जो सन् 1937 में थी। परन्तु इसमें प्रथम बाधा यह हुई कि लोग बेकारी के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे। यह बात स्वीकार कर ली गई कि बेकारी का मसला सुलझाना केवल मात्र सरकार का कार्य है। अतः जनता में असन्तोष बढ़ने से रोकने के लिए सरकार ने दफ्तरों का तोड़ना रोक दिया और जहाँ तक सम्भव हुआ, सचिवालय इत्यादि को उसी स्तर पर चलने दिया, जिस स्तर पर यह युद्ध काल में चल रहा था।

सरकार की स्थिति डांवांडोल थी। विश्व में ऐसी परिस्थितियाँ बन रही थीं जिससे अंग्रेज़ हिन्दुस्तान छोड़ने पर विवश हो रहा था। इस कारण सरकार ने सचिवालय के उन विभागों को भंग करने का विचार छोड़ दिया, जिनको सामान्य परिस्थिति में भंग करना चाहिए था। युद्ध के उपरान्त सामान्य स्थिति आने में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलम्ब होने लगा। इस समय पाकिस्तान बनने की माँग प्रबल हो गई और इस माँग को सरकार और देश पर थोपने के लिए पाकिस्तान के पक्षपातियों ने बलवे आरम्भ कर दिए। ये बलवे छुट-पुट सन् 1940 से आरम्भ हो गए थे। अंग्रेज़ी सरकार उन दिनों हिन्दू मुसलमान बलवे पसन्द नहीं करती थी। वह युद्ध-कार्य में किसी प्रकार के विघ्न को सहन नहीं कर सकती थी। अत: युद्ध की स्थिति में मुस्लिम लीगियों ने बलवों को उग्र नहीं होने दिया। वे अंग्रेज़ी सरकार को युद्ध-काल में कष्ट देना नहीं चाहते थे। युद्ध समाप्त होते ही जहाँ कांग्रेस और देश ने स्वराज्य प्राप्ति के लिए आग्रह करना आरम्भ किया और विश्व की परिस्थितियों के कारण अंग्रेज़ को अपना साम्राज्य समेटना पड़ा, वहाँ पाकिस्तान के पक्षपातियों को अपने मन की बात करने के लिए बलवे करने का अवसर मिल गया। अंग्रेज़ भारत छोड़ने का विचार कर रहे थे। वे यहाँ से जाने के पूर्व देश को अधिक से अधिक दुर्बल करके जाना चाहते थे। इस उद्देश्य से पाकिस्तान बनाने के लिए किए जाने वाले बलवे अंग्रेज़ों को योजना में सहायक प्रतीत हुए।

इन बलवों के कारण लाखों की संख्या में हिन्दू पश्चिमी पंजाब, पश्चिमोत्तरी सीमा प्रान्त, सिन्ध और पूर्वी बंगाल से भाग-भाग कर हिन्दुस्तान में आने लगे। इन क्षेत्रों में मुस्लिम लीगी, बलवे कर हिन्दुओं को वहाँ से भगा देने का यत्न कर रहे थे। जो हिन्दू भागने से आना-कानी करते थे, उनको लूट लिया जाता था। उनके मकान को आग लगा दी जाती थी। उनके स्त्री वर्ग का अपहरण कर लिया जाता था और फिर उनको मार डाला जाता था।

परिणामस्वरूप भारत के समस्त नगरों का विस्तार हुआ। दिल्ली का भी विस्तार हुआ। पाकिस्तान से हिन्दुओं का आना सन् 1948 के मध्य तक जारी रहा और दिल्ली की जनसंख्या दस लाख से ऊपर हो गई। इसके उपरान्त जवाहरलाल नेहरू की समाजवादी नीति का विस्तार होने लगा। समाजवादी नीति का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सरकार प्रजा के काम-धन्धे की उत्तरदायी है। एक तो पाकिस्तान से निकले हुए हिन्दू शरणार्थी सरकार का आश्रय चाहते थे, सरकार कांग्रेस के हाथ में थी और कांग्रेस में नेता इतने दूरदर्शी नहीं थे कि वे जून सन् 1947 में जब पाकिस्तान का बनना स्वीकार किया था, इसके स्वाभाविक परिणामों का अनुमान लगा सकते। मुसलमानों के पाकिस्तान बनाने के व्यवहार से ही यह बात स्पष्ट थी कि पाकिस्तान में हिन्दू नहीं रहने दिए जाएँगे। बुद्धिमान नेताओं को इस बात का ज्ञान होना चाहिए था कि पश्चिमी पाकिस्तान में हिन्दुओं की संख्या कितनी है और उनके हिन्दुस्तान में चले आने पर किस प्रकार उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहन-सहन का प्रबन्ध किया जाएगा ? यह बात मिस्टर जिन्ना ने कही थी कि पाकिस्तान के हिन्दू हिन्दुस्तान में आ जाएँ और हिन्दुस्तान के मुसलमान पाकिस्तान में चले जाएँ। दूसरे शब्दों में हिन्दू मुसलमानों का भारत और पाकिस्तान में विनिमय कर दिया जाए। यह बात क्यों नहीं मानी गई ? इसमें तीन कारण हैं। एक तो कांग्रेस और गांधी जी हिन्दू और मुसलमान को एक ही जाति का अंग समझते रहे। उनके विचार में जो भी हिन्दुस्तान में पैदा हो गया अथवा किसी प्रकार भी हिन्दुस्तान में रहने लगा, वह हिन्दुस्तान का नागरिक माना जाना चाहिए और उसकी देश-भक्ति (Loyalty) असंदिग्ध है। साथ ही यह माना गया कि वह देश में अन्य रहने वालों के साथ सहिष्णुता और सद्व्यवहार रखने के लिए तत्पर होगा। यह धारणा मिथ्या थी। 1947 से पहले मुसलमान नेताओं ने अपने व्यवहार से वह सिद्ध कर दिया था कि वे न तो हिन्दुस्तानी हैं और न ही उनकी सहानुभूति हिन्दुस्तान की भलाई के साथ है।

गांधी जी और कांग्रेस की इस धारणा के कारण यह समझा गया कि पाकिस्तान में हिन्दू रह सकेंगे और हिन्दुस्तान में मुसलमान। इन बुद्धिमान नेताओं को यह समझ नहीं आया कि यदि ऐसी भावना का एक अंश मात्र भी मुस्लिम लीग के नेताओं के मन में होता तो वे पाकिस्तान की माँग ही न करते। पाकिस्तान की माँग का स्पष्ट प्रयोजन यह था कि वे एक ऐसा देश चाहते हैं जिसमें लोगों का आचार-विचार, रहन-सहन और उनकी नीति इस्लाम के अनुकूल हो और इनमें मीन-मेख निकालने वाला कोई न हो। यदि पाकिस्तान के इस मूल को समझ लिया जाता तो कांग्रेसी नेताओं के मन में यह बात आ जाती कि हिन्दू-मुसलमानों का विनिमय आवश्यक है।

पाकिस्तान और भारत में हिन्दू-मुसलमानों के विनिमय पर इसलिए भी विचार नहीं किया गया कि विनिमय होने वाले हिन्दू-मुसलमानों की संख्या इतनी अधिक थी कि कांग्रेस नेताओं के बौने मस्तिष्क इसको सम्भव नहीं मानते थे। उन्होंने इस बात को अव्यावहारिक मान छोड़ दिया। यह बात भी हिन्दुओं को पाकिस्तान से निकालने में बाधक सिद्ध हुई, परन्तु समय पाकर यह सम्पन्न हुई। सन् 1948 के मध्य तक दो करोड़ के लगभग हिन्दू पंजाब, पश्चिमोत्तरी सीमा प्रदेश और सिंध से धक्के दे-देकर निकाले गए। पंजाब से भंगियों और धोबियों को नहीं निकाला गया और कालान्तर में वे सब लोग मुसलमान हो गए। इस समय पश्चिमी पाकिस्तान में हिन्दू नहीं हैं। पूर्वी पाकिस्तान में देश-विभाजन से पहले दो करोड़ के लगभग हिन्दू थे। अब उनकी संख्या तीस-चालीस लाख रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई है। शेष सब या तो धकेल-धकेलकर पाकिस्तान से बाहर निकाल दिए गए हैं अथवा मार डाले गए हैं और एक बड़ी संख्या में मुसलमान बना दिए गए हैं। जिस बात को कांग्रेस के नेता असम्भव मानते थे, वह कुछ ही वर्ष में सम्भव कर दी गई। यदि इसी प्रकार दस-पन्द्रह वर्ष तक और चलता रहा तो पूर्वी पाकिस्तान भी हिन्दुओं से खाली हो जाएगा।

तीसरी बात, जिसने जनसंख्या में विनिमय नहीं होने दिया वह थी पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं के मन की यह धारणा कि उनको पाकिस्तान में रहने और निर्वाह करने की स्वीकृति मिल जाएगी। यह भी एक मिथ्या धारणा थी।

पाकिस्तान से हिन्दू आए और वे देशभर के समस्त नगरों को विस्तार देने में सहायक हुए। दिल्ली की जनसंख्या पन्द्रह लाख से ऊपर हो गई। अब श्री नेहरू सरकार की समाजवादी नीति चलने लगी। समाजवाद का यह उप-सिद्धान्त है कि बड़े-बड़े नगर हों, बड़े-बड़े कारखाने हों, बड़ी-बड़ी इमारतें हों, बड़े-बड़े व्यापार संस्थान हों और ये सब-के-सब सरकार के चलाने पर अथवा सरकार के नियन्त्रण के अन्तर्गत चलें। स्वाभाविक रूप में नगरों की जनसंख्या में वृद्धि होने लगी और दिल्ली की जनसंख्या बढ़ते-बढ़ते चालीस लाख से ऊपर हो गई। यह जनसंख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है।

नगरों में जनसंख्या वृद्धि का परिणाम यह हुआ है कि गेहूँ एक रुपये सेर, चावल दो रुपये सेर, घी तेरह रुपये सेर, रहने के एक कमरे का किराया डेढ़ सौ रुपये महीना हो गया है और नगर के एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में घण्टों ही व्यय होते हैं। इन सब परिवर्तनों से सुख और दुःख की मात्रा का अनुमान लगाना सुगम नहीं। केवल एक बात से स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाएगा कि दिल्ली की चालीस-पचास लाख की जनता में से लगभग सात लाख आदमी काम-काज के लिए निरन्तर चलते-फिरते रहते हैं और फासलों के बढ़ जाने से तथा सवारी के सुचारु प्रबन्ध न होने से इन चलने-फिरने वाले लोगों के लगभग पन्द्रह लाख घण्टे नित्य प्रति व्यर्थ जाते हैं। दिल्ली के नागरिक यह समय निर्माणात्मक कार्य में व्यय नहीं कर सकते। यदि प्रत्येक व्यक्ति के एक घण्टे का सामान्य (Average) मूल्य दो रुपये प्रति घण्टा माना जाए तो दिल्ली के रहने वाले लोगों को लगभग तीस लाख रुपये नित्य की हानि हो रही है। एक वर्ष में यह हानि कितनी हो जाएगी, इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

दिल्ली के इस उदाहरण से सब विस्तार पाने वाले नगरों में व्यर्थ जाने वाले समय का अनुमान लगाया जाए तो पूर्ण जाति की हानि का कुछ चित्र बन सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इस हानि में दो महान् कारण बने हैं। एक, पाकिस्तान से करोड़ों की संख्या में हिन्दुओं का निकाल दिया जाना और उनके लिए भारत सरकार का उचित प्रबन्ध न कर सकना। इसमें दूसरा कारण है, सरकार की समाजवादी नीति जिसमें बड़े-बड़े नगर बनने अनिवार्य हैं। देश में प्रायः सब नगर बड़े और बड़े होते जाते हैं और गाँव उजड़ते जाते हैं। जनता नगरों में एकत्रित हो नैतिक पतन की ओर भागी चली जा रही है और ग्रामों में खेती-बाड़ी मशीनों द्वारा करने का प्रबन्ध किया जा रहा है।

यह है चित्र देश का, जिसके बनाने में गांधी जी और जवाहरलाल जी नेहरू बहुत बड़ी सीमा तक उत्तरदायी हैं। गांधी जी इस प्रकार की समाज का निर्माण नहीं चाहते थे। वे बड़े-बड़े कारखाने लगाने के विरुद्ध थे। वे हाथ से परिश्रम कर जीविकोपार्जन के पक्ष में थे और बड़ी-बड़ी मशीनें लगाकर बहुत-से लोगों के एक स्थान पर एकत्रित हो जाने के अवगुणों को जानते थे।

एक बार गांधी जी और एक अमरीकन संवाददाता लुईस फिशर (Louis Fischer) में समाजवाद पर अति रुचिकर बातचीत हुई थी। इस वार्तालाप का विवरण गांधी जी का जीवन-चरित्र लिखने वाले श्री प्यारेलाल इस प्रकार करते हैं।

लुईस फिशर ने गांधी जी को कहा था, "परन्तु आप भी तो उन जैसे ही समाजवादी हैं।"

गांधी जी का उत्तर था, "मैं तो हूँ, परन्तु वे नहीं हैं....मेरा दावा कि मैं समाजवादी हूँ, और तब भी बना रहूँगा जब उनका समाजवाद मर चुका होगा।"

"आपका अपने समाजवाद से क्या अर्थ है?"

"मैं अन्धों, बहरों और गूँगों की भस्म पर उन्नति करना नहीं चाहता। उनके समाजवाद में ये लोग कोई स्थान नहीं रखते....मैं अपने व्यक्तित्व को प्रकट करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता हूँ। दूसरों के स्वतन्त्र समाजवाद में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं है। तुम्हारा शरीर भी अपना नहीं है। न ही तुम्हारी इच्छा अपनी है।"

इस पर लुईस फिशर ने कहा, "हाँ; परन्तु समाजवाद और समाजवाद में भेद है। मेरे संशोधित समाजवाद के अर्थ यह हैं कि राज्य का प्रत्येक वस्तु पर अधिकार न हो।"

गांधी जी का प्रश्न था, "तो तुम्हारे समाजवाद में क्या राज्य तुम्हारे बच्चों का स्वामी नहीं है और क्या वह उनको जैसी चाहे शिक्षा नहीं दे सकता?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सब राज्य ऐसा ही करते हैं।"

"तब तुम्हारा समाजवाद उनसे भिन्न नहीं है।"

इस पर फिशर ने पूछ लिया, 'तो आप वास्तव में तानाशाही पर आपत्ति करते हैं?"

गांधी जी का उत्तर था "परन्तु समाजवाद तो तानाशाही ही है। अन्यथा यह कुर्सी पर बैठकर एक दार्शनिक चर्चा रह जाएगी।"

इस पर फिशर साहब कहने लगे, "समाजवादी भी तो यही चाहते हैं जो आप चाहते हैं। वे स्वतन्त्र सरकार की इच्छा करते हैं। केवल कम्युनिस्ट ऐसा नहीं चाहते।"

इस पर गांधी जी ने फिर कहा, "कम्युनिज्म, जैसा मैं इसे समझता हूँ, समाजवाद का एक स्वाभाविक परिणाम है।"

अन्त में लुईस फिशर को मानना पड़ा, "आप ठीक कहते हैं। ऐसा समय था जब दोनों में भेदभाव नहीं किया जा सकता था। परन्तु आज के समाजवादी कम्युनिस्टों से सर्वथा भिन्न हैं।"

इस पर गांधी जी ने पुनः पूछा, "तो आप स्टालिन के ढंग का समाजवाद नहीं चाहते?"

लुईस फिशर ने माना, "परन्तु हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट हिन्दुस्तान में स्टालिन के ढंग का कम्युनिज़्म लाना चाहते हैं और वे ऐसा करने में आपका नाम प्रयोग कर रहे हैं।'

गांधी जी का उत्तर था, "वे इसमें सफल नहीं होंगे।"[188]

महात्मा जी के कथन से यह बात स्पष्ट होती है कि हिन्दुस्तान के कम्युनिस्ट महात्मा जी का नाम लेकर अपनी विचारधारा का प्रचार कर रहे हैं। यह वार्तालाप सन् 1945-46 का है और उस समय जवाहरलाल जिन्होंने रूस की क्रांति, स्टालिन के राज्य, रूस की राज्य-व्यवस्था और कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी, वे ही गांधी जी का नाम लेकर अपनी बातों का प्रचार कर रहे थे और गांधी जी जवाहरलाल जी को प्रधान मन्त्री बनाने के लिए कांग्रेस का प्रधान बनाने का प्रस्ताव रख रहे थे। यह ठीक है कि गांधी जी स्वयं कम्युनिस्ट नहीं थे। वे सोशलिस्ट भी नहीं थे, परन्तु वे, उस समय भारत के समाजवादियों और कम्युनिस्टों के नेता जवाहरलाल जी को अपने कंधों पर उठाए हुए जन-जन की दृष्टि में ला रहे थे।

स्वराज्यकाल की यह सबसे प्रथम और महान् भूल थी जो गांधी जी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जवाहरलाल जी ने की। उसका परिणाम वर्तमान भारत है।

इस समय देश पर लगभग पचपन अरब रुपये का ऋण है। इसका वार्षिक ब्याज तीन अरब रुपया बनता है। इस ऋण से जो दस्तकारियाँ चलाई गई हैं, उनकी आय कुछ करोड़ रुपया वार्षिक मात्र है। शेष ब्याज देने का और ऋण उतारने का दायित्व भारत की जनता पर है जो वर्तमान स्थिति में जनता कभी उतार सकती ही नहीं और कहीं स्थिति अनुकूल बन गई तो ऋण के भुगतान करने में दो शताब्दियाँ लग जानी सहज हैं।

कुछ लोग हैं जो यह कहते फिरते हैं कि ऋण लौटाने के लिए नहीं लिये जाते। ये लोग भारतीय विचारधारा से असुर मात्र माने जाएँगे।

:: 3 ::

हमने इसके पूर्व की कण्डिका में बताया है कि महात्मा गांधी समाजवादी नहीं थे। वे मानते थे कि समाजवाद कम्युनिज़्म का प्रारूप है। उनकी अर्थ-नीति देहातों में छोटी-छोटी दस्तकारियाँ चलाने की थी। वे मानते थे कि एक किसान अपनी खेती-बाड़ी के काम से अवकाश पा कुछ न कुछ ऐसा निर्माण कार्य करे जो उसकी आर्थिक स्थिति को सुधार सके। वे समझते थे कि किसान की निर्धनता इस कारण है कि उसके पास अवकाश तो बहुत है, परन्तु उस अवकाश में उपजाऊ कार्य करना न तो वह जानता है और न ही उसके पास करने को कार्य है। वे देहातों में किसानों को ऐसा काम दिलवाने की योजना चाहते थे, जिससे उनको अपनी खेती-बाड़ी की आय के साथ-साथ दूसरी आय हो सके।

समाजवाद यह चाहता है कि खेती-बाड़ी मशीनों से हो और किसान का समय और भी बचे जिससे एक बहुत बड़ी संख्या में किसान खेती-बाड़ी का काम छोड़ नगरों में चले आएँ और वहाँ बड़े-बड़े कारखानों में काम कर रुपयों के रूप में अपनी आय बढ़ा सकें। दोनों प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में भारी अन्तर है। पहली अर्थव्यवस्था से बहुसंख्यक किसानों के पास अधिक धन आने की सम्भावना थी। यह धन वे अपने परिश्रम से उत्पन्न करने वाले थे। दूसरी अर्थव्यवस्था से यह हुआ कि किसानों की आय बढ़ी और इस आय-वृद्धि में दो कारण हो गए। एक, देहातों के लोग नगरों में आकर कारखानों में काम करने लगे और देहातों की अपेक्षा अधिक धन उपार्जन करने लगे, परन्तु उनके नगरों में आ जाने से नगरों का जीवन महँगा हो गया और उनकी आय वृद्धि उनके सुख का कारण नहीं हो सकी। देहातों की आय वृद्धि का दूसरा कारण अन्न और भूमि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपज के मूल्यों में वृद्धि है। इस वृद्धि में पाकिस्तान से दो करोड़ के लगभग हिन्दुओं का भारत में आ जाना एक कारण हुआ। पाकिस्तान से आने वाले हिन्दू प्रायः नगरों के रहने वाले थे। बहुत कम देहातों में रहने वाले और खेती-बाड़ी करने वाले थे। ये हिन्दू भारत के नगरों में बस गए और छोटा-मोटा व्यापार कर जीविकोपार्जन करने लगे। ये किसी प्रकार का उपजाऊ काम नहीं कर सकते थे। परिणामस्वरूप अन्न की माँग बढ़ गई। उपज नहीं बढ़ी और महँगाई हो गई। मूल्यों में वृद्धि के कारण धन देहातों की ओर खिंचने लगा और नगरों में धन का अभाव दिखाई देने लगा। इस अभाव को दूर करने के लिए समाजवादी योजना के अन्तर्गत देश के उद्योग-धन्धों में वृद्धि की गई। परिणामस्वरूप उद्योग-धन्धों से बनी वस्तुएँ तो सस्ती होने लगीं और अन्न तथा भूमि की उपज महँगी होने लगीं। इस पर कारखानों में काम करने वाले कर्मचारी और कार्यालयों में काम करने वाले क्लर्क वेतन में वृद्धि माँगने लगे।

देहातों में से बहुत-से लोगों के नगरों में चले आने के कारण भूमि की उपज कम हो गई। इसके लिए ट्रैक्टर और दूसरी मशीनें चलाने की योजना बन गई। इससे अन्न की उपज में व्यय अधिक करना आवश्यक हो गया। परिणामस्वरूप अन्न और भी अधिक महँगा हो गया। अब दो योजनाएँ सरकार चला रही है। एक ओर अन्न की महँगाई कम करने के लिए खाने वाले मुखों में कमी करने का यत्न होने लगा है। अर्थात् एक विशाल स्तर पर सन्तान सीमित करने का यत्न हो रहा है। दूसरी ओर खेतों में कृत्रिम खाद दे-देकर उपज बढ़ाने का प्रयत्न होने लगा है, दोनों ढंग ऐसे हैं जिनका देश की जनता पर विशेष प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। सन्तान सीमित करने के कृत्रिम उपाय जनता की मानसिक अवस्था पर बुरा प्रभाव उत्पन्न करने वाले हैं। खेतों में नकली खाद से अधिक उपज करने का परिणाम अनाज की पौष्टिक शक्ति को कम करने वाला होगा। दोनों बातों से, देश की जनता का, शारीरिक एवं मानसिक ह्रास होगा।

अतः देश की वर्तमान खाद्य स्थिति स्वराज्य सरकार की अशुद्ध नीति के कारण है। इसमें भी बहुत बड़ा हाथ जवाहरलाल नेहरू की नीतियों का है। वे अन्धा-धुन्ध नए-नए वैज्ञानिक परीक्षण करने के इच्छुक थे। उनके मस्तिष्क में प्राचीन व्यवस्था निकृष्ट प्रतीत होती थी।

हम समझते हैं कि भारतवर्ष में सदियों से परीक्षा किए हुए खेती-बाड़ी के ढंग अधिक उपयुक्त हैं। उनसे अधिक लोग, बिना विशेष पूँजी लगाए जीविकोपार्जन कर सकते हैं और देशभर के खाने के लिए पैदा कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाद में सुधार की आवश्यकता है। बीजों में भी सुधार आवश्यक है, परन्तु काम करने का ढंग, कम से कम मशीनों का प्रयोग करते हुए होना चाहिए। अब स्थिति यह है कि देश में गाय और बैलों की संख्या बहुत कम हो गई है, और दिन-प्रतिदिन इनकी संख्या कम करने की योजना चलाई जा रही है। भारत सरकार गाय-बैलों को बूचड़खाने में भेजने पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए तैयार नहीं। धर्म और भावनाओं का विचार छोड़कर भी देखा जाए तो यह कार्य देहाती अर्थ-व्यवस्था (Rural Economy) को सर्वथा अस्त-व्यस्त कर रहा है। इसमें जवाहरलाल नेहरू जी का आधुनिक विज्ञान से प्रेम ही उत्तरदायी है। विज्ञान के वास्तविक तत्व को वे जानते नहीं थे। केवल इसकी बाहरी रूप-रेखा से प्रेम ही इस दुर्नीति में कारण बन गया है।

:: 4 ::

स्वराज्य सरकार बनने पर सबसे पहली समस्या पाकिस्तान से आए शरणार्थियों की थी। इन शरणार्थियों की समस्या में कांग्रेस और स्वराज सरकार की दुर्नीति ही बड़ा भारी कारण था। देश-विभाजन का युक्तियुक्त परिणाम था हिन्दू मुसलमानों की अदला-बदली। इस नीति की माँग मिस्टर जिन्ना आरम्भ से कर रहे थे, परन्तु गांधी और कांग्रेस इसे मान नहीं रही थी। इसका परिणाम स्वराज्य प्राप्ति के उपरान्त हुआ।

पाकिस्तान की नीति तो स्पष्ट थी। वे पाकिस्तान को हिन्दुओं से खाली कराना चाहते थे। श्री एन.वी. गाडगिल लिखते हैं—

West Pakistan had been emptied of Hindus and Sikhs. Of the six million non-Muslims of that area the Pakistanis prevented the sweepers and other Harijans from coming over. The reason for this was obvious. The weak kneed policy of the Indian Government indirectly sanctioned their slavery in Pakistan.[189]

पश्चिमी पाकिस्तान हिन्दुओं और सिखों से खाली कर दिया गया था। साठ लाख गैर मुसलमानों में से केवल भंगी और अन्य हरिजन वहाँ रोक लिये गए और सब निकाल दिए गए। इनको रोकने का कारण स्पष्ट था। भारत सरकार की दुर्बल नीति ने इन लोगों को पाकिस्तान द्वारा गुलाम बनाने में सहायता की है।

एक अन्य स्थान पर श्री गाडगिल लिखते हैं—

...Pakistani policy was crystal clear. They wanted to drive out the Hindus of Sind also and grab their

पाकिस्तान की नीति सर्वथा स्पष्ट थी। वे सिंध में से भी हिन्दुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

vast wealth. The success of this policy in Punjab had encouraged the Sind Muslims.

The Hindus of Sind were middle class men or merchants. They were unaccustomed to work with their hands. They sacrificed their immovable property and came over to India between September 1947 and January 1948 bringing with them whatever they could carry in cash and jewellery.[190]

को निकाल देना चाहते थे और उनकी सब धन-दौलत लूट लेना चाहते थे। पंजाब में इस नीति की सफलता ने सिन्ध के मुसलमानों को वैसा ही करने को उत्साहित किया।

सिन्ध के हिन्दू प्रायः मध्यम श्रेणी के लोग थे। ये व्यापारी थे और हाथों से काम करना नहीं जानते थे। उन्होंने अपनी सब अचल सम्पत्ति छोड़ी और जो कुछ भी वे उठा सके, लेकर भारत में चले आए। सिन्ध से हिन्दुओं का आना सितम्बर 1947 से आरम्भ होकर जनवरी सन् 1948 तक चलता रहा।

एक अन्य स्थान पर यही लेखक लिखता है—

Perhaps the events which happened in both the halves of the Punjab cancel each other. But the happenings in the East were unique and unparalleled. And the sorry tale is not finished yet. After partition, a few Bihari Muslims migrated to East Bengal, and hardly ten per cent of West Bengal Muslims migrated to East Pakistan. On the other hand, of nearly eighteen million Hindus in, East Pakistan, about eight millions have taken refuge in India during the last fifteen years.[191]

पूर्वी पंजाब में से प्रायः गैर मुसलमान निकाल दिए गए थे और यह कहा जा सकता है कि पूर्वी और पश्चिमी पंजाब की घटनाओं ने एक दूसरे के प्रभाव को विलीन कर दिया। परन्तु पूर्वी पाकिस्तान में स्थिति विलक्षण और अनहोनी थी। वहाँ की शोचनीय कहानी अभी समाप्त नहीं हुई। पूर्वी पाकिस्तान में कुछ थोड़े-से बिहारी मुसलमान गए हैं। पश्चिमी बंगाल से जाने वाले मुसलमानों की संख्या दस प्रतिशत सें अधिक नहीं। इसके विपरीत वहाँ एक करोड़ अस्सी लाख हिन्दू थे। पिछले पन्द्रह वर्षों में वहाँ से अस्सी लाख से ऊपर आ चुके हैं।

इस बलपूर्वक जनता को एक ओर से दूसरी ओर भगाने में जो अत्याचार और अनाचार हुआ है, वह अवर्णनीय है। इसको श्री गाडगिल इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

...Almost all Punjabi Muslims from the Indian part of the province went over to the Pakistani part and every Sikh and Hindu from Pakistani Punjab crossed over to the Indian Punjab. In all this tremendous

पूर्वी पंजाब से प्रायः सब मुसलमान पाकिस्तान की ओर निकाल दिए गए हैं और पाकिस्तान का एक-एक सिख और हिन्दू भारत की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

migration of the whole population both ways, countless women were abducted and raped and countless persons massacred. According to Justice Khosla, the Hindus and Muslims killed during this short period would come to a million souls.[192]

आ गया है। इस स्थानान्तरण में अगणित स्त्रियों का अपहरण हुआ, उनसे बलात्कार हुआ और अगणित आदमी (स्त्री, पुरुष, बच्चे) मार डाले गए। श्री जस्टिस खोसला (लेखक Stern Reckoning) के कथनानुसार हिन्दू और मुसलमान जो इस थोड़े-से काल में मारे गए उनकी संख्या दस लाख से कम नहीं।

कांग्रेस के बौने मस्तिष्क वाले नेता यह समझते थे कि इतनी बड़ी संख्या में जनसंख्या की अदला-बदली नहीं हो सकेगी। इस कारण नहीं होनी चाहिए। वे इस बात की कल्पना ही नहीं कर सके थे कि मुसलमान पाकिस्तान में हिन्दुओं का रहना पसन्द नहीं करते और जनसंख्या की अदला-बदली होगी। यह हुई, परन्तु बिना किसी प्रबन्ध के, बिना किसी राज्य की सहायता के। यों तो यह कहा जाता है कि पाकिस्तान में हिन्दुओं की सम्पत्ति लूटने तथा उनकी स्त्रियों पर अत्याचार करने में सरकारी अधिकारियों ने भी भाग लिया। इस पर भी यह कहना कठिन है कि पाकिस्तान सरकार इस कृत्य में सक्रिय सहयोग दे रही थी। बहुत कुछ मुसलमानों ने निजी रूप में ही किया और क्योंकि कांग्रेस ने इस विषय पर अभी विचार ही नहीं किया था, अत: जो कुछ भी हुआ, बिना नियन्त्रण के हुआ और परिणाम अति भयंकर हुए।

हिन्दुओं ने भारत में जो कुछ किया वह बदले की भावना से किया। बदला लेने वाले प्राय: पाकिस्तान से आए हुए हिन्दू शरणार्थी थे। ये भारत में आए और जब इनको रहने को स्थान नहीं मिला तो इन्होंने भारत में स्थित मुसलमानों को मार मार कर निकालना आरम्भ कर दिया। इसमें भी बहुत कुछ अनियमित और अत्याचारपूर्ण हुआ, परन्तु यह प्रतिक्रिया थी। भारत सरकार इनके आने में और आकर बसने में कोई योजना नहीं रखती थी और कोई प्रबन्ध नहीं कर सकी।

हाँ, एक बात जवाहरलाल जी करते रहे। वह यह कि वे उन हिन्दुओं को कोसते रहे जो 'येन-केन-प्रकारेण' मुसलमानों को निकालकर स्वयं बसने में लगे हुए थे। श्री गाडगिल अपनी पुस्तक में इस विषय पर लिखते हैं—

...Nehru was the severest critic of the Hindus and constantly accused the Hindu Mahasabha and the R.S.S. of having the designs to turn India into a Hindu theocracy. Since 15th August, I had followed the practice of

नेहरू जी हिन्दुओं के अति कठोर आलोचक थे। हिन्दू महासभा और आर.एस.एस. (राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ) को निरन्तर कोसते रहते थे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

sending him a weekly report on the situation in the country. There were quite a few matters which could not be mentioned in the Cabinet meetings as they were likely to lead to the accusation that I was encouraging communal bitterness. These weekly reports were more frank and plain. In one of these notes I had suggested that his charges against the Hindus were not correct. The Hindus were a majority community in India and a democratic election would give them automatic power. There was no need for them to agitate for it. On the other hand, his speeches were creating unnecessary bitterness amongst the Hindus. The reply was that the Cabinet worked on the principle of joint responsibility and what he was saying was the correct assessment of the situation. I took the hint and said that his attitude would lead to disaster and if he desired it, I was ready to resign...

...Unlike many of us, Nehru did not use the words which would soothe and soften the agonised hearts of the people who had passed through indescribable calamities. Thus the background for January disaster was being prepared.[193]

और कहते थे कि ये लोग भारत को हिन्दू राज्य बनाना चाहते हैं। 15 अगस्त से मैंने यह अपना स्वभाव बना लिया था कि देश की स्थिति पर साप्ताहिक रिपोर्ट नेहरू के पास भेजा करूँ। कुछ बातें ऐसी होती थीं, जिनका वर्णन मन्त्रिमण्डल की बैठक में करना उचित नहीं समझता था। उनसे परस्पर लांछन लगने और साम्प्रदायिक कटुता उत्पन्न होने की सम्भावना थी। यह साप्ताहिक रिपोर्ट स्पष्ट शब्दों में और दिल खोलकर लिखी जाती थी। एक रिपोर्ट में मैंने सुझाव दिया कि उनका हिन्दुओं पर लांछन लगाना उचित नहीं है। हिन्दू भारत में बहुत संख्या में हैं और प्रजातन्त्रात्मक निर्वाचन उनको स्वयमेव शक्तिसम्पन्न कर देगा। उनके लिए किसी प्रकार के आन्दोलन की आवश्यकता नहीं। इसके विपरीत नेहरू के व्याख्यान हिन्दुओं में अनावश्यक कटुता उत्पन्न कर रहे हैं। इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि मन्त्रिमण्डल का अपने कार्यों के लिए सांझा उत्तरदायित्व है। जो कुछ वे (श्री नेहरू) कह रहे हैं, वह देश की स्थिति का ठीक अनुमान है। मैंने इसका अर्थ यह समझा और कह दिया कि आपके व्यवहार से भयंकर परिणाम निकलेंगे और यदि वे चाहते हैं तो मैं मन्त्रिमण्डल से त्याग-पत्र देने को तैयार हूँ।

हम में से बहुतों के विपरीत, नेहरू जी ऐसे शब्द प्रयोग नहीं करते थे जो उन दुःखी हृदयों को शान्ति देते जो अवर्णनीय मुसीबतों में से होते हुए आए हैं। इस प्रकार जनवरी की दुर्घटना (महात्मा गांधी की हत्या) का वातावरण बन रहा था।

श्री नेहरू अपने जीवन में हिन्दुओं के साथ कभी भी न्याय नहीं कर सके। उनका अन्यायपूर्ण अर्थात् पक्षपातपूर्ण व्यवहार का एक उदाहरण सोमनाथ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दिर के नव-निर्माण के समय समक्ष आ गया। जब जूनागढ़ रियासत भारत में सम्मिलित हो गई तो श्रीयुत पटेल उसके निरीक्षण के लिए वहाँ गए। श्री गाडगिल उनके साथ थे। मन्दिर के स्थान पर खड़े हुए उनके मन में विचार आया कि इस मन्दिर का उद्धार करना चाहिए। उसी सायंकाल श्री वल्लभभाई पटेल ने एक सभा में यह घोषणा कर दी कि इस मन्दिर को भारत सरकार बनवाएगी।

इस विषय पर मन्त्रिमण्डल में बातचीत हुई, परन्तु कार्य आरम्भ हुआ तो मौलाना आज़ाद ने विरोध किया। मन्त्रिमण्डल में तो बात का निर्णय हो गया, परन्तु जब बात गांधी जी के कानों में पहुँची तो उन्होंने सरदार को कह दिया कि इसके लिए सरकार धन व्यय न करे। एक पब्लिक ट्रस्ट बना लिया जाए। उसके लिए लोगों से रुपया एकत्रित किया जाए।

ऐसा प्रतीत होता है कि या तो मौलाना आज़ाद ने अथवा श्री नेहरू ने कहकर गांधी जी से यह बात कहलवाई। गांधी जी के कथनानुसार कार्य किया गया और देखते ही देखते पचास लाख रुपया एकत्र हो गया। यह बात हिन्दुओं की भावना का प्रतीक थी।

मन्दिर बन गया और इसका उद्घाटन होने लगा तो मन्दिर के ट्रस्ट ने राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद को इस मन्दिर का उद्घाटन करने के लिए कहा। राष्ट्रपति मान गए, परन्तु नेहरू जी ने आपत्ति की। मामला पुनः मन्त्रिमण्डल में उपस्थित हुआ।

इस समय तक सरदार पटेल का देहान्त हो चुका था और नेहरू जी ने यह आपत्ति की कि इस मन्दिर के बनवाने की बात मन्त्रिमण्डल में उपस्थित नहीं की गई। भारत सरकार की ओर से इसके बनवाने में सहयोग दिया गया था और एक लाख रुपये के लगभग सरकार का व्यय भी हो चुका था। नेहरू जी की आपत्ति का उत्तर श्री गाडगिल ने दिया। वे उस समय मन्त्रिमण्डल के सदस्य थे। श्री गाडगिल अपनी पुस्तक में इस घटना का उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

...I quoted from the Cabinet reports to prove that Nehru's charge that the thing was done without informing the Cabinet was not correct. The Maulana and Jagjivan Ram said that the matter was discussed. Government of India had spent about hundred thousand rupees on the work. I pointed out that the Government gave subsidies and grants to thousands of mosques and tombs

मैंने मन्त्रिमण्डल की रिपोर्टों में से पढ़कर सुनाया। इसका उद्देश्य यह था कि नेहरू का यह लांछन कि यह विषय (सोमनाथ मन्दिर का) मन्त्रिमण्डल में उपस्थित नहीं किया गया, ठीक नहीं है। मौलाना आज़ाद और जगजीवनराम ने कहा कि हाँ, इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

and there could be nothing objectionable if it spent a little money in restoring a Hindu temple.[194]

विषय पर बातचीत हुई थी। भारत सरकार इस काम पर एक लाख रुपये के लगभग व्यय कर चुकी थी। मैंने बताया कि भारत सरकार हज़ारों रुपयों की सहायता मस्जिदों और मकबरों के लिए दे रही है। इसलिए एक हिन्दू मन्दिर के बनवाने में यह थोड़ी-सी सहायता आपत्तिजनक नहीं हो सकती।

परन्तु नेहरू जी की आपत्ति तो राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद से मन्दिर के उद्घाटन के विषय में थी। इस आपत्ति का उत्तर डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने दिया। उन्होंने कहा कि वे उद्घाटन के लिए जा रहे हैं। वे इसके लिए अपने उच्च पद से, आवश्यकता हुई तो त्याग-पत्र दे देंगे। राष्ट्रपति मन्दिर के उद्घाटन के लिए गए और वे राष्ट्रपति बने रहे। उनका विचार था कि सैकुलेरिज़्म का यह अर्थ नहीं है कि अपने विश्वास के अनुसार कार्य ही न किया जाए।

यही जवाहरलाल नेहरू मस्जिदों और मकबरों पर रुपया व्यय करने में कभी आपत्ति नहीं करते थे। इन्हीं के काल में करोड़ों रुपये बौद्ध मन्दिरों और बौद्ध संस्थानों पर भी सरकार की ओर से व्यय किए गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ परिच्छेद

अनधिकार चेष्टा

:: 1 ::

जवाहरलाल जी ने सत्रह वर्ष तक भारतवर्ष पर निष्कंटक राज किया। इसमें सबसे बड़ा कारण गांधी जी का अपने जीवन-काल में नेहरू जी की पीठ ठोंकना था। गांधी जी स्वराज्य मिलने के उपरान्त लगभग छ: महीने तक जीवित रहे और इस अल्प-काल में भी, कई ऐसे अवसर आए जब नेहरू जी हिन्दू भावनाओं और देश के प्रति न्याय का हनन करते रहे। उनमें गांधी जी को जवाहरलाल जी का पक्ष ठीक प्रतीत हुआ। एक ऐसी घटना का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। कश्मीर पर पाकिस्तान की सहायता से कबायलियों का आक्रमण हो चुका था। उस आक्रमण से मिस्टर जिन्ना यह आशा लगा बैठे थे कि वे ईद की नमाज़ श्रीनगर में जाकर पढ़ेंगे। वह आशा उनकी पूरी होती दिखाई नहीं दी। इस पर उन्होंने बातचीत द्वारा श्रीनगर पर अधिकार करने की योजना बना ली। उन्होंने इसके लिए भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड माउण्टबेटन और श्री नेहरू को लाहौर में आकर कश्मीर के विषय में बातचीत करने का निमन्त्रण दे दिया। माउण्टबेटन तो पहले ही इस पक्ष में थे कि कश्मीर पाकिस्तान में जाना चाहिए। नेहरू जी यह समझते थे कि कश्मीर एक स्वतन्त्र देश बनना चाहिए। इसी इच्छा के अनुरूप उन्होंने कश्मीर का भारत के साथ विलय इस शर्त पर स्वीकार किया था कि आक्रमण के निस्तेज कर देने पर, कश्मीर की जनता की राय ली जाएगी कि वह किसके साथ मिलना चाहती है ?

मिस्टर जिन्ना लॉर्ड माउण्टबेटन और श्री नेहरू की इन भावनाओं को जानता था। इसी कारण वह इन दोनों से बातचीत कर अपना उद्देश्य पूरा करना चाहता था। जब निमन्त्रण दिल्ली पहुँचा तो लॉर्ड माउण्टबेटन जाने को तैयार हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए। नेहरू जी भी जाकर बातचीत करने के लिए उत्सुक प्रतीत हुए, परन्तु सरदार पटेल और मन्त्रिमण्डल के बहुसंख्यक सदस्य इस बात से सहमत नहीं हो सके।

इस पर जवाहरलाल जी गांधी जी के पास गए और वहाँ क्या हुआ यह हम पीछे लिख आए हैं, यह एक ऐसी घटना थी कि जिसमें हानि और लाभ, दोनों की सम्भावना थी। मन्त्रिमण्डल के सदस्य नेहरू जी पर विश्वास नहीं करते थे। उनको सन्देह था कि नेहरू जी मिस्टर जिन्ना के साथ वार्त्तालाप में भारत का किसी प्रकार से अहित कर आएँगे। गांधी जी इसमें सहायक हो रहे थे।

ऐसी ही एक और बात पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपया देने के समय हुई। मन्त्रिमण्डल ने नेहरू और मौलाना आज़ाद की इच्छा के विपरीत यह निश्चय किया कि जब तक पाकिस्तानी सेना और कबायली कश्मीर खाली नहीं कर देते, तब तक यह रुपया न दिया जाए। शिकायत गांधी जी तक पहुँची कि मन्त्रिमण्डल ने नेहरू जी की इच्छा का विरोध किया है। गांधी जी भूख हड़ताल कर बैठे। ऐसा कहा जाता है कि वल्लभभाई पटेल मन्त्रिमण्डल के मन की बात बताने के लिए गांधी जी के पास गए और गांधी जी ने उनको वह डाँट-फटकार सुनाई कि वे रो पड़े।

गांधी जी ने भूख-हड़ताल तब तक नहीं तोड़ी, जब तक पचपन करोड़ रुपया पाकिस्तान को दे नहीं दिया गया। इस रुपया देने के पक्ष में नेहरू जी, मौलाना आज़ाद और लॉर्ड माउण्टबेटन थे। उस समय भी भारत ने तीन सौ करोड़ रुपया पाकिस्तान से लेना भी था। वह रुपया आज तक पाकिस्तान ने नहीं दिया।

कश्मीर की समस्या नेहरू जी के पक्षपात का एक और उदाहरण है। इसमें भी गांधी जी उनके सहायक हो गए।

कश्मीर के राजा हरिसिंह ने जब कश्मीर को भारत में मिला लेने की प्रार्थना की तो नेहरू जी ने यहाँ यह शर्त लगाई कि कश्मीर रियासत के विलय का विषय वहाँ की जनता की सम्मति से तय किया जाएगा, वहाँ एक शर्त यह भी रखी कि शेख अब्दुला कश्मीर के राज्य-कार्य में सहयोग देगा। उस समय कश्मीर के प्रधान मन्त्री श्री मेहरचन्द महाजन थे। जिस समय नेहरू जी ने शेख अब्दुल्ला को वहाँ का राज्य-कार्य देखने के लिए नियुक्त करने की माँग की तो महाजन जी ने पूछा कि क्या मुझे वहाँ से चले आने का हुक्म है ?

ऐसा श्री नेहरू कह नहीं सके। कारण यह है कि श्री मेहरचन्द महाजन की नियुक्ति महाराजा हरिसिंह ने की थी। नेहरू जी उस नियुक्ति को रद्द नहीं कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकते थे। इस कारण उन्होंने कह दिया आप भी रहेंगे और शेख साहब भी रहेंगे। दोनों मिल-जुल कर काम करो।

यद्यपि यह प्रबन्ध उचित नहीं था। इस पर भी उस भीड़ के समय महाराजा हरिसिंह ने इस अव्यावहारिक बात को मान लिया। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह था कि कश्मीर में दो प्रधान मन्त्री होंगे। श्री मेहरचन्द महाजन अपनी पुस्तक 'Looking Back' में लिखते हैं कि वे इस प्रबन्ध को उचित नहीं समझते थे। अतः उन्होंने कश्मीर के महाराज से छुट्टी माँग ली, परन्तु महाराज हरिसिंह ने महाजन साहब की मिन्नत-खुशामद कर उनको रहने के लिए राजी कर लिया।

महाजन साहब लिखते हैं—

...This arrangement however did not work, Sheikh Abdullah came after a few days. I suggested to him draw up a document suggesting how in his opinion administration was to be carried on. He said he would act as advised by Sir Gopalaswami Aiyangar who, though now a member of the Indian Cabinet had served for several years as the Prime Minister of Kashmir earlier. I requested him to get an elucidation from Panditji of the condition, "Sheikh Abdullah should be taken in the administration along with the Prime Minister". We both accordingly proceeded to New Delhi. A conference was held at the residence of Pandit Nehru in which Sardar Patel and Mr. V. P. Menon joined. Sheikh Abdullah demanded that he should be appointed, "Prime Minister of Jammu and Kashmir" and I should become a glorified dummy as a "Dewan" with no powers. After a three hour discussion it was decided that Sheikh should be designated as the "Head of the Emergency Administration and I should carry on as Prime Minister.[195]

यह प्रबन्ध काम नहीं कर सका। शेख अब्दुल्ला कुछ दिन के उपरान्त (श्रीनगर से जम्मू) आया। मैंने उसको सुझाव दिया कि वह एक प्रपत्र तैयार करे, जिसमें बताए कि राज्य का शासन कैसे चलाया जाए? उसने कहा कि मैं सर गोपालास्वामी अयंगर की सम्मति से काम करूँगा। वे इस समय भारतीय मन्त्रिमण्डल में सदस्य थे, परन्तु कई वर्ष पहले कश्मीर के प्रधान मन्त्री के पद पर रहे चुके थे। मैंने उससे निवेदन किया कि पण्डित जी (श्री नेहरू) ने यह शर्त लगाई थी कि शेख अब्दुल्ला रियासत के प्रधान मन्त्री के साथ शासन में लिया जाए। अब वह पण्डित जी से इस शर्त का अभिप्राय पूछ ले। जब कुछ निश्चय नहीं हुआ तो हम दोनों नई दिल्ली पहुँचे। पण्डित नेहरू के मकान पर एक कॉन्फ्रेन्स हुई जिसमें सरदार पटेल, मिस्टर वी.पी. मैनन भी सम्मिलित थे। शेख अब्दुल्ला ने यह माँग की कि उसको जम्मू और कश्मीर का प्रधान मन्त्री बनाया जाय और मैं एक सम्मानित खिलौना (दीवान) बिना किसी अधिकार के रहने दिया जाऊँ। कॉन्फ्रेन्स ने तीन घंटे के वाद-विवाद के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चात् यह निश्चय किया कि शेख अब्दुल्ला आपात्कालीन प्रशासन का अधिकारी मान लिया जाए और मैं प्रधान मन्त्री बना रहूँ।

महाजन साहब लिखते हैं कि इस समय उन्होंने पुनः महाराज को कहा कि उन्हें छुट्टी दे दी जाए। वे अपनी नियुक्ति की शर्तों के अनुसार किसी प्रकार का प्रतिकार नहीं मानेंगे, परन्तु महाराजा भयभीत थे और उन्होंने महाजन साहब को छुट्टी नहीं दी।

इस पर शेख अब्दुल्ला ने महाजन की नेहरू के पास शिकायतें करनी आरम्भ कर दीं। एक गम्भीर शिकायत की जाँच के लिए नेहरू जी ने महाराजा को लिखा। महाराजा ने वह पत्र महाजन जी को दिखा दिया और उसकी सफाई नेहरू जी के समक्ष देने को कहा।

शेख अब्दुल्ला ने एक कश्मीर वालंटियर कॉर्प्स संगठित की थी और उसके लिए 303 बोर की रायफल माँगी। माँग भारतीय सेना के पास भेज दी गईं। महाजन जी को पता चला तो उन्होंने सेवा के कमाण्डर को सचेत कर दिया कि बिना इस बात की परीक्षा किए कि शेख साहब के वालंटियर इन बन्दूकों का प्रयोग करना भी जानते हैं अथवा नहीं, यह बन्दूकें न दी जाएँ।

शेख अब्दुल्ला ने पण्डित नेहरू के सामने यह शिकायत की कि नेशनल कॉन्फ्रेन्स के वालंटियरों के लिए भेजी गई बन्दूकें उनके विरोधी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को दे दी गई हैं। शेख साहब ने यह भी लिखा कि वे लोग इन बन्दूकों द्वारा जम्मू के मुसलमानों की हत्याएँ कर रहे हैं।

महाजन साहब इस विषय में लिखते हैं—

The Sheikh took this opportunity to complain to Pandit Nehru and told him that the arms that had been sent for the use of the National Conference volunteers had been given by me to its rivals, the Rashtriya Swayamsevak Sangh. He further added that they were using these arms for killing Muslims in Jammu. The complaint was not only false but malicious. Without any enquiry Pandit Nehru took the words of Sheikh Abdullah as gospel truth and wrote a very nasty letter to the Maharaja against me.

His Highness gave the letter to me for reply. I wrote to Pandit Nehru that I had not received a single rifle from him, the rifles sent were in the

यह शिकायत न केवल झूठी थी, वरंच शरारत से भरी हुई थी। बिना जाँच किए पण्डित नेहरू ने शेख अब्दुल्ला के कथन को धर्म-ग्रन्थ के वाक्य की भाँति सत्य मान लिया और बहुत भद्दी भाषा में एक पत्र मेरे विरुद्ध महाराजा को लिख दिया।

महाराजा साहब ने उत्तर देने के लिए वह पत्र मुझे दे दिया। मैंने पण्डित नेहरू को लिखा कि मुझे उन्होंने कोई बन्दूकें नहीं भेजीं। जो बन्दूकें उन्होंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

possession of the Officer Commanding the Indian Forces in the State who had not given a single rifle to the R.S.S. I challenged the Sheikh to prove his allegations. Pandit Nehru promptly withdrew the allegations. He expressed regret and said he was sorry to learn that he had been misinformed.[196]

भेजी थीं वह भारतीय सेना के कमाण्डर के पास भेजी थीं। उसने आर.एस.एस को एक भी बन्दूक नहीं दी। मैंने शेख अब्दुल्ला को चुनौती दी कि वह अपने आरोप को सिद्ध करे। पण्डित नेहरू ने तुरन्त अपना आरोप वापस ले लिया और खेद प्रकट किया कि उनको गलत सूचना दी गई है।

इस चुनौती के उपरान्त भी शेख अब्दुल्ला महाजन साहब को वहाँ से निकाल देने का षड्यन्त्र करते रहे। वे नेहरू और महात्मा गांधी को झूठी खबरें भेजते रहे। श्री महाजन इस विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

The Sheikh also made an attempt to poison the mind of Mahatma Gandhi against me. He wrote to the Mahatama that Muslims were being killed in Jammu at the instigation of His Highness and myself. Mahatamaji, without even asking me charged us with these killings, in one of his post-prayer speeches. I wrote to him a very strong letter protesting against such a charge and asked him to disclose the source of his information. Mahatamaji in a brief reply wrote to me that he never meant to charge me and His Highness personally of the happenings in Jammu and all that he meant was that constitutionally we were responsible for these happenings.[197]

शेख ने महात्मा गांधी के मन में भी मेरे विरुद्ध विष भरने का यत्न किया। उसने महात्मा जी को लिखा कि मेरे और महाराजा के भड़काने पर जम्मू के मुसलमान मारे जा रहे हैं। महात्मा जी ने बिना किसी प्रकार की जाँच-पड़ताल किए प्रार्थना के उपरान्त के अपने एक भाषण में इन हत्याओं का मुझ पर आरोप लगा दिया। मैंने उनको एक बड़ा कठोर पत्र लिखा जिसमें मैंने पूछा कि यह बताएँ कि यह सूचना उनको कहाँ से मिली है? महात्मा जी ने बहुत ही संक्षेप में उत्तर दिया कि उनका आशय मेरे और 'हिज हाईनेस' के विरुद्ध आरोप लगाने का नहीं है। 'हिज हाईनेस' जो कुछ जम्मू में हो रहा है उसके लिए वैधानिक रूप से उत्तरदायी हैं।

इस पर महाजन जी ने महात्मा जी को एक और पत्र लिखा। उस पत्र में उन्होंने लिखा—

"I have read the report of the post-prayer speech delivered by you and printed in the 'Hindustan Times' 27th December, 1947, which contents a passage to the following effect :

आपने प्रार्थना के उपरान्त भाषण में जो कहा था, वह 27 दिसम्बर सन् 1947 के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में इस प्रकार प्रकाशित हुआ है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"He (Mahatmaji), had heard of murders of numberless Muslims and abduction of Muslim girls in Jammu. The Maharaja must hold the responsibility for this. The Dogra state forces were under his direct control. He had not yet become the mere constitutional head and, therefore, he must be held responsible for all the acts, good or bad, of people under his rule. Sheikh Abdullah had been to Jammu and had tried to allay passions........ Gandhiji would advise the Maharaja to step aside along with his Minister in view of what had taken place in Jammu and give the fullest opportunity to Sheikh Abdullah and the people of Kashmir to deal with the situation."[198]

"उन्होंने (महात्मा जी) सुना है कि जम्मू में एक बहुत बड़ी संख्या में मुसलमान मारे गए हैं और मुसलमान लड़कियों का अपहरण हुआ है। महाराज को इसका उत्तरदायित्व मानना होगा। रियासत की डोगरा सेना उनके अधीन है और वे अभी तक पूर्ण सत्ताधारी अधिकारी हैं। इसलिए उसको उन समस्त कार्यों का (अच्छे अथवा बुरे) जो वहाँ के लोग करते हैं, उत्तरदायी मानना पड़ेगा। शेख अब्दुल्ला जम्मू गया था और उसने लोगों को शान्ति रखने की सम्मति दी है.... गांधी जी महाराजा को यह सम्मति देते हैं कि उसे देखते हुए वे और उनके प्रधान मन्त्री एक ओर हट जाएँ। जो कुछ जम्मू में हुआ है, उनके विचार से वह शेख अब्दुल्ला और कश्मीर के लोगों को पूरा अवसर दें कि वे स्थिति पर काबू पा सकें।"

महात्मा जी का महाजन जी को पहले पत्र में यह कहना कि उन्होंने उन पर किसी प्रकार का आरोप नहीं लगाया, एक मिथ्या भाषण है। उन्होंने, जैसाकि समाचार-पत्र में छपे से विदित होता है, महाराजा और महाराजा के प्रधान मन्त्री को जम्मू में घटित न हुई घटनाओं का भी उत्तरदायी माना था।

इन उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि महात्मा जी और श्री नेहरू जी कान के कितने कच्चे थे! विशेष रूप में मुसलमानों के लिए उनके दिल में कितना दर्द था! इन लोगों ने हिन्दुओं के लिए क्या कुछ किया अथवा कहा, विचारणीय है। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय मुसलमानों द्वारा अनेक स्थानों पर हिन्दुओं के कत्लेआम के समाचारों से हिन्दू भड़के हुए थे और उन्होंने कई स्थानों पर हत्याएँ और लूटमार कीं, परन्तु उनके लिए काश्मीर के राजा और प्रधान मन्त्री को हटा देने की सम्मति देनी, एक शुद्ध पक्षपातपूर्ण बात थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि शेख अब्दुल्ला नेहरू जी के गहरे मित्र थे और नेहरू जी शेख अब्दुल्ला के पक्ष में महात्मा जी के कान भरते रहते थे। महात्मा जी बिना किसी बात की जाँच-पड़ताल किए ग्रामोफोन रिकार्ड की तरह अपनी प्रार्थनाओं में कहते रहते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री मेहरचन्द महाजन को विवश किया गया कि वे कश्मीर छोड़कर पुन: भारत में आकर न्यायाधीश का काम करें। इससे शेख अब्दुल्ला को कश्मीर में सब प्रकार की खराबियाँ करने की छूट मिल गई।

लेफ्टिनैन्ट जनरल बी.एम. कौल ने अपने बहुत-से अनुभव जो उसे शेख अब्दुल्ला के विषय में हुए, अपनी पुस्तक 'अनकही कहानी' में वर्णन किए हैं उनमें से एक-दो हम यहाँ लिख रहे हैं। लेफ्टिनैन्ट जनरल अपनी पुस्तक के पृष्ठ 113 (अंग्रेज़ी) में लिखते हैं—

''दो डोगरा नवयुवतियाँ सीता और सुखनू सम्बल गाँव से अपहरण की गईं। यह गाँव राम वन के समीप है और लड़कियों के अपहरण करने वाले बकरवाल थे। जब लड़कियों के पिता ने लेफ्टिनैन्ट कर्नल रणवीर सिंह से सहायता के लिए प्रार्थना की तो उसने कुछ सिपाहियों को लड़कियों को वापस लाने के लिए भेज दिया। लेफ्टिनैन्ट कर्नल रणवीर सिंह राजपूत बटालियन का कमांडिंग अफसर था और यह बटालियन बनिहाल के पास स्थित थी। जब सिपाही लड़कियों को ढूँढ़ने निकले तो सशस्त्र बकरवालों से मुठभेड़ हो गई। लड़कियाँ तो मिली नहीं, परन्तु उन सिपाहियों पर जाँच आरम्भ हो गई। उस जाँच करने वाली कमेटी का मैं प्रधान बनाया गया। कमेटी को कश्मीर शासन की सहायता की आवश्यकता पड़ी और शेख अब्दुल्ला ने इन्कार कर दिया। बहुत कठिनाई से कुछ साक्षी मिले। अब्दुल्ला ने इसको राजनीतिक प्रश्न बना दिया। अब्दुल्ला ने श्री नेहरू को धमकी दी कि यदि इन सैनिकों को दण्ड न दिया गया तो इसकी प्रतिक्रिया कश्मीर की जनता पर भयानक होगी। नेहरू साहब ने सेना के अधिकारियों को लिखा परन्तु जाँच जारी रही।

यह आरोप लगाया गया था कि लड़कियों का उनके गाँव से अपहरण किया गया है और उनको स्थान-स्थान पर पैदल ले जाया गया और उनका एक के बाद दूसरे और फिर कई बकरवालों ने बारी-बारी से विवाह किया गया। वे कई महीने तक लापता रहीं। मुझे यह भी पता चला था कि एक शम्भुनाथ झूठा आरोप लगाकर अब्दुल्ला की आज्ञा से पकड़ लिया गया था। वह श्रीनगर में कैद था। उस पर कोई मुकद्दमा नहीं चलाया गया और आर.एस.एम. का आदमी बताकर उसे रोक रखा गया। इस शम्भुनाथ की लड़कियों के मामले में साक्षी के रूप में आवश्यकता थी। उसको बाहर लाने में बड़ी कठिनाई हुई। अन्त में वह आया और उसने उक्त भयानक कहानी सुनाई।

शम्भुनाथ स्वयं आर.एस.एस. का आदमी नहीं था। इसके विपरीत वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैरीनाग नेशनल कॉन्फ्रेन्स का प्रेज़िडेण्ट था। उसने उन हिन्दुस्तानी सिपाहियों का लड़कियों को छुड़ाने में पथ-प्रदर्शन किया था यह बात अब्दुल्ला को पसन्द नहीं थी और इसको आर.एस.एस का स्वयंसेवक कहकर पकड़ लिया गया।''[199]

एक और घटना का उल्लेख लेफ्टिनैन्ट जनरल कौल अपनी पुस्तक के पृष्ठ 116 (अंग्रेज़ी) पर करते हैं—

''ग्रीष्म ऋतु का मध्य था। शेख अब्दुल्ला ने मुझे बुलाया और कहा कि किश्तवार में साम्प्रदायिक तनाव बढ़ गया है। इसलिए मैं तुरन्त जम्मू और कश्मीर मलीशिया के आदमी लेकर वहाँ चला जाऊँ और वहाँ शान्ति स्थापित करूँ। मुझे कहा गया कि मैं मुसलमान सैनिकों को ही ले जाऊँ।

यह हमारे (सैनिक) व्यवहार के विपरीत था। मैंने शेख अब्दुल्ला को कह दिया कि हम किसी काम पर सैनिकों की नियुक्ति साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं करते। जो उपलब्ध होंगे, मैं उनको ले जाऊँगा। मेरी इस बात की शेख अब्दुल्ला ने मेरे अफसरों के पास रिपोर्ट कर दी। परन्तु जब इनको पूर्ण घटना का पता चला तो वे चुप कर रहे। मैं लगभग एक सौ आदमी पंजाब पैराट्रूपर्स के, बटोत से लेकर किश्तवार में ढाई दिन की यात्रा के उपरान्त जा पहुँचा। वहाँ लेफ्टिनैन्ट कर्नल किम यादव नियुक्त था। वह किसी काल में लॉर्ड माउण्टबेटन का ए.डी.सी. रहा था और एक विख्यात सैनिक था। जब मैं किश्तवार पहुँचा तो जो कहानी मैंने वहाँ सुनी, वह उसके सर्वथा विपरीत थी जो शेख अब्दुल्ला ने सुनाई थी। एक अदालत खां जो जम्मू-कश्मीर सेना का लेफ्टिनैन्ट कर्नल था, पाकिस्तान बनते ही पाकिस्तान चला गया था। शेख अब्दुल्ला ने उसे वापस बुलाकर किश्तवार में शासक नियुक्त कर दिया था। सब शरारत अदालत खां ने की थी। मैंने जाँच की और तीन-चार दिन में सब प्रबन्ध कर वापस लौट आया। आते हुए मैं लम्बे रास्ते से आया और मुझे श्रीनगर पहुँचने में चार-पाँच दिन लग गए। मेरे पहुँचने से पहले अदालत खां ने मेरी शिकायत शेख अब्दुल्ला से कर रखी थी। शेख अब्दुल्ला ने मुझे वह सब सुनाई और मैंने कह दिया कि यह सब झूठ है। मैंने अपनी बात बताई, परन्तु शेख साहब ने अदालत खां की कहानी को और भी अधिक बढ़ा-चढ़ा कर श्री नेहरू को लिख भेजा। साथ ही धमकी भी दी कि यदि इस प्रकार की बातें रोकी न गईं तो कश्मीर का भारत के साथ रहना कठिन हो जाएगा। शेख साहब ने यह भी लिखा कि कुछ मन्त्री इस मामले में त्याग-पत्र देने की बात कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे दिल्ली बुला लिया गया और यह स्वाभाविक ही था। नेहरू साहब बिना मुझसे अथवा किसी अन्य से पूछताछ किए, मुझको डाँटने लगे। उन्होंने कहा, 'शेख अब्दुल्ला ने किश्तकार की घटना का पूर्ण वृत्तान्त लिखकर भेजा है। मैं समझ नहीं सका कि तुम अपने आपको क्या समझते हो? अगर तुम इसी तरह से काम करते रहे तो हिन्दुस्तान के हाथ से कश्मीर निकल जाएगा।'

मैंने पूछा, 'पर क्या आप घटना के विषय में सत्य बात जानते हैं?'

इस पर नेहरू कहने लगे, 'मेरे लिए इतना जानना पर्याप्त है कि तुम शेख अब्दुल्ला से झगड़ पड़े हो। कुछ भी हो, हम उससे झगड़ा नहीं कर सकते। मैं समझता था कि तुम इस बात को भली-भाँति जानते हो।'

नेहरू क्रोध में ऊँचे-ऊँचे कह रहे थे। मैं चुप था। मैं विचार कर रहा था कि यदि सच्चाई इतनी आवश्यक नहीं है जितनी कि राजनीति, तो फिर मेरे कहने का कुछ भी प्रयोजन नहीं। मैंने सिर नीचा कर कह दिया, ''यदि श्रीमान् सत्य बात जानना नहीं चाहते और मेरे किश्तवार में कार्य के विषय में पहले ही धारणा बना चुके हैं कि मैं गलत हूँ और मुझे अपनी बात कहने के लिए भी अनुमति नहीं तो मैं क्या कहूँ? इतना कह मैं कमरे से बाहर निकल आया।

अगले दिन नेहरू जी ने मुझे फिर बुलाया। इस दिन वह प्रसन्न प्रतीत होते थे। उन्होंने मुझे सारी किश्तवार की कहानी सुनाने के लिए कहा। मैंने यह समझा कि इस बीच में किसी और ने भी उनको कुछ कहा है। मैंने संक्षेप में किश्तवार की बात बता दी। मैंने बताया कि अब्दुल्ला के कहने पर ही मैं वहाँ गया था और वहाँ पर शासन में दुर्व्यवस्था देखी। जनसाधारण में बन्दूकें बाँट दी गई थीं और वे उनके बल पर शरारतें कर रहे थे। बहुत-सी लड़कियों को बलपूर्वक पकड़कर उनका अनिच्छित पुरुषों से विवाह कर दिया गया था। और भी बहुत-से अपराध किए गए थे। मैं ये सब बातें अपनी रिपोर्ट में लिखने वाला था और चाहता था कि अब्दुल्ला की इस प्रकार की बातों को ठीक किया जाए।

मैंने कश्मीर में हो रही अब्दुल्ला की और भी बहुत-सी बातें सुनाईं। नेहरू धैर्य से सुनते रहे। बहुत देर तक चुप रहने के उपरान्त वे बोले,

...He said he was pained to hear what I had to say but, for various practical considerations, there was little he could do in the matter. He then said that the rub of the whole thing was that Abdullah had asked for my removal from Kashmir as he found my presence a hindrance in his

मुझे यह सुनकर बहुत दुःख हुआ है। पर मैं क्या कर सकता हूँ? बहुत-सी राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर मैं इस विषय में कुछ अधिक नहीं कर सकता। वास्तविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

work. Nehru said though he felt that I was not to blame in my specific way, it was difficult for him to ignore the request of Abdullaah, who was, after all, the Prime Minister of Kashmir and with whom I had fallen out. He said it was easier for him to remove an individual like me than to remove Abdullah. Nehru reminded me that if an individual came in conflict with the head of the government, it was the individual who usually went.[200]

बात यह है कि अब्दुल्ला ने तुमको वहाँ से हटा देने के लिए कहा है। तुम्हारा वहाँ रहना उसके काम में बाधा डालता है। यद्यपि मैं अनुभव करता हूँ कि तुम्हारा कुछ विशेष दोष नहीं। इस पर भी उसकी माँग को मैं ठुकरा नहीं सकता। आखिर वह कश्मीर का प्रधान मन्त्री है और उसके साथ तुम्हारा झगड़ा हो गया है। एक व्यक्ति को हटा देना सुगम है, पर अब्दुल्ला को नहीं हटाया जा सकता। यदि एक व्यक्ति का शासन के उच्च अधिकारी से झगड़ा हो जाए तो उस व्यक्ति को ही छोड़ना होगा।

हम समझते हैं कि श्री नेहरू भारत के प्रधान मन्त्री के पद पर होते हुए यह बात नहीं कर सकते थे। यदि कौल साहब का उक्त विवरण सत्य है तो श्री जवाहरलाल नेहरू ने यह कहकर अयोग्यता और बुद्धिहीनता ही प्रकट की है। कश्मीर का प्रधान मन्त्री क्या पाकिस्तान से भी अधिक शक्तिशाली था? पाकिस्तान की सेनाओं को तो भगाया जा रहा था और क्या यह व्यक्ति अत्याचार और अनाचार करता हुआ हटाया नहीं जा सकता था?

एक ऐसा समय आया कि जब शेख अब्दुल्ला को पकड़कर कैद कर लेना पड़ा, परन्तु ऐसा कहा जाता है कि इसमें शेख अब्दुल्ला द्वारा नेहरू जी का अपमान करना कारण था। यदि शेख अब्दुल्ला नेहरू साहब का अपमान न करता रहता तो कदाचित वह कश्मीर को भारत से स्वतन्त्र कर चुका होता अथवा पाकिस्तान के हाथ में बेच चुका होता। जब शेख अब्दुल्ला पकड़ा गया तब न तो आसमान फटा और न ही कश्मीर में भूचाल आया।

:: 2 ::

कश्मीर का मामला नेहरू जी ने अपने ही हाथ में रखा था। हम विषय में नेहरू जी ने किसी दूसरे का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं किया। यों तो भारत सरकार का विदेश विभाग भी नेहरू जी ने अपने हाथ में रखा हुआ था और कश्मीर का जब भारत में समन्वय हो गया तो यह विदेश विभाग का मामला नहीं रहा था। देश कई अन्य रियासतों की भाँति कश्मीर का विषय भी सरदार वल्लभभाई पटेल के पास चला जाना चाहिए था, परन्तु नेहरू जी ने इसे अपने पास रखा। इसमें नेहरू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी की कश्मीर में विशेष रुचि का होना बताया जाता है। यह कहा जाता है कि नेहरू जी के पुरखा कश्मीर निवासी थे। इस कारण नेहरू जी का मोह इस रियासत में बहुत अधिक था।

यह अनुमान ठीक प्रतीत नहीं होता। घटनाएँ इसके विपरीत प्रतीत होती हैं। यदि नेहरू जी का कश्मीर से विशेष मोह होता तो वह इसका विलय भारत में कराने को उत्सुक होते। विलय कराने के विपरीत ही नेहरू जी का व्यवहार रहा है। यदि हम स्वराज्य मिलने से पहले की घटनाओं का संक्षेप में यहाँ उल्लेख कर दें तो हमारी धारणा कि नेहरू साहब का कश्मीर के साथ किसी प्रकार का मोह नहीं था, स्पष्ट हो जाएगी।

(1) सन् 1946 में हिन्दुस्तान में कैबिनेट मिशन आया हुआ था। उस कैबिनेट मिशन की योजना यह थी कि पश्चिमोत्तरी हिन्दुस्तान और पूर्वी हिन्दुस्तान को पृथक्-पृथक् क्षेत्र बना दिए जाए और इनमें मुसलमानों की संख्या अधिक होने से मुसलमानी शासन स्थापित कर जाएँ। मध्य भारत का क्षेत्र हिन्दू क्षेत्र बने। इन तीनों क्षेत्रों में देशी रियासतें सम्मिलित नहीं थीं। उन रियासतों का हिन्दुस्तान पृथक् बनने वाला था। कश्मीर पश्चिमोत्तरी क्षेत्र में स्थित होते हुए भी उससे पृथक् रहने वाला था। इसका अभिप्राय यह होता कि पश्चिमोत्तरी क्षेत्र दुर्बल रहता। इस समय शेख अब्दुल्ला ने वहाँ के राजा के विरुद्ध विद्रोह की ध्वजा फहरा दी। राजा ने शेख अब्दुल्ला को पकड़ लिया। उसे कैद कर दिया और उसके साथियों पर मुकदमे इत्यादि चलाकर विद्रोह दबा दिया। यह बात नेहरू जी को पसन्द नहीं आई। वे कश्मीर को चल पड़े। राजा ने इनका कश्मीर में प्रविष्ट होना रोक दिया। नेहरू जी बलपूर्वक कश्मीर में घुसने लगे तो इनको पकड़ लिया गया।

गांधी जी और मौलाना आज़ाद ने वाइसराय को कहकर इन्हें छुड़ा लिया और वापस बुला लिया।

यदि नेहरू जी के मन की बात हो जाती, अर्थात् राजा भाग जाता अथवा मार डाला जाता और शेख अब्दुल्ला कश्मीर के शासक बन जाते तो निःसन्देह कश्मीर एक रियासत न रहती। वह पश्चिमोत्तरी क्षेत्र के साथ सम्मिलित हो जाती। साथ ही सन् 1947 में देश-विभाजन के समय कश्मीर स्वयमेव पाकिस्तान का अंग बन जाता। इसका अभिप्राय यह है कि यदि नेहरू जी को हम बुद्धिमान और दूरदर्शी मानें तो कहना पड़ेगा कि यह महानुभाव कश्मीर को पाकिस्तान का अंग बनाने के लिए प्रयत्नशील थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(2) 16 अगस्त सन् 1947 से पहले नेहरू जी की ओर से कश्मीर रियासत को भारत के साथ मिलाने का कोई यत्न नहीं किया गया। लॉर्ड माउण्टबेटन चाहते थे कि कश्मीर पाकिस्तान के साथ सम्बद्ध हो जाए। यह बात तत्कालीन कश्मीर के प्रधान मन्त्री रामचन्द्र काक ने महाराजा कश्मीर को बता दी थी। परिणाम यह हुआ कि जब लॉर्ड माउण्टबेटन महाराजा से मिलने कश्मीर गए तो महाराजा ने कश्मीर को किसी के साथ सम्बद्ध करने से इन्कार कर दिया। महात्मा गांधी महाराजा से मिलने गए थे, परन्तु या तो दोनों में इस विषय पर बात हुई ही नहीं और यदि हुई तो उसका कुछ परिणाम नहीं निकला। ऐसा प्रतीत होता है कि महाराजा हरिसिंह नेहरू जी को अपना शत्रु समझते थे और नेहरू जी भारत के सर्वेसर्वा थे। यदि महाराज ऐसा समझते थे तो हमारा विचार है कि इसमें बहुत कुछ सत्यता थी। हमारा विचार इस बात से सिद्ध होता कि कश्मीर में शेख अब्दुल्ला के प्रधान मन्त्री बनते ही महाराजा को रियासत में निकालने का षड्यन्त्र आरम्भ हो गया। तत्कालीन कश्मीर के प्रधान मन्त्री श्री मेहरचन्द महाजन ने यह बात नेहरू जी और गांधी जी को स्पष्ट कर दी थी कि शेख अब्दुल्ला महाराजा की झूठी शिकायतें कर रहा है। इस पर भी गांधी जी और जवाहरलाल जी, दोनों शेख अब्दुल्ला को कश्मीर का प्रधान मन्त्री बनाने पर डटे रहे और ऐसा करने में वे सफल हुए।

(3) जब कश्मीर पर पाकिस्तान की सहायता से कबायलियों ने आक्रमण कर दिया तो महाराजा ने कश्मीर को हिन्दुस्तान के साथ मिलाने की प्रार्थना कर दी। साथ ही यह माँग कर दी कि भारत अपनी सेना भेजकर कश्मीर की रक्षा में सहायता दे। नेहरू जी महाराजा की इस माँग को मानने के लिए तैयार नहीं थे। श्री मेहरचन्द महाजन आए और नेहरू जी से मिले। नेहरू जी कश्मीर में सेना भेजने के लिए आना-कानी करते रहे। इस पर श्री मेहरचन्द महाजन और श्री नेहरू में जो बातचीत हुई, वह महाजन जी ने अपनी पुस्तक 'Looking Back' में इस प्रकार लिखी है—

...I said somewhat emphatically that the town of Srinagar must be saved at any cost from loot and destruction. During the talk, the Prime Minister said that even if the town was taken by the tribesmen, India was strong enough to retake it. Its recapture, however, could not have undone the damage that would have

मैंने अपनी बात पर कुछ बल देकर कहा कि श्रीनगर को किसी भी मूल्य पर बचाना चाहिए। इसमें लूट-मार नहीं होने देनी चाहिए। वार्तालाप में प्रधान मन्त्री ने कहा कि यदि नगर कबायलियों ने ले भी लिया, तब भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

resulted. I, therefore, firmly but respectfully insisted on the acceptance of my request for immediate military aid. The Prime Minister observed that it was not easy on the spur of the moment to send troops as such an operation required considerable preparation and arrangement, and troops could not be moved without due deliberations merely on my demand. I was, however, adamant in my submission; the Prime Minister also was sticking to his own view. As a last resort I said, "Give us the military force we need. Take the accession and give whatever power you desire to the popular party. The Army must fly to save Srinagar this evening or else I will go to Lahore and negotiate terms with Mr. Jinnah."

When I told the Prime Minister of India that had orders to go to Pakistan in case immediate military aid was not given, he naturally became upset and in an angry tone said, "Mahajan, go away." I got up and was about to leave the room when Sardar Patel detained me by saying in my ear, "Of course, Mahajan, you are not going to Pakistan." Just then, a piece of paper was passed over to the Prime Minister. He read it and in a loud voice said, "Sheikh Sahib also says the same thing." It appeared that Sheikh Abdullah had been listening to all this talk while sitting in one of the bedrooms adjoining the drawing room...[201]

भारत की सेना इसको वापस लेने की शक्ति रखती है। परन्तु इस अवस्था में जो हानि इस नगर को कबायलियों से होती वह वापस लिये जाने पर सुधारी न जा सकती। इसलिए मैंने आदरयुक्त शब्दों में यह कहा कि सैनिक सहायता तुरन्त भेजनी चाहिए। प्रधान मन्त्री बोले कि इस प्रकार की मुहिम पर तुरन्त सेना भेजनी सुगम नहीं है। इसके लिए पर्याप्त तैयारी करने की आवश्यकता है। साथ ही केवल आपके कह देने पर सेना नहीं भेजी जा सकती। सैनिक गतिविधि के लिए विचार-विनिमय की आवश्यकता होनी है। मैं अपनी बात पर दृढ़ था और प्रधान मन्त्री अपने विचार पर डटे थे। अन्त में मुझे यह कहना पड़ा, 'हमें सैनिक सहायता जितनी हम चाहते हैं, दीजिए। रियासत का भारत के साथ विलय पत्र ले लीजिए और जनता को जो अधिकार देना चाहें, दे दीजिए, परन्तु सेना तुरन्त हवाई जहाज़ों से आज ही शाम जानी चाहिए, अन्यथा मैं लाहौर जा रहा हूँ और मिस्टर जिन्ना से बातचीत करूँगा।'

जब मैंने यह बात प्रधान मन्त्री से कही कि मुझे महाराजा साहब की आज्ञा है कि यदि आप तुरन्त सैनिक सहायता नहीं देते तो मैं पाकिस्तान जाऊँ। इस पर प्रधान मन्त्री क्रोध में भड़क उठे और बोले, 'महाजन चले जाओ।'

मैं उठ पड़ा और कमरे से बाहर निकलने लगा। सरदार पटेल ने मुझे रोक लिया। उसने मुझे कान में कहा, 'महाजन तुम पाकिस्तान नहीं जा सकते।' ठीक इसी समय एक कागज़ का टुकड़ा प्रधान मन्त्री के पास आया। प्रधान मन्त्री ने उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ा और ऊँची आवाज़ में कहा, 'शेख अब्दुल्ला भी यही चाहता है।' ऐसा प्रतीत होता है शेख अब्दुल्ला साथ के कमरे में बैठा हमारी बातचीत सुन रहा था।

इसके उपरान्त सेना भेजने की स्वीकृति हो गई।

ऊपर लिखी सब बातों से यह स्पष्ट होता है कि नेहरू जी की कश्मीर में किसी प्रकार की रुचि नहीं थी। यदि रुचि थी तो शेख अब्दुल्ला में थी। नेहरू जी को महाजन जी धमकी न देते और शेख अब्दुल्ला उस धमकी में सहायक न हो जाते तो कश्मीर में सेना नहीं भेजी जाती और कश्मीर की पूर्ण घाटी पाकिस्तान के अधिकार में हो जाती। कबायली और पाकिस्तानी सैनिक हवाई अड्डे से कुछ सौ गज़ के अन्तर पर रह गए थे, जब भारतीय सेना पहुँची थी।

श्री गाडगिल लिखते हैं—

In truth, Nehru did not show much enthusiasm for Kashmir's accession at the time. The Maharaja released Sheikh Abdullah and other political prisoners in deference to the wishes of Nehru. Pandit Kak, who was the premier of Kashmir was removed and Mehar Chand Mahajan, who later became a Supreme Court Judge, was appointed in his place. Both the Maharaja's and Mahajan pressed for the acceptance of Kashmir's accession, but Nehru would not move. He knew the mind of Abdullah. In the end Abdullah oppealed to him to accept the Accession.[202]

वास्तव में उस समय कश्मीर के भारत से विलय में नेहरू में कुछ उत्साह नहीं था। महाराजा ने शेख अब्दुल्ला और दूसरे राजनीतिक कैदियों को छोड़ दिया था। यह नेहरू की इच्छा के अनुकूल था। पण्डित काक कश्मीर के प्रधान मन्त्री पद से हटा दिए गए थे और श्री मेहरचन्द्र महाजन नियुक्त हो चुके थे। महाजन जी बाद में सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश बन गए थे। महाराजा और श्री मेहरचन्द महाजन दोनों कश्मीर के भारत के साथ विलय पर बल दे रहे थे। नेहरू मान नहीं रहे थे। नेहरू अब्दुल्ला के मन की बात जानते थे और अन्त में अब्दुल्ला के कहने पर विलय स्वीकार हुआ।

लॉर्ड माउण्टबेटन कश्मीर का विलय पाकिस्तान के साथ चाहते थे। नेहरू दुविधा में फँसे हुए थे। एक ओर वे लॉर्ड माउण्टबेटन को नाराज़ नहीं करना चाहते थे और दूसरी ओर महाराजा ने शेख अब्दुल्ला को छोड़कर नेहरू जी के लिए एक समस्या उत्पन्न कर दी थी। नेहरू जी अब्दुल्ला को भी नाराज़ नहीं करना चाहते थे। इस कारण बीच का मार्ग ढूँढ़ा गया। नेहरू जी ने यह घोषणा कर दी कि कबायलियों के कश्मीर से निकल जाने पर कश्मीर के लोगों का मत जाना जाएगा कि वे भारत के साथ रहना चाहते हैं अथवा पाकिस्तान के साथ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शर्त ने भारत के गले में उस्तरों का हार डाल दिया। इस शर्त को लगाए हुए आज इक्कीस वर्ष हो चुके हैं और कश्मीर का पूर्ण रूप से विलय भारत के साथ नहीं हो सका। भारत का अरबों रुपया कश्मीर पर व्यय हो चुका है और वहाँ पर भारत का एक भी नागरिक एक इन्च भर भूमि लेकर रह नहीं सकता, भारत के सामान्य नागरिक की तो बात ही क्या है, सन् 1968 में भारत के मुसलमान राष्ट्रपति को भी वहाँ पर रहने के लिए स्थान नहीं मिल सका।

हम समझते हैं कि मत-संग्रह का प्रश्न तब उठ सकता था, जब देश-विभाजन के समय पूर्ण भारत में मत-संग्रह किया जाता। हमें विश्वास है कि भारतीय जनता एक विशाल संख्या में देश-विभाजन के विपरीत थी।

यदि यह कहा जाए कि कश्मीर में मुसलमान बहुसंख्या में हैं, इस कारण कश्मीर पाकिस्तान में जाना चाहिए, तब तो भारत में किसी मुसलमान को रहने का अधिकार नहीं हो सकता और हिन्दू मुसलमान की अदला-बदली होनी चाहिए थी।

:: 3 ::

महात्मा गांधी जी की हत्या

यह एक अति विस्मयजनक और अनहोनी घटना हुई थी कि एक व्यक्ति जो अहिंसा का पुजारी हो और अपने विरोधी को भी किसी प्रकार से हानि पहुँचाने की इच्छा न रखता हो, उसी की हत्या करने के लिए कोई आगे आ जाए।

यह किस प्रकार हुआ? उसके आधार में क्या बात थी? क्या हत्यारा पागल हो गया था अथवा वह कोई राक्षस प्रवृत्ति का मनुष्य था?

30 जनवरी सन् 1948 को एक नाथूराम गोडसे ने गोली मार कर महात्मा गांधी की हत्या कर दी। वह व्यक्ति वहाँ ही पकड़ लिया गया। उसके साथ कई अन्य भी पकड़े गए। इन पकड़े जाने वालों में प्रमुख थे श्री एम.एस. गोलवलकर तथा श्री वी.डी. सावरकर। बाद में ये दोनों छोड़ दिए गए। श्री गोलवलकर तो मुकद्दमा आरम्भ करने से पूर्व ही और श्री सावरकर प्रथम अदालत द्वारा निरपराध समझकर।

गोडसे और आप्टे को फाँसी का दण्ड हुआ। गोडसे ने जो वक्तव्य अदालत में दिया, वह भारत सरकार ने जब्त कर लिया। यद्यपि विदेशों में उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्तव्य की प्रतियाँ गईं और कदाचित अदालत के रिकार्ड रूम में, अभी भी उसका बयान उपस्थित होगा। परन्तु उस बयान को रखना, छापना, पढ़ना भारत में एक अपराध है।

परन्तु गांधी जी की हत्या को दूसरे लोग किस प्रकार समझते हैं? यह जानना अवश्य ज्ञानवर्धक होगा।

गांधी जी की हत्या से कुछ पहले जब सिंध के हिन्दू निकाले जा रहे थे, एक रोचक वार्तालाप गांधी जी और आचार्य कृपलानी में हुआ था। श्री प्यारेलाल वार्तालाप का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

आचार्य कृपलानी तो नेहरू जी के विचार से भी साम्प्रदायिक नहीं कहे जा सकते थे। वे हिन्दू मुसलमान सहचारिता के उपासक थे। प्रायः सिन्धी मुसलमानों से सद्व्यवहार रखते थे। सिन्ध में विभाजन के पूर्व जैसे दंगे नहीं थे।

अतः जब कृपलानी साहब ने देखा—

...But in Sind, where there were no major communal disturbances, squeeze, expropriation, and even naked plunder came to be looked upon by the authorities as the natural "economic consequence" of the fulfilment of the dream that was Pakistan. Ordinances were promulgated for requisitioning for Government purposes non-Muslim buildings and building materials. Refugees forcibly entered into and occupied the houses of the members of the minority community during their absence. Hardly any member of the minority community was immune. Sometimes they were made to share their residences with Muslim refugees, at other times they were forced out of their homes by threats and intimidation. The authorities turned the blind eye to cases of trespass into private residences accompanied by insult and molestation arson, and loot.

....

Particularly pitiable was the plight of Harijans. They were required to wear badges on their persons to show that they were untouchables....From

परन्तु सिन्ध में साम्प्रदायिक फसाद नहीं हुए थे और जब हिन्दुओं को धकेलकर बाहर निकाला जाने लगा और लूटा जाने लगा तो इसे एक आर्थिक प्रश्न समझा गया। इस आर्थिक प्रश्न का सम्बन्ध पाकिस्तान बनने के स्वप्न के साथ था। पाकिस्तानी अध्यादेश घोषित किया जाने लगा, जिससे हिन्दुओं के मकानों को सरकारी कामों के लिए खाली कराया जाने लगा। मुसलमान शरणार्थी बलपूर्वक हिन्दुओं के मकानों में घुसने लगे। हिन्दुओं के परिवार का कोई भी व्यक्ति सुरक्षित नहीं था। कभी कुछ हिन्दू-मुसलमान शरणार्थियों के साथ मिलकर मकान में रहते थे तो पीछे वे धकेलकर बाहर कर दिए जाते थे। अधिकारी इस प्रकार के घुसपैठ के मामलों पर आँखें मूँद रहे थे। ये लोग मकानों में घुस जाते थे। उनकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

the interior came reports of the forcible conversion to Islam from the lower classes—particularly Harijans.[203]

सम्पत्ति लूट लेते और कभी-कभी आग भी लगा देते थे।

अछूतों की हालत और भी दयनीय थी। उनको आज्ञा हो गई थी कि वे अपने पर एक बिल्ला लगाएँ जिससे पता लग सके कि वे अछूत हैं। धोबियों और भंगियों को आज्ञा नहीं थी कि वे पाकिस्तान से बाहर जा सकें।

प्रोफेसर एन.आर. मलकानी बार-बार कह रहे थे कि वे पाकिस्तान छोड़कर नहीं जाएँगे। वे वहाँ पर पाकिस्तानी बनकर रहेंगे। आपने कहा था—

सिन्धी होने और पाकिस्तानी होने के नाते मैं नागरिक के अधिकार रखता हूँ। मैं पूरी नागरिकता की माँग करूँगा और इसके लिए लड़ूँगा भी। मैं पाकिस्तानी हूँ और सिन्धी हूँ.... मैं अपने मकान पर भारतीय झण्डा, पुराना अथवा नया, नहीं फहराऊँगा। मैं इसे लपेटकर प्रचीन पवित्र स्मृति के रूप में रख छोड़ूँगा। मैं पाकिस्तानी ध्वज फहराऊँगा।

मैं अपने नागरिक अधिकारों के न मिलने पर विरोध करूँगा। जब देखूँगा कि विरोध सफल नहीं हो रहा तो यहाँ से चल दूँगा, परन्तु मैं आशा करता हूँ कि वह दिन नहीं आएगा।'[204]

परन्तु प्रोफेसर साहब को सिन्ध छोड़कर दिल्ली में आना पड़ा। यह सब कृपलानी साहब ने देखा तो कराची में मिस्टर जिन्ना से मिले और उसका ध्यान उधर दिलाया। इस पर जिन्ना ने उसे एक लम्बी डाण्ट बताई और कह दिया, 'सिन्ध के हिन्दुओं के लिए शिकायत करने का कोई कारण नहीं। उन्होंने पाकिस्तान को स्वीकार नहीं किया। यह ठीक होगा कि वे यहाँ की स्थिति के अनुकूल हो जाएँ।'

इस पर आचार्य कृपलानी ने महात्मा जी से कहा—

"Marwaris and Gujaratis have all gone back to their respective homes outside Sind; where shall the poor Sindhi Hindus and Sikhs go?" Acharya Kripalani had put this challenging question to Gandhiji...

Gandhiji had answered, 'If I were asked, I would say no one should leave his hearth and home. This will put Pakistan on its trial."[205]

मारवाड़ी और गुजराती सिन्ध के बाहर अपने-अपने घरों को चले गए हैं, परन्तु बेचारे सिन्धी कहाँ जाएँ?

गांधी जी ने उत्तर दिया, यदि मुझसे पूछा जाए तो मैं कहूँगा कि एक को भी अपना घर नहीं छोड़ना चाहिए, इससे पाकिस्तान की परीक्षा हो जाएगी।

यह महात्मा जी की कितनी अज्ञानतापूर्ण बात थी। उस समय तक पाँच लाख हिन्दू मारे जा चुके थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...whether, in the circumstances, it would not be batter to work for a planned exodus of non-Muslims from Sind instead of allowing them to be squeezed out and turned upon India as a homeless destitutes, Gandhiji replied that his opposition to a permanent exchange of population remained as strong as ever. After what the Acharya had told him, he said, he, in fact, felt all the more strongly that the place of Sind Congress leaders in that juncture was in Sind.[206]

आचार्य जी को यह बात पसन्द नहीं आई। उनके इस प्रश्न पर कि इस परिस्थिति में क्या यह ठीक नहीं होगा कि बलपूर्वक धकेलकर निकाले जाने के स्थान सिन्ध के हिन्दुओं को योजनाबद्ध वहाँ से निकालने का प्रबन्ध किया जाए। गांधी जी ने उत्तर दिया, 'मेरी सम्मति जनता की अदना-बदली के विरोध में अभी भी वैसी है जैसी पहले थी। विरोध पहले से कुछ प्रबल ही है।

गांधी जी की यह सम्मति थी। और जब हिन्दू पाकिस्तान से धकेले हुए भारत में आते थे और रहने को स्थान न पा सकने के कारण खाली वीरान मस्जिदों में टिक रहे थे तो गांधी जी की आज्ञा से उनको वहाँ से धकेल-धकेलकर निकाला जा रहा था। इस विषय में श्री गाडगिल साहब लिखते हैं—

I have described earlier how the speeches of Nehru on the Muslim problem incited them and infuriated the Hindus. The abandoned mosques in Delhi were occupied by many refugee Hindus who had no place to go. The Muslims went on agitating for their evacuation and the Maulana continued to press me for their repairs. I told him that I would certainly get them repaired, but if they were not used for prayers, would it be all right to use them for schools? I asked. He said, 'No'. Of course this was due to anger. We needed money to build houses for the refugees and wanted to untilise all vacant places. The houses abandoned by Muslims who had migrated to Pakistan were occupied by those who stayed behind and the refugee Hindus had no place to go. They were squatting in filthy tents near gutters and in slums. In some cases they were

मैंने यह वर्णन किया है कि कैसे मुसलमानों की समस्या पर नेहरू जी के भाषण हिन्दुओं को भड़का रहे थे और उन्हें क्रुद्ध कर रहे थे। दिल्ली में खाली छोड़ी हुई मस्जिदें हिन्दू शरणार्थियों ने, जिनके पास रहने को कोई स्थान नहीं था, रहने के लिए कब्जे में कर ली थीं। मुसलमान उनको खाली कराने के लिए यत्न कर रहे थे और मौलाना उनकी मरम्मत के लिए मुझ पर बल दे रहा था। मैंने कहा था कि मैं उनकी मरम्मत अवश्य करा दूँगा, परन्तु यदि वे नमाज़ के लिए प्रयोग नहीं की जा रहीं तो क्या वे स्कूलों के लिए प्रयोग हो सकेंगी?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

actually living in open spaces under the sky. They saw empty Muslim houses being used by other Muslims. Naturally, they occupied vacant mosques. I had already permitted them to occupy vacant Government quarters. But they were greatly irritated by the indifference and the inconveniences to which they were subjected. We paid fifty crores of rupees to Pakistan because of Gandhiji's fast, although Pakistan owed us three hundred crores. Our philosophy is one-sided goodness. We do not believe in tit for tat, but in pat for tat. This too contributed to inflame the refugees from Pakistan. One of them, a Punjabi youth, had thrown a bomb at Gandhiji's prayer meeting in the third week of January.

The differences between Nehru and Patel on how to deal with the Muslims continued to grow. The Delhi Muslims made it a practice to go to Birla Bhavan in the evening and instead of their usual evening prayers tell Gandhiji exaggerated tales of the injustices done to them and Gandhiji would send them on to us. The atmosphere was getting tenser and the risk to Gandhiji's life grew. Of course, every precaution was being taken at Birta Bhavan. But Gandhiji rejected the suggestion that everyone attending the prayers should be serched. On January 30, he was assassinated.[207]

मौलाना ने उत्तर दिया, 'नहीं।' मैं समझता हूँ कि यह क्रोध में कहा था। शरणार्थियों के लिए मकान बनवाने के लिए हमें रुपया चाहिए था। वह था नहीं। इस कारण हम उन सब मकानों को काम में लाना चाहते थे, जो मुसलमान छोड़ गए थे। पाकिस्तान चले गए मुसलमानों के मकान उन मुसलमानों ने अधिकार में कर लिये थे जो नहीं गए थे और हिन्दू शरणार्थियों के लिए रहने को स्थान नहीं था। वे गन्दे खेमों में, गन्दी नालियों के समीप, गन्दगी में बैठे हुए थे। कई अवस्थाओं में वे खुले में रह रहे थे। वे देख रहे थे कि मुसलमानों से छोड़े मकान खाली पड़े हैं और दूसरे मुसलमान उन पर अधिकार किए हुए हैं। यह स्वाभाविक था कि वे खाली मस्जिदों में रहते। मैंने उनको खाली सरकारी क्वार्टरों में रहने को स्थान दे दिया था, परन्तु सरकार की अवहेलना और अपनी कठिनाई के लिए वे भड़के हुए थे। हमने पाकिस्तान को पचास करोड़ रुपया गांधी जी के व्रत के कारण दे दिया था। यद्यपि तीन सौ करोड़ हमने पाकिस्तान से लेना था। हमारी मीमांसा यक-तरफा भलाई की थी। हम जैसे को तैसा के व्यवहार में विश्वास नहीं रखते थे। हम घूसे के बदले प्यार देने की नीति को नहीं मानते थे। इसने हिन्दू शरणार्थियों को और भड़का दिया। इससे एक पंजाबी युवक ने गांधी जी की प्रार्थना सभा पर बम्ब फेंका था।

मुसलमानों से व्यवहार के विषय में श्री पटेल और नेहरू जी में मतभेद बढ़ रहा था। दिल्ली के मुसलमानों ने यह स्वभाव बना लिया था कि वे बिड़ला की कोठी पर जा गांधी जी को बढ़ा-चढ़ा कर शिकायतें करते थे और गांधी जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको हमारे पास भेज देते थे। वातावरण तनाव का होता जाता था और गांधी जी के जीवन को भय बढ़ गया था। सुरक्षा का प्रबन्ध किया गया था, परन्तु गांधी जी ने प्रार्थना सभा पर जाने वालों की तलाशी लेने की बात को अस्वीकार कर दिया था। तीस जनवरी को उनकी हत्या कर दी गई।*

यह सब वृत्तान्त अति संयत भाषा में एक ऐसे आदमी का लिखा है, जो गांधी जी का अनन्य भक्त था। इसके उपरान्त अधिक कुछ भी लिखने में प्रयोजन नहीं रहता।

गांधी जी की हत्या हुई ऐसी स्थितियों में जिनको उत्पन्न करने में गांधी जी का अपना, नेहरू जी का और कांग्रेस दल का सबसे अधिक हाथ था।

गांधी जी के हत्यारे के बयान को ज़ब्त करने और उसको लोगों के हाथ में न जाने देने का कारण भी यही प्रतीत होता है कि उक्त नेताओं ने कुछ खराबी की थी और वह लोगों को पता लगने नहीं देना चाहते थे।

गांधी जी की हत्या से पूर्ण देश में हाहाकार मच गया। इस हाहाकार का प्रभाव उन पर कुछ नहीं हुआ, जिन्होंने उस तनाव की स्थिति उत्पन्न करने में भारी योगदान दिया था।

---

* गोडसे का बयान 1977 के बाद छपवाने की अनुमति मिल गई थी व अब यह उपलब्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम परिच्छेद

नेहरू जी का राज्य

भाषा

आज भारतवर्ष की जितनी भी कठिनाइयाँ हैं वे सब नेहरू जी की उत्पन्न की हुई हैं।

भाषा के विषय में संविधान सभा ने जो कुछ किया वह एक प्रकार से समझौता ही था। नेहरू जी ने संविधान में स्वीकार की गई राष्ट्रभाषा का अपने पूर्ण राज्यकाल में विरोध किया। उसकी प्रगति में बाधा डाली और उसकी हँसी उड़ाई।

संविधान में हिन्दी को पन्द्रह वर्ष के उपरान्त राष्ट्रभाषा बनाना, दो पक्षों में समझौता था। नेहरू जी ने राष्ट्रभाषा विरोधियों को भड़काया और फिर उनको सहायता दी। परिणाम यह हुआ है कि कम से कम एक राज्य इस विषय पर केन्द्र से सर्वथा बागी हो रहा है।

देश की एक भाषा हो, जिसमें देश की शिक्षा और राज्य कार्य चल सके, एक स्वाभाविक आकांक्षा थी। जनता स्वराज्य मिलने पर इस आकांक्षा की पूर्ति चाहती थी, परन्तु आज स्वराज्य प्राप्ति के बीस वर्ष उपरान्त, यह बात सम्पन्न होती कठिन प्रतीत होने लगी है।

इसका सबसे बड़ा कारण है देश की राजनीति में नेतृत्व उन लोगों के हाथ में चले जाना जो न केवल अंग्रेज़ी भाषा और सभ्यता के भक्त थे, वरन जो देश की बातों, संस्कृति, सभ्यता इत्यादि के विषय में सर्वथा अनभिज्ञ थे। इसमें कुछ अंश तक तो अंग्रेज़ी राज्य का चलन उत्तरदायी था। अंग्रेज़ी राज्य का उत्तरदायित्व केवल इतना था कि वह देश में पढ़ा-लिखा विद्वान केवल उसको मानता था जो अंग्रेज़ी पढ़, समझ और बोल सकता था। इस पर भी हमारा यह विचार है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने मात्र से अंग्रेज़ी भाषा की महिमा और भाषावाद उत्पन्न नहीं हुआ। इसमें बहुत अंश तक उन नेताओं का हाथ है जो अंग्रेज़ी पढ़े थे व अपने देशवासियों की भावना से सर्वथा अनभिज्ञ थे।

कांग्रेस में ऐसे अंग्रेज़ीदां, परन्तु अपने घर से अनभिज्ञ भरे पड़े थे। इनका विरोध करने वाले तिलक, अरविन्द, विपिनचन्द्र पाल, लाजपतराय इत्यादि थे, परन्तु उनको दादाभाई नौरोजी, गोखले, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कांग्रेस में घुसने नहीं दिया।

जब सन् 1914-15 में इस गुट का प्रभाव बढ़ा तो महात्मा गांधी जी मैदान में आ गए और इनके साथी बन गए मोतीलाल नेहरू, मौलाना, मुहम्मद अली इत्यादि।

घटनाओं के अध्ययन से हम एक ही परिणाम पर पहुँचते हैं कि भाषावाद का झगड़ा तब से ही आरम्भ हुआ है। सन् 1920 में नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में प्रथम बार भाषायी सूत्रों का प्रस्ताव कांग्रेस ने स्वीकार किया था। तब से ही भारत की एक राष्ट्रभाषा का प्रश्न धूमिल होने लगा था।

सन् 1936 में गांधी जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सम्बन्ध विच्छेद कर हिन्दुस्तानी भाषा का ध्वज ऊँचा किया तो यह हिन्दी को बदनाम करने में योगदान ही था। हिन्दुस्तानी लगभग हिन्दी ही मानी जाती थी। हिन्दुस्तानी जिसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य था, वह हिन्दी थी। मुसलमानों के सुभीते के लिए संस्कृत शब्दों के स्थान कुछ उर्दू के प्रचलित शब्द लेने का रिवाज चल रहा था, परन्तु गांधी जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन से त्याग-पत्र देकर संस्कृतनिष्ठ हिन्दुस्तानी को निन्दनीय बताया और उसके स्थान पर फ़ारसी और अरबीनिष्ठ भाषा को हिन्दुस्तानी स्वीकार किया।

परिणाम यह हुआ कि देश की विभिन्न भाषाओं में संस्कृत शब्दों के द्वारा जो ऐक्य उत्पन्न होने लगा था, उसको धक्का लगा। प्रान्तों में, विशेष रूप में बंगाल और मद्रास में, हिन्दुस्तानी का विरोध आरम्भ हुआ।

गांधी जी के व्यवहार पर जवाहरलाल जी के विचारों का भारी प्रभाव पड़ा था। जवाहरलाल जी हिन्दी नहीं जानते थे। श्री के.एम. मुन्शी लिखते हैं—

Gujrati, my mother tongue, has more Arabo-Persian words in its vocabulary than any other Indian language except Urdu. I could speak a little Hindustani and could express my thoughts in halting Hindi. But on

मेरी मातृभाषा गुजराती में, अरबी और फ़ारसी शब्दों का बाहुल्य केवल उर्दू से कम है। मैं हिन्दुस्तानी में कुछ बोल सकता हूँ और अपने विचार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

making a list of words spoken by Maulana Azad and Jawaharlal Nehru in the Constituent Assembly debates, I found that I could not understand roughly 60% to 70% of the words used, by the former and in the early stages 30% to 40% of 'the words used by the later.[208]

हिन्दुस्तानी में अटक-अटक कर प्रकट कर सकता हूँ। परन्तु जब मैं मौलाना आज़ाद और जवाहरलाल नेहरू की भाषा में शब्दों की गिनती करता था तो देखता था कि मौलाना के 70 प्रतिशत शब्द और नेहरू जी के 30 प्रतिशत शब्द मैं समझ नहीं सकता था।

यह थी हिन्दुस्तानी जिसको गांधी जी देश की राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे। स्पष्ट है कि इन दिनों गांधी जी ने अपनी नौका जवाहरलाल जी के बजरे के साथ बाँध रखी थी।

जून सन् 1948 में संविधान सभा ने एक कमीशन नियुक्त की। इस कमीशन को यह विचार करने के लिए कहा गया कि भारत में भाषायी राज्य बनाए जाएँ अथवा नहीं? कमीशन के अध्यक्ष जस्टिस धार थे।

इस कमीशन का निर्णय यह था—

The formation of provinces on exclusively or even mainly linguistic considerations is not in the larger interest of the Indian Nation and should not be taken in hand.[209]

केवल भाषा के विचार से अथवा भाषा को मुख्य मानकर राज्यों का बँटवारा भारत के व्यापक हितों में नहीं है और इसे हाथ में नहीं लेना चाहिए।

परन्तु कांग्रेस में तो अराष्ट्रवादी तत्वों का बाहुल्य था। दिसम्बर सन् 1948 में कांग्रेस कमेटी ने फिर एक कमेटी नियुक्त की जो भाषायी राज्यों का गठन करे। यह कमेटी J.V.P (जे.वी.पी.) के नाम से विख्यात है। इसमें जवाहरलाल जी, वल्लभभाई और पट्टाभि सीतारामय्या थे। इस कमेटी ने भी यह रिपोर्ट की—

We feel that the conditions that have emerged in India since the achievement of Independence are such as to make us view the problem of linguistic provinces in a new light........ we would prefer to postpone the formation of new provinces for a few years so that we might concentrate during this period on other matters of vital importance and not allow ourselves to be distracted by this question...[210]

हम अनुभव करते हैं कि स्वतन्त्रता के प्राप्त करने से जो समस्याएँ उत्पन्न हो गई हैं, वे ऐसी हैं जिनसे हम भाषायी राज्यों की समस्या को एक नए दृष्टिकोण से देखने लगे हैं।.... हम चाहेंगे कि नए राज्य अभी कुछ वर्ष तक न बनाए जाएँ और हम अपना ध्यान दूसरे अधिक आवश्यक विषयों पर लगाएँ और स्वयं को भटकने न दें।

धार कमीशन एक योग्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में बनी थी, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कांग्रेसी महापण्डितों ने उस कमीशन से सन्तुष्ट न हो अपनी बात चलाने के लिए J.V.P. कमेटी बना दी। यह धार कमेटी से भिन्न परिणामों पर पहुँची थी। यह स्वाभाविक ही था। विद्वान और अविद्वान का भेद तो था ही।

इस कमेटी के निर्णय पर भी नेहरू जी डटे नहीं रहे। और जब आंध्र के श्री रामुलु ने भूख हड़ताल कर आत्महत्या की तो कांग्रेस का पसीना छूट गया और तुरन्त आन्ध्र प्रान्त की पृथकता मान ली गई।

फिर सन् 1953 में इन्होंने State Reorganization Commission नियुक्त कर दी। इसमें जस्टिस फज़ल अली अध्यक्ष थे तथा श्री एच.एन. कुंजरू और श्री पाणिकर सदस्य थे। इस कमीशन ने भी अपना निर्णय इस प्रकार दिया—

"...After a full consideration of the problem in all its aspects, we have come to the conclusion that it is neither possible nor desirable to reorganise States on the basis of the *single test* of either language or culture, but a balanced approach to the whole problem is necessary in the interest of national unity....[211]

पूर्ण विचार के उपरान्त और सब बातों को ध्यान में रखते हुए, हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह न तो सम्भव है और न ही उचित कि राज्यों का पुनर्गठन केवल भाषा तथा संस्कृति के विचार से किया जाए। राष्ट्रीय एकता के विचार से पूर्ण समस्या पर सबको सब बातों का ध्यान रखकर विचार करना उचित होगा।

इस कमीशन ने 15 राज्य प्रस्तावित किए थे। परन्तु नेहरू जी और कांग्रेस ने इस कमीशन की सम्मति को भी ठुकरा दिया और भाषा के विचार से नए राज्य बनाए। बम्बई महाराष्ट्र को दे दिया। पंजाबी सूबा बना दिया। नागालैण्ड और मिज़ोलैण्ड स्वीकार कर लिया। और नेहरू जी की इसी परम्परा में अब असम पहाड़ी क्षेत्र का एक राज्य बनाया जा रहा है।

हमारा यह विचारित मत है कि नेहरू जी और कांग्रेस के मूर्खों ने देश में भाषा और भाषावाद का भूत खड़ा कर एक बनी बनाई राष्ट्रभाषा को पीछे फेंक दिया है। अन्यथा देश में 70 प्रतिशत लोग हिन्दी समझते थे।

राष्ट्रभाषा ही सम्पर्क भाषा होती है। राज्यभाषा ही शिक्षा का माध्यम हो सकती है। बुद्धि के इन कोल्हुओं को यह करना चाहिए था कि शिक्षा का माध्यम पाँच वर्षों में हिन्दी कर देते। तब राज्यभाषा का झगड़ा उठता ही नहीं।

अंग्रेज़ी काल के प्रोफेसर भला स्वेच्छा से अंग्रेज़ी छोड़ने के लिए कैसे तैयार हो सकते थे? उनको विवश करना आवश्यक था। दासता में फँसे लोग दासता से ही प्रेम करने लगे थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा अंग्रेज़ी से विरोध का एक मुख्य कारण यह है कि अंग्रेज़ी भाषा हिन्दी से घटिया भाषा है। इस भाषा में उच्चारण और लिपि का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस भाषा में सब-के-सब शब्द ऐसे हैं जो हिन्दुस्तानी बच्चे न बोलते हैं और न समझते हैं। इसमें साहित्य भारतीय विचारधारा का विरोधी है।

इन दोषों के होते हुए, पूर्ण भूमण्डल की भाषा होते हुए भी अंग्रेज़ी स्वीकार करने योग्य नहीं हो सकती। दुर्भाग्य यह है कि देश का नेतृत्व उन लोगों के हाथ में है, जो किसी प्रकार भी न तो भारतीय माने जा सकते हैं और न विद्वान।

देश की सुरक्षा

राज्य का अत्यावश्यक और प्रथम कार्य देश में शान्ति व्यवस्था बनाए रखना है और इसकी बाहरी आक्रमण से रक्षा करना है। दोनों ही सुरक्षा के विषय हैं।

पूर्व इसके कि कांग्रेसी राज्य में सुरक्षा के इन दोनों अंगों पर हम कुछ लिखें, एक बात देश के विषय में लिख देना आवश्यक है।

क्या यह भूमि, नदी, नाले, पहाड़ देश हैं? अथवा क्या नगर, महल, अटारियाँ, अजायबघर, उद्योग-धन्धे देश हैं? वास्तव में ये और अन्य सब सुख के सामान, जिन्हें देश की सम्पत्ति कहते हैं, देश नहीं हैं। ये देशवासियों के सुखी रहने के साधन मात्र हैं। तो फिर देश क्या है?

निःसन्देह देश किसी एक भूमि खण्ड पर रहने वाले लोग हैं। वे सब पदार्थ जिनकी ऊपर गिनती कराई है, देश में रहने वालों के सुख में साधन हैं। अतः देश उस जन-समूह को कहते हैं जो किसी एक भूमि खण्ड पर रहता हो।

जब गांधी जी और अन्य कांग्रेसी नेता देश-विभाजन से पूर्व लोगों को यह कहते रहे कि वे अपने-अपने स्थान पर बैठे रहें तो वे किनके सुख के लिए यह कहते थे? विशेष रूप में जब वे पाकिस्तान का बनना स्वीकार कर चुके थे और वह स्वीकारोक्ति मुसलमानों के 'डायरेक्टर ऐक्शन' की भयंकरता को देखकर ही थी।

ये झगड़े हिन्दुओं से पाकिस्तान स्वीकार कराने के निमित्त तथा उन क्षेत्रों से जिनको पाकिस्तान बनाने का विचार था, हिन्दुओं को भगा देने के निमित्त हो रहे थे। इन झगड़ों का उग्र रूप 16 अगस्त सन् 1946 से आरम्भ हुआ था और 16 अगस्त का नाम 'डायरेक्ट डे' एक्शन में रखा गया था। इस स्पष्ट वादोक्ति के उपरान्त कांग्रेस इन बलवों, लूट-मार, अग्नि-काण्ड, स्त्रियों के अपहरण और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलात्कार को रोकने में असफल सिद्ध हुई थी। देश-विभाजन स्वीकार करने पर भी सिन्ध, पंजाब और बंगाल के हिन्दुओं को यह कहना कि वे अपने-अपने स्थान पर बैठे रहें, कैसे युक्तियुक्त हो सकता था?

क्या यह कहना गलत है कि गांधी जी, नेहरू जी तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं का नवनिर्मित भारत में रह गए मुसलमानों से इतना अधिक मोह हो गया था कि उनके मुकाबले में पाकिस्तान में मारे-लूटे जाते हिन्दुओं की रक्षा और सुख में उनकी रुचि नहीं थी? निःसन्देह यह था। इन नेताओं और कांग्रेस के व्यवहार से यही सिद्ध होता है भारत में रह गए साढ़े चार करोड़ मुसलमानों का मूल्य उनकी दृष्टि में लगभग उतने ही पाकिस्तान में रह गए हिन्दुओं से अधिक था।

कहने का अभिप्राय यह हुए कि कांग्रेसी, मकान, ईंट, पत्थर, धन-सम्पदा को तो देश मानते थे और देश में रहने वाले लोगों को इन वस्तुओं के साथ बँधे हुए पशु। यह बात केवल हिन्दुओं के विषय में ही नहीं, वरंच मुसलमानों के विषय में भी मानी जाती प्रतीत होती है अन्यथा वे मुसलमानों को भी अपने मनोनीत देश में जाने के लिए सुविधा उत्पन्न कर देते।

विडम्बना का भयंकर रूप यह था कि मुस्लिम लीग ऐसा नहीं मानती थी। वे मुसलमानों का मूल्य देश की भूमि और देश की सम्पत्ति से अधिक समझती थी। जो मुसलमान पाकिस्तान में थे, अथवा वहाँ पहुँच गए थे, उनके लिए सुख-सुविधा का प्रबन्ध वे कर रहे थे और जो मुसलमान भारत में रह गए थे, उनकी सुख-सुविधा का प्रबन्ध भारत सरकार को डरा-धमका कर कराना चाहते थे। भारत में रह गए मुसलमानों को भी उत्साहित करने के लिए, उनके नेता समय-समय पर यह आश्वासन देते रहते हैं कि पूर्ण भारत को पाकिस्तान बनाने में वे यत्नशील हैं।

दुर्भाग्य की बात यह है कि पाकिस्तानी नेता जहाँ मुसलमानों को जो पाकिस्तान का एक भाग समझते हैं वहाँ हिन्दुओं को वे, धन-सम्पदा, मकान, भूमि के समान ही द्रव्य (commodity) मात्र मानते हैं।

हमारा यह मत है कि देश का अर्थ किसी भूमि-खण्ड पर के प्राकृतिक पदार्थ अथवा मनुष्य निर्मित पदार्थ नहीं होता। उस भूमि-खण्ड पर बसे हुए लोग ही देश हैं। ज्योंही बात को इस प्रकार समझा जाएगा तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि कांग्रेसी राज्य भारत देश में बसे लोगों की सुरक्षा से अधिक ऊँचा स्थान यहाँ की प्राकृतिक और मानव निर्मित धन-दौलत की रक्षा को देता है।

जब देश और देश में बसी जनता में अन्तर स्पष्ट हो गया तो उद्योग-धन्धों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
का महत्व देश के लोगों की रक्षा की तुलना में कुछ भी नहीं रह जाता।

हमारा यह दावा है कि जहाँ धन-सम्पदा को प्राणियों के सुख के लिए माना जाता है, वहाँ पर ही धन-सम्पदा में वृद्धि होती है और जहाँ धन-सम्पदा मानव से ऊपर मूल्य पाने लगती है, वहाँ धन-सम्पदा भी नहीं रह सकती।

देश की पूर्ण विभूति देशवासियों के लिए है न कि देशवासी विभूति के लिए। आन्तरिक शान्ति-व्यवस्था का एक चित्र सन् 1967 में मार्च मास से सितम्बर मास तक बंगाल और कलकत्ता में प्रकट हो चुका है। सरकारी मन्त्री बलवे कराने, कानून को अपने हाथ में लेने और लूट-मार करने की राय दे रहे थे। केन्द्रीय सरकार मुख देखती रही थी। आज भी अनियमित हड़तालों और बलपूर्वक भूमि तथा कारखानों पर अधिकार करने तथा कारखानों में बैठ काम न करने के उदाहरण दृष्टिगत हो रहे हैं।

न्याय-प्रपंच का सम्बन्ध देश में बसे मानवों से अधिक है और रेडियो, फ्रिज, बिजली के पंखे इत्यादि का मानवों से सम्बन्ध दूर का है।

फिर शिक्षा की भी बात है। शिक्षा मानव मन को उन्नत करने के लिए है। तकनीकी शिक्षा गौण है। भारत में मानसिक विकास को गौण मान इन्जीनियर, डॉक्टर, मिस्त्री और दस्तकारी निर्माण करने की शिक्षा पर बल दिया जा रहा है। परिणामस्वरूप देश के नैतिक स्तर में भारी ह्रास हो रहा है। विद्यार्थियों की हड़तालें, उन द्वारा किए जाने वाले तोड़-फोड़ के काम और अध्यापकों को मारने-पीटने की घटनाएँ नित्य प्रति हो रही हैं।

इसी प्रकार ऐसे मुख्य मन्त्री भी हुए हैं, जिन्होंने करोड़ों रुपये की सम्पत्ति अनियमित ढंग से बनाई है। कुछ एक के विषय में जाँच भी हुई और वे दोषी सिद्ध हुए, परन्तु उसको दण्ड नहीं दिया जा सका। कारण वही है, जो हमने ऊपर बताया है। मानवों पर साधनों की उपमा दी जा रही है। मानव की अवहेलना से साधन भी नहीं रहेंगे। हमारा यह मत है।

आज देश में शान्ति-व्यवस्था का स्तर बहुत ही गिर चुका है। गांधी जी सत्य, धर्म, न्याय और अहिंसा का गुण गाते थकते नहीं थे; परन्तु राजनीति में उनका पूर्ण व्यवहार अपने चारों ओर अविश्वासवादी, झूठे, धन-लोलुप, भोग और स्वार्थ में रत व्यक्ति एकत्रित करने में व्यतीत हुआ। परिणाम यह हुआ कि देश सुदृढ़, सुव्यवस्थित और नैतिक दृष्टि से उच्च नहीं हुआ।

इन सब बातों में सबसे अधिक दोषी नेहरू जी ही थे। उस समय नेहरू जी को पूर्ण देश का समर्थन प्राप्त था और उस समर्थन का उन्होंने जान-बूझ कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा अनजाने में दुरुपयोग किया था।

नेहरू जी के बाद उनसे कुछ ही कम, दोष उन लोगों का था जो नेहरू जी के साथ मन्त्रिमण्डल में थे। इस दोष से सरकार वल्लभभाई पटेल कितने मुक्त माने जा सकते हैं, विचारणीय विषय है।

श्री गाडगिल भी पाँच वर्ष तक मन्त्रिमण्डल में रहे थे। वे भी जो कुछ अब लिख रहे हैं, उस समय कुछ कर नहीं सके थे।

आप अपनी पुस्तक में लिखते हैं—

According to the working rules of the Cabinet the detailed working of our defences was the responsibility of a sub-committee of the Cabinet. Its members were the Prime Minister, Vallabhbhai, Gopalswami Aiyangar and the Defence Minister.

Similarly another sub-committee was in charge of foreign policy. Nehru, Vallabhbhai and Aiyangar were its members. Later Maulana Azad was also included. However, it was the experience in both the sub-committees that whatever Nehru said was accepted. When these decisions came up for discussion before the full Cabinet, except for one or two ministers like me, none would oppose Nehru, who disliked opposition and, if opposed, often exchanged sharp words.[212]

मन्त्रिमण्डल की कार्यविधि के अनुसार सुरक्षा के प्रबन्ध की व्याख्या मन्त्रिमण्डल की एक उप-समिति का उत्तरदायित्व था। इस उपसमिति में (1947-1951 तक) प्रधान मन्त्री, वल्लभभाई पटेल, गोपालस्वामी आयंगर और सुरक्षा मन्त्री थे।

इसी प्रकार एक अन्य उप-समिति विदेशी नीति की देखभाल के लिए थी। प्रधान मन्त्री, वल्लभभाई पटेल, गोपालस्वामी आयंगर इसके सदस्य थे। पीछे मौलाना आज़ाद इसमें सम्मिलित कर लिये गए थे। परन्तु दोनों ही उप-समितियों में यह देखा गया था कि जो कुछ नेहरू कहते थे वह स्वीकार कर लिया जाता था। जब उप-समितियों के निर्णय सामान्य विचार के लिए पूर्ण मन्त्रिमण्डल के सम्मुख उपस्थित होते थे तो मेरे जैसे एक-आध मन्त्री के अतिरिक्त अन्य कोई नेहरू जी का विरोध नहीं करता था। नेहरू जी विरोध पसन्द भी नहीं करते थे। यदि कोई विरोध करता था तो वे कठोर शब्दों में उसकी भर्त्सना कर देते थे।

यह एक अति दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति थी। देश की सबसे बड़ी समस्या थी विदेश नीति की। यह नीति तटस्थता की थी, परन्तु दूसरे देश तो तटस्थ थे नहीं। वे जोड़-तोड़ लगाते रहते थे। इससे भारत अन्य देशों के साथ क्या सम्बन्ध रखे, अनिश्चित रहता था।

तटस्थता शब्द के अर्थ मिथ्या लगाए जा रहे थे। तटस्थता का अर्थ यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया गया कि किसी दूसरे देश के भले-बुरे का विचार छोड़कर अपनी ही भलाई-बुराई का विचार किया जाए। यह तो एक अति भयंकर नीति थी। जब इस नीति का ज्ञान दूसरे देशों को हुआ तो भारत इस भूमण्डल में बिना मित्र के हो गया।

तटस्थता का एक अर्थ यह भी लिया गया कि हमने सैनिक सहायता न किसी को देनी है और न ही किसी से लेनी है। यह अर्थ प्रथम अभिप्राय से भी अधिक भयंकर सिद्ध हुआ है। सन् 1965 के पाकिस्तानी आक्रमण के समय हम निःसहाय हो गए थे। अपने सैनिकों की बहादुरी और अपने अच्छे भाग्य से युद्ध कुछ अधिक काल तक नहीं चल सका और लम्बे युद्ध के झमेले से हम बच गए।

परन्तु यह सिद्ध है कि तटस्थता के उक्त दोनों अर्थ अशुद्ध हैं।

तटस्थता हो सकती है बुराई से, असत्य तथा अन्याय से। परन्तु यह तटस्थता तो तब ही प्रकट होती है जब हम सत्य, न्याय और भलमनसाहत के पक्ष में हों। यदि दोनों ओर से हम तटस्थ हो जाएँ तो हम अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में एक निर्जीव पत्थर की भाँति हो जाते हैं।

सत्य बात यह है कि कांग्रेस सरकार नेहरू जी के नेतृत्व में न तो तटस्थ थी और न ही सत्य, न्याय और शराफत के पक्ष में थी। हम पक्ष ले रहे थे उन अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों का, जिनको नेहरू जी पसन्द कर रहे थे। अभिप्राय यह है कि भारत कम्युनिस्ट गुट के पक्ष में था। अमरीका, इंग्लैंड और पश्चिमी यूरोप के देशों को हम बेईमान, अन्यायी और असत्यवादी मानते थे और उनका विरोध करते थे।

अतः अन्तर्राष्ट्रीय जगत में हमारा पक्ष दुर्बल था। हम स्वयं कम्युनिस्ट थे और पक्ष लेते थे कम्युनिस्टों का।

रूस ने एक सीमा तक कश्मीर के विषय में हमारी सहायता की थी परन्तु अन्य पूर्ण सुरक्षा परिषद हमारा विरोध करती थी।

साथ ही प्रश्न यह है कि क्या रूस का पक्ष ठीक है ? वह देश, जिसमें एक वर्ग की तानाशाही चलती है, जहाँ बोलने, लिखने और विचार करने की स्वतन्त्रता नहीं, एक भला देश कैसे हो सकता है ?

अतः हमारी पूर्ण विदेश नीति और इसमें तटस्थता की नीति ऐसी हो गई है कि हम अरब गणराज्य, यूगोस्लाविया और रूस के कुछ देशों की उंगलियों पर नाचने वाले हो गए हैं। हमारा कोई भी मित्र नहीं रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमण्डल में अतुल शक्तियुक्त होते हुए भी हम भले देशों से तटस्थ नहीं हो सकते। हमें अपने और पराए की पहचान होनी चाहिए। इसके उपरान्त भले लोगों से हमारी मित्रता होनी चाहिए।

विदेश नीति कुछ भी हो, हमारी सुरक्षा तो अक्षुण्ण होनी ही चाहिए।

श्री गाडगिल अपनी पुस्तक में लिखते हैं—

Our border defences were neglected because of the firm conviction of Nehru that since we had no quarrel with any one, on one would attack us. Our foreign policy, so well conceived from the standpoint of national security, failed in the end, because of this fatal weakness.[213]

देश की सीमाओं की रक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। यह नेहरू जी के दृढ़ विश्वास के कारण था कि हमारा किसी से झगड़ा नहीं। इस कारण हम पर कोई आक्रमण क्यों करेगा? हमारी विदेश नीति भी जो बहुत विचारोपरान्त निर्माण की गई थी, इस दुर्बलता के कारण असफल हुई थी।

भारत के राजदूतों का निर्वाचन भी मिथ्या आधार पर होता था। यह नीति है कि किसी देश में राजदूत वहाँ का मित्र नहीं भेजा जा सकता। ऐसा करने का परिणाम यह होता है कि उन देशों में अपने देश के विरुद्ध षड्यन्त्रों का पता नहीं चलता।

यह ठीक है कि हमें किसी देश में उस देश का शत्रु नहीं भेजना चाहिए, परन्तु मित्र न होने और शत्रु होने में भारी अन्तर है।

इसका एक उदाहरण श्री गाडगिल देते हैं। सन् 1950-51 में चीन में डाक्टर पणिकर राजदूत थे। जब तिब्बत पर चीन ने अधिकार किया तो राजदूत ने इस पर अपनी सम्मति लिखकर भेजी। श्री गाडगिल इस विषय में लिखते हैं—

....Our Ambassador in China at the time, Dr. Pannikar, analysed the situation as inevitable, just and proper. Our military officers were opposed to the developments in Tibbet. Nehru asked Pannikar to persuade them. The Army officers asked him only one question, 'What purpose has China in coming over to the Himalayas in spite of so many difficulties?' Instead of giving a straight answer, this learned doctor accused them of thinking like British military officers.' What could they do in the face of such logic, except to keep silent.

हमारे चीन में राजदूत डा. पणिकर थे। उनका विचार था कि यह (चीन का तिब्बत पर अधिकार कर लेना) अनिवार्य, न्याय-संगत और उचित था। हमारे सैनिक अधिकारी इसके विरुद्ध थे। श्री नेहरू और पणिकर उनको समझा रहे थे। सैनिक अधिकारी पूछ रहे थे, 'आखिर इतनी कठिनाई पार कर चीन का हिमालय पर आने का क्या उद्देश्य है?' इस प्रश्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...But some firmness at the time might have avoided today's tragic situation, at least mitigated its acuteness to some extent. Similarly, we could have built roads in Ladakh in view of the Chinese moves. In fact, our military officers had submitted a plan to that effect in 1951-52, but it was pigeonholed. The reason for this was known only to God above and Nehru below.[214]

का सीधा उत्तर देने के स्थान विद्वान डाक्टर उन पर आरोप लगाने लगा कि उनका विचार करने का ढंग अंग्रेज़ अधिकारियों का–सा है। इस अवस्था में उनके लिए चुप रह जाने के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था।

.....यदि उस समय कुछ कठोर व्यवहार अपनाया जाता तो आज की कठिन स्थिति उत्पन्न न होती। कुछ सीमा तक वह इतनी कठिन न होती। चीन के उक्त व्यवहार के उपरान्त हम लद्दाख में सड़कें तो बना सकते थे। हमारे सैनिक अधिकारियों ने इस विषय में योजना बनाकर (सन् 1951–52 में) भेजी थी। उस योजना का क्या हुआ? ऊपर केवल परमात्मा और नीचे नेहरू को विदित था।

हमने अपने सैनिक अधिकारियों की राय के विपरीत युद्ध–बन्दी की घोषणा समय से पूर्व कर दी थी। यदि कश्मीर पूर्ण पाकिस्तान से छुड़ा लिया जाता तो अब चीन और पाकिस्तान में सहचारिता न हो सकती।

श्री वी.पी. मैनन इस विषय में लिखते हैं—

Personally, when I recommended to the Government of India the acceptance of the accession of the Maharaja of Kashmir, I had in mind one consideration and one consideration alone, *viz.*, that the invarsion of Kashmir by the raiders was a grave threat to the integrity of India. Ever since the time of Mahmud Ghazni, that is to say, for nearly eight centuries, with but a brief interval during the Moghul epoch, India had been subjected to periodical invasion from the north-west. Mahmud Ghazni had led no less than seventeen of these incursions in person. And within less than ten weeks of the establishment of the new state of Pakistan, its very first act was to let loose a tribal invasion through the north-west. Srinagar today, Delhi tomorrow. A nation that forgets its history or its geography does so at its peril.[215]

मेरा भारत सरकार से महाराजा कश्मीर के विलय की प्रार्थना स्वीकार कर लेने को कहने में मुख्य कारण यह था कि कश्मीर पर कबायलियों का आक्रमण भारत की एकता पर आघात था। महमूद गज़नवी के काल से लगभग 800 वर्ष तक, बीच में मुग़लों के थोड़े–से काल को छोड़कर, बार–बार हिन्दुस्तान पर आक्रमण इसी मार्ग (पश्चिमोत्तरी सीमा) की ओर से होते रहे हैं। महमूद गज़नवी ने इसी मार्ग से सत्रह बार आक्रमण किया था और पाकिस्तान बनने के दस सप्ताह के भीतर इसका सबसे पहला काम था कि इसने कबायलियों को इसी मार्ग से घुस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने दिया। आज श्रीनगर था, कल को दिल्ली भी हो सकता है। वह जाति जो अपना इतिहास और भूगोल भूल जाती है, सदा भय मोल लेती है।

अभिप्राय यह कि भारत को अपनी सुरक्षा के लिए पूर्ण कश्मीर की आवश्यकता है। भारत सरकार और नेहरू जी ने इस मुहिम को बीच में ही रोक कर देश का अहित ही किया है।

देश की सुरक्षा का सम्बन्ध है—

1. सेना के साथ;
2. विदेश नीति के साथ;
3. आभ्यान्तरिक शान्ति के साथ;
4. राष्ट्रीयता के विचार के साथ;
5. पड़ोसी शत्रु देशों में कमी करने के साथ;
6. सीमाओं और सागर-तट की सुरक्षा के साथ।

इन सब बातों में नेहरू सरकार ने गलत धारणाओं से और प्रमाद से काम लिया था।

लेफ्टिनैन्ट जनरल बी.एम. कौल इन मिथ्या धारणाओं और प्रमाद की एक लम्बी कहानी का वर्णन करते हैं। आप लिखते हैं—

Menon alienated and antagonized people by sarcasm and unkind remarks. He was quick-tempered, stubborn and always at strife with someone. He would walk past his equals without a greeting and made many enemies by his arrogant behaviour.[216]

मैनन अपने व्यंग्यात्मक और कठोर वचनों से लोगों को शत्रु बना लेता था। वह शीघ्र क्रुद्ध हो जाता था। वह हठी था और सदा किसी न किसी का विरोध करता रहता था। वह अपने बराबर वालों के समीप से, बिना अभिवादन के गुज़र जाया करता था और उसने अपने इस उद्दण्डता के व्यवहार से बहुत शत्रु बना लिये थे।

मैनन जवाहरलाल जी के प्रिय साथियों में थे। स्वराज्य प्राप्ति के पूर्व से लेकर नेहरू जी के निधन काल तक वह उनके प्रिय बने रहे।

श्री कौल श्री मैनन के विषय में अपना विचार इस प्रकार लिखते हैं—

He had become Nehru's right-hand man and his intellectual companion. His strong position with Nehru stemmed from the latter's belief that he interpreted his ethics, ideologies and policies more faithfully than any other man.[217]

वह नेहरू का दाहिना हाथ और बौद्धिक साथी था। उसकी नेहरू के साथ घनिष्ठ स्थिति दूसरों के मन पर यह विश्वास बैठाती थी कि मैनन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेहरू के चरित्र, विचारधारा और राजनीति का प्रतिनिधित्व करता है।

चीन से लद्दाख तथा नेफा में और पाकिस्तान से सीमा अरक्षित थी। सैनिक अधिकारी इस बात की चेतावनी निरन्तर देते रहते थे। उनकी माँग थी कि शस्त्रास्त्र और अन्य सैनिक सामान की कमी की पूर्ति की जाए। परन्तु मैनन और नेहरू जी विदेशी मुद्रा की कमी के कारण सैनिक माँग का विरोध करते रहते थे।

जनरल कौल लिखते हैं कि उन्होंने एक माँग-पत्र तैयार करके सेना के चीफ से हस्ताक्षर करा कर, सुरक्षा मन्त्री के पास भिजवा दिया। उसमें जो शस्त्रास्त्र और अन्य साधनों में कमी थी, वह लिखी थी। इस पत्र व सब सामान पर लागत भी लिखी थी।

...Menon received this letter but whether he placed it before the Defence Committee of the Cabinet, only he would know. We did not hear back from him or any of his colleagues. I do not know what happened to this letter.[218]

मैनन के पास यह पत्र भेजा गया। उन्होंने इसे मन्त्रिमण्डल की रक्षा समिति के सम्मुख रखा था अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता। परन्तु इस पत्र का कुछ परिणाम नहीं हुआ।

श्री गाडगिल इस विषय में लिखते हैं—

This temperament of Nehru made simple problems complex and gave cause for anxiety, particularly in the matter of the defense of the country.[219]

नेहरू का स्वभाव ऐसा था कि सरल बातें भी विषम बन जाती थीं और फिर चिन्ता का विषय बन जाती थीं। विशेष रूप में देश की सुरक्षा के विषय में वे (व्यर्थ की बातें) करते रहते थे।

सन् 1950 में पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दुओं की निकासी आरम्भ हो गई। इस पर देश में और मन्त्रिमण्डल में भी वाद-विवाद आरम्भ हो गया। हिन्दुओं का पाकिस्तान से निकाला जाना रोकना आवश्यक था। सैनिक कार्यवाही की आवश्यकता अनुभव होने लगी थी।

लियाकत अली दिल्ली में आए। डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी लियाकत अली से किसी प्रकार की बातचीत के स्थान उसको ultimatum देने के पक्ष में थे। इस पर डॉक्टर मुखर्जी से झगड़ा हो गया। इस विषय में श्री गाडगिल लिखते हैं—

...Later, Shyama Prasad Mukherji and Nehru fell out on the question of the refugees and the concerned Cabinet meeting ended in loud recriminations.[220]

पीछे श्यामाप्रसाद मुखर्जी और नेहरू में झगड़ा हो गया। झगड़े का विषय था पूर्वी पाकिस्तान से आने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरणार्थी। वह मन्त्रिमण्डल की बैठक तू-तू मैं-मैं में समाप्त हो गई।

लियाकत अली से नेहरू जी की बातचीत हुई और एक दिन मन्त्रिमण्डल की बैठक में वे परस्पर हुए वचन का एक प्रारूप लेकर आए।

श्री गाडगिल लिखते हैं—

...Nehru placed before the Cabinet a draft of his agreement with him. I am not sure if Vallabhbhai was consulted before the draft was agreed to. The final two paragraphs in the agreement accepted the principle of reservations for Muslims in proportion to their population in all the services and representative bodies in the constituent States of India. Similar provisions were suggested for the Central Government also. Each one of us got a copy of the draft, but no one would open his mouth! I said, 'These two paragraphs nullify the whole philosophy of the Congress. The country had to pay the price of division as a result of its acceptance of separate electorates. You are asking it to drink the same poison again. This is a betrayal, forgetful of the last forty years of History.[221]

नेहरू ने वह वचन-पत्र मन्त्रिमण्डल के सम्मुख उपस्थित किया। मुझे विश्वास नहीं कि वह वचन-पत्र श्री वल्लभभाई को दिखाया गया होगा। इस वचन-पत्र की अन्तिम दो कण्डिकाओं में यह स्वीकार किया गया था कि भारत के सब राज्यों में मुसलमानों की जनसंख्या के अनुपात में, उनके लिए सेवाओं में और प्रतिनिधि संस्थानों में स्थान निश्चित कर दिए जाएँ। यही व्यवस्था केन्द्रीय सरकार के विषय में भी थी। वचन-पत्र की प्रतिलिपि प्रत्येक सदस्य को मिल गई थी, परन्तु कोई मुख नहीं खोलता था। मैंने कहा, 'इससे तो कांग्रेस की पूर्ण मीमांसा रद्द हो जाएगी। इसी बात का मूल्य ही तो हमने देश-विभाजन में दिया है। आप हमें पुनः यह विष पीने को कह रहे हैं। आप पिछले चालीस वर्ष के इतिहास को भूलकर उससे गद्दारी कर रहे हैं।'

श्री नेहरू कश्मीर के मामले में, विदेश नीति और पाकिस्तान के विषय में अपने मन की ही करना चाहते थे। इन विषयों में वे कभी किसी दूसरे से बात करना पसन्द नहीं करते थे।

श्री गाडगिल लिखते हैं कि स्वराज्य मिलने पर भारत अपने राजदूत विदेशों में भेजने लगा था। इन राजदूतों का निर्वाचन ठीक होता था और वे अपने काम के योग्य होते थे, नहीं कहा जा सकता। प्रारम्भिक काल में नेहरू जी मन्त्रिमण्डल में ऐसे लोगों के नाम ले दिया करते थे, परन्तु उनकी नियुक्ति की स्वीकृति नहीं माना करते थे।

...The Cabinet meeting was over and while we were dispersing, Nehru

एक बार मन्त्रिमण्डल की बैठक समाप्त हो चुकी थी और जब हम उठने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

mentioned that he had appointed Mirza Ismail to such and such a country. I asked whether it was a matter for discussion or information. This annoyed him. He resumed his seat and said that it was for discussion. I then gave him my opinion of the foreign appointments made upto that time and told him frankly that some of them were not proper from the standpoint of India's interest and honour. My five years experience in the Cabinet is that no one would say a word against Nehru. While Vallabhbhai was alive, he (Nehru) used to consult him. After that he consulted the Maulana occasionally. But the Maulana rarely contradicted him. Gopalswami said only what Nehru wanted him to say, others used to keep their own counsel. I was the only exception. I said that none of us approved of the appointment of Mirza, but no one would say so in his presence. Even after this no one opened his mouth, for or against. I was the only person who continued arguing.

....

....After this I began to know of the ambassadorial appointments only through the newspapers. The principal of Cabinet responsibility assumes the right of each Minister to hold and express one's opinion frankly before a decision is taken because each was responsible for every action taken by his colleagues.[222]

वाले थे तो नेहरू जी ने कहा कि उन्होंने मिर्ज़ा इस्माईल की नियुक्ति की है। मैंने पूछ लिया कि यह विषय विचार के लिए है अथवा केवल सूचना के लिए? इससे वे घबराए। वे पुनः अपने स्थान पर बैठ गए और बोले, 'इस पर विचार हो सकता है। तब मैंने अपनी सम्मति दे दी। विदेशों में भेजे जाने वाले लोगों के विषय में मैंने कहा कि उनमें से कई भारत की मान-मर्यादा अनुकूल नहीं हैं। मेरा पाँच वर्ष का मन्त्रिमण्डल का अनुभव है कि कोई भी सदस्य नेहरूजी के विरोध में नहीं कहता था। जब तक वल्लभभाई जीवित था, वह उससे राय कर लेता था। उसके उपरान्त वह मौलाना से कभी-कभी राय करता था। मौलाना उसकी बात कभी रद्द नहीं करता था। गोपालस्वामी तो सदा वही कहता था, जो नेहरू कहते थे। सिवाय मेरे अन्य सब मौन रहते थे। मैंने कहा कि हममें से कोई भी मिर्ज़ा की नियुक्ति पसन्द नहीं करता। परन्तु अन्य किसी ने कुछ नहीं कहा। नेहरू के सामने कोई बोलता ही नहीं था। केवल मैं ही युक्ति करता रहा....

इसके उपरान्त राजदूतों की नियुक्तियाँ मैं समाचार-पत्रों में ही पढ़ता था। मन्त्रिमण्डल की सांझी जिम्मेदारी का अर्थ यह है कि प्रत्येक सदस्य अपनी सम्मति रख सकता है और प्रकट कर सकता है। तदोपरान्त ही निर्णय लिया जाता। इस प्रकार सब सदस्य प्रत्येक निर्णय का उत्तरदायित्व ले सकते थे।

....मिर्जा की घटना के उपरान्त विदेश विभाग की रिपोर्ट का संक्षेप तीन महीने के उपरान्त आने लगा। इस कारण इस पर राय नहीं होती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ परिच्छेद

मृत्यु के कुछ पूर्व और उपरान्त

हिमाचल पर चीनी आक्रमण के समय तो देश में भारी बेचैनी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि जवाहरलाल जी की सरकार के पाँव तले से मिट्टी खिसक रही है। आक्रमण अकस्मात हुआ था। अकस्मात इस कारण कहा जा सकता है कि जवाहरलाल जी 1962 तक चीन.को अपना मित्र ही मानते थे। जो कुछ चीन ने तिब्बत अथवा लद्दाख में किया था, वह जवाहरलाल जी के विचार से किसी प्रकार भी भारत के विरोध अथवा अहित में नहीं था।

तिब्बत के विषय में तो जवाहरलाल जी ने यह कह दिया था कि वह चीन राज्य का एक अंग ही है। इस कारण चीन जो कुछ भी तिब्बत में करता है, चीन का घरेलू विषय है और उसमें कोई बाहरी राज्य हस्तक्षेप नहीं कर सकता।

लद्दाख में सड़क बना लेने और वहाँ की कुछ चौकियों पर अधिकार जमा लेने के विषय में श्री नेहरू जी का विचार था कि उस क्षेत्र में एक तिनका तक भी पैदा नहीं होता और वहाँ की सीमा अस्पष्ट है।

इससे उत्साहित होकर ही लद्दाख में चीनियों ने आक्रमण कर कई हिन्दुस्तानी सिपाही मार डाले थे। और फिर 1962 में नेफा के क्षेत्र में चीनी आगे बढ़ने लगे थे। भारतीय सेना बेखबर बैठी थी। इसके मस्तिष्क में नहेरू जी के तथा सुरक्षा मंत्री के, संसद में दिए वक्तव्य मीठी नींद उत्पन्न कर रहे थे।

एक दिन चीनी चुपचाप भारत की सीमा में कई स्थानों पर बढ़ आए। कुछ गोलियाँ अपने सैनिकों ने चलाईं, परन्तु चीनी न केवल संख्या में अधिक थे, अपितु शस्त्रास्त्र भी बढ़िया रखते थे। भारतीय सेना चीनियों को रोक नहीं सकी।

अब नेहरू साहब अमरीका, इंग्लैण्ड तथा रूस से सहायता माँगने लगे। असम खाली कर देने की पूरी सम्भावना थी।

अमरीका तथा इंग्लैण्ड ने हवाई जहाजों से शस्त्रास्त्र भेजने का और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका ने हवाई छतरी तान देने का प्रस्ताव कर दिया था।

यह भी कहा जाता है कि अमरीका का सातवाँ बेड़ा जो प्रशान्त महासागर में रहता था, हिन्द महासागर की ओर चल पड़ा था।

जवाहरलाल जी ने इन दोनों देशों से, उन सब शर्तों को मान कर जो इन्होंने लगाईं, शस्त्रास्त्र लिये और कई अन्य प्रकार के शस्त्रास्त्र मांगने आरम्भ कर दिए।

चीनी आक्रमण जैसे एकाएक आरम्भ हुआ था, वैसे ही एकाएक बन्द हो गया। कहते हैं कि अमरीका और इंग्लैण्ड से चीन लड़ना नहीं चाहता था। इस कारण उसने आक्रमण रोक लिया और कुछ पीछे भी हट गया। हमारा इसमें अनुमान यह है कि चीन भारत के कम्युनिस्टों से यह आशा लगा कर आगे बढ़ा था कि आक्रमण के समाचार से ही वे देश में एक आम हड़ताल (General strike) कराने में सफल हो जाएँगे और देश का सब प्रबन्ध ठप्प हो जाएगा। अतः अमरीका और इंग्लैण्ड की सहायता पहुँचने से पूर्व ही चीन भारत पर देश के कम्युनिस्टों द्वारा अधिकार प्राप्त कर लेगा।

यह कहा जाता है कि कम्युनिस्टों के हाई कमाण्ड ने आक्रमण होते ही अपनी बैठक बुलाई और आम हड़ताल की घोषणा करने पर विचार किया, परन्तु हाई कमाण्ड को विश्वास नहीं था कि वे हड़ताल करा सकेंगे। इस विषय में मतभेद था। यह भी कहा जाता है कि गुप्त रूप से भिन्न-भिन्न यूनियनों से राय भी ली गई थी। एक साधारण मज़दूर कम्युनिस्ट से भारतीय अधिक सिद्ध हुआ। देश में एक ऐसी लहर उठ खड़ी हुई जो देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत थी। इस कारण कम्युनिस्ट पार्टी आम हड़ताल नहीं करा सकी और चीन अपनी इस दिशा में आशा पूरी होती न देख वापस चला गया।

चीन के आक्रमण के रुकते ही नेहरू और उनके साथी पुनः अपनी पूर्व की विदेश नीति की सराहना करने लगे।

लोकसभा में विपक्षियों ने नेहरू सरकार पर अविश्वास का प्रस्ताव रखा तो देश के कम्युनिस्ट नेहरू जी के समर्थन के लिए एक विशाल जलूस लेकर संसद के बाहर जा पहुँचे। नेहरू जी इस जलूस के दृश्य को देखने बाहर आए। और कम्युनिस्ट नेता श्री डांगे के साथ हँस-हँस कर बातें करते रहे। संसद ने भी सुरक्षा मन्त्री की अकर्मण्यता और बड़बोलापन की तीव्र आलोचना की। इस आलोचना से विवश हो नेहरू जी को मन्त्री-मण्डल से मेनन को पृथक् करना पड़ा। कुछ सैनिक अधिकारी भी निकाले गए। इस कार्रवाई से नेहरू जी ने अपनी गद्दी बचा ली।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि नेहरू और मेनन दोनों चीनियों से पिट जाने में अपना दोष नहीं मानते थे, परन्तु इस वस्तुस्थिति से कोई इनकार नहीं कर सकता कि नेहरू जी चीन को अमरीका और ब्रिटेन पर उपमा देने के दोषी थे।

जब अमरीका के प्रधान श्री आइजनहावर और इंग्लैण्ड की महारानी नई दिल्ली में पधारी थीं तो नेहरू जी का व्यवहार उनसे सर्वथा भिन्न था, जो उन्होंने चाऊ-एन-लाई के आने के समय अपनाया था। इस पर भी चीन ने भारत पर आक्रमण किया था और अमरीका और इंग्लैण्ड ने भारत की सहायता की थी।

परन्तु नेहरू जी ने इस पर भी अपना व्यवहार चीनियों से बदला नहीं। ये निरन्तर चीन से सहयोग करने का यत्न करते रहे। यहाँ तक कि चीन को यू०एन०ओ० में बैठाने का प्रस्ताव 1962 के उपरान्त भी करते रहे। केवल यही नहीं, अमरीका और इंग्लैण्ड के प्रति भी श्री नेहरू जी का और उनके कारण भारत का व्यवहार मैत्रीपूर्ण नहीं हुआ।

नेहरू जी की सरकार अमरीका और इंग्लैण्ड से सैनिक और असैनिक सहायता माँगती तो थी, परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ में और जन-साधारण में वह सदा रूस और चीन से सहानुभूति प्रकट करती थी। नेहरू जी तटस्थ रहने का तथा किसी भी देश से सैनिक संधि न करने का निश्चय दोहराते रहे।

देश श्री नेहरू जी की अकृतज्ञता और मिथ्या नीति पर चकित था। यद्यपि देश का पूर्ण सरकारी तन्त्र और कांग्रेस का पूर्ण बल नेहरू जी पर आँच न आने देने के लिए जी-जान से यत्न कर रहा था, परन्तु नेहरू जी की सूझ-बूझ पर देशवासियों में संदेह बढ़ने लगा। ऐसा प्रतीत होता है कि नेहरू जी अपनी प्रतिष्ठा कम हो रही देखने लगे थे और उनके दिल को इससे भारी सदमा पहुँचा था।

नेहरू जी ने अनुभव किया था कि केन्द्रीय मन्त्री-मण्डल में भी उनकी नीतियों के आलोचक उत्पन्न हो गए हैं। इसी कारण 'कामराज प्लॉन' चलायी गई और अनिच्छित व्यक्तियों को मन्त्री-मण्डलों से निकाल दिया गया।

इस पर भी नेहरू जी को, मेनन को भी मन्त्री-मण्डल से निकालना पड़ा था। इसके अतिरिक्त उनके कुछ प्रिय साथियों और परिवार पर घोर अनैतिकता के लाञ्छन लगने लगे। उनकी रक्षा करने में सब प्रकार के अयुक्ति-संगत एवं अधर्म-युक्त उपाय वे प्रयोग करने लगे। परन्तु देश में आवाज तीव्र होती गई। परिणामस्वरूप पुनः कुछ लोग सरकारी यन्त्र से बाहर करने पड़े। श्री के०डी० मालवीय इनमें एक थे।

इन सब बातों का नेहरू जी के स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ा और दो वर्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की मानसिक वेदना में उनका देहावसान हो गया। उनके दु:ख का सबसे बड़ा कारण यह था कि चीनी आक्रमण से देश अन्तर्राष्ट्रीयता पर राष्ट्रीयता को उपमा देने लगा था। वे अपने जीवन का प्रिय कार्य विनष्ट होता देखने लगे थे। साथ ही सैनिक तैयारी करने पर वे विवश हो गए थे। इन्हीं बातों ने एक सुदृढ़ शरीर को जर-जर करके रख दिया।

पीछे श्री लालबहादुर शास्त्री प्रधान मन्त्री बने। श्री शास्त्री जी ने गद्दी संभालते ही घोषणा की कि वे नेहरू जी की नीतियों पर चलेंगे।

जनसाधारण, जिनके मस्तिष्क पर श्री नेहरू जी की प्रतिष्ठा अभी थी, शास्त्री जी की वाह वाह कर उठा।

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नेहरू जी की नीतियों पर पूर्ण रूप से कार्य नहीं किया जा सका। कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि श्री शास्त्री जी नेहरू जी की नीतियों का केवल मौखिक ही समर्थन करते थे परन्तु व्यवहार में वे उन नीतियों से विचलित होते चले जाते थे।

नेहरू जी की विदेश नीति तटस्थता की थी। तटस्थता (Non-alignment) का अर्थ नेहरू जी तो यह लेते प्रतीत होते थे कि उन्होंने भूमण्डल के किसी देश से सैनिक करार (Military Pact) नहीं करना। संकट के समय वे दूसरों से सहायता माँग लेंगे और दूसरों पर संकट आने के समय वे विचार कर लेंगे कि उन्होंने किसी की सहायता करनी है अथवा नहीं।

इस नीति पर 1962 में चीनी आक्रमण के समय पुनरवलोकन करने का अवसर आया, परन्तु अमरीका और अंग्रेज़ी सहायता सुगमता से मिल जाने के कारण और चीनी आक्रमण के टल जाने पर नेहरू और उनकी उत्तराधिकारी शास्त्री-सरकार को यह समझ आया कि सहायता और चीनी आक्रमण का टल जाना उनकी तटस्थता की नीति के कारण ही हुआ है। कैसे हुआ है ? यह तो समझ में आया नहीं, परन्तु तटस्थ रहने की घोषणा यदि अधिक उच्च-स्वर से नहीं तो भी वैसे ही की जाती रही, जैसे पहले थी।

हाँ, जवाहरलाल जी ऐफ्रो-एशियाई राज्यों का एक संगठन बनाने में सफल हो गए। इस संगठन में बहुत से मुसलमानी राज्य भी सम्मिलित होने स्वाभाविक थे। इस्लाम का पूरा बल एशिया और अफ्रीका में ही है। इस संगठन में एक तीसरी बात नकारात्मक थी कि यह संगठन संधि नहीं थी वरन् एक मंच था। इस मंच पर राज्यों के प्रतिनिधि एकत्रित होकर बातें बनाने में स्वतन्त्र थे। काम करने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह संगठन न तो रूस पर और न ही अमरीका इत्यादि स्वतन्त्र देशों पर किसी प्रकार का प्रभाव डाल सका। साथ ही यह संगठन जब तक चीन की प्रशंसा और समर्थन करता रहा, तब तक चलता रहा, परन्तु सन् 1964 में एक अन्य बात हो गई। अलजीरिया में इसका सम्मेलन होने वाला था। कुछ राज्यों ने यह प्रस्ताव कर दिया कि रूस को भी इसमें आने का निमन्त्रण दिया जाए। इस प्रस्ताव का चीन ने विरोध किया। बहुमत रूस को सम्मिलित करने के पक्ष में था। इस पर चीन तथा कुछ एक प्रस्ताव के विरोधी सदस्य राज्यों ने सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। इन पर सम्मेलन की कार्यकारिणी ने सम्मेलन को ही स्थगित कर दिया।

इसका अर्थ यह है कि यह संगठन कुछ राज्यों की एक सभा मात्र थी, जिसमें कुछ भी करने को नहीं था। और सम्मेलन चीन के अधीन था। चीन ने इसमें सम्मिलित होने से इन्कार किया तो सम्मेलन ही समाप्त हो गया।

अर्थात् जवाहरलाल जी ने यह संगठन बनाया तो था परन्तु इसमें कोई बाँधने वाली शक्ति नहीं थी। यदि कुछ था तो चीन के समर्थन के अतिरिक्त कुछ नहीं था।

भू-मण्डल के राज्यों की स्थिति यह है कि इसमें सबसे पहिले-दर्जा के राज्य हैं अमरीका और रूस। इनकी सैनिक शक्ति बहुत ही प्रबल दिखाई देती है। इन दोनों के चारों ओर अन्य राज्य एकत्रित हो रहे हैं। जब भी कोई विवादास्पद विषय भू-मण्डल के राज्यों के सामने उपस्थित होता है, तब ही सब रूस और अमरीका का मुख देखने लग जाते हैं। प्रायः ये दो देश ही अन्य देशों का नेतृत्व करते हैं। जब तक ये दोनों देश किसी बात पर सहमत नहीं हो जाते तब तक भू-मण्डल के राज्य इनका मुख देखते रहते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ में अमरीका और इंग्लैण्ड के पक्ष का बहुमत है। रूस का अल्प मत है, परन्तु रूस को निषेधात्मक मत (Veto) का अधिकार प्राप्त होने के कारण वह जब-जब भी अपने हितों की हानि होती देखता है, तब-तब ही इस अधिकार का प्रयोग करता है।

भारत, अमरीका और इंग्लैण्ड का प्रभुत्व पसन्द नहीं करता। इस कारण सदा अमरीका और इंग्लैण्ड को बदनाम करने में यत्नशील रहा था। नेहरू जी के काल में भी और पीछे शास्त्री जी के काल में भी। वियतनाम के विषय में शास्त्री जी ने जितना अमरीका का विरोध किया था उतना किसी अन्य देश ने नहीं किया।

राष्ट्र-मण्डल के प्रधान-मन्त्रियों की 1965 की बैठक में अमरीका और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीत-कांग में सुलह कराने के लिए एक आयोग की नियुक्ति में भी शास्त्री जी ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया था। और यह आयोग जब चीन और वीत-कांग को बातचीत पर राजी नहीं कर सका, तब भी शास्त्री जी अमरीका के सैनिक कार्य की निन्दा करते रहे।

भला इसमें भारत की क्या रुचि थी? कोई कह नहीं सकता। इस मिथ्या नीति का परिणाम ही हुआ है कि अमरीका और इंग्लैण्ड भारत-पाकिस्तान संघर्ष में न केवल तटस्थ रहे थे, वरन् पाकिस्तान के दोषों पर आँखें मूँद बैठे रहे।

इस पर विवश होकर भारत को रूस की गोदी में जा बैठना पड़ा। परन्तु कांग्रेसी सरकार जवाहरलाल जी के पदचिह्नों पर चलती हुई रूस से भी सैनिक संधि किए बिना सहायता लेने का यत्न करती रही।

रूस यह देगा अथवा नहीं, कहना तो रूस की नीति पर विवेचना हो जाएगी। जहाँ तक भारत की विदेश नीति का संबंध है श्री शास्त्री की सरकार यह समझ रही थी कि तटस्थ रहकर वे विदेशों से सहायता प्राप्त कर सकेंगे।

हम समझते हैं कि नेहरू जी की तटस्थता नीति असफल हो चुकी थी। तटस्थता की नीति वे देश ही चल सकते हैं जो शक्तिशाली देशों की पंक्ति में बैठने की सामर्थ्य रखते हों। भारत रूस और अमरीका के समान शक्तिशाली नहीं है। यह दूसरे देशों के साथ मिलकर भी इन देशों के समान शक्तिशाली नहीं बन सका। इसने समझा था कि ऐफ्रो-एशिया संगठन में सम्मिलित होकर वह रूस एवं अमरीका इत्यादि की सहायता के बिना मानपूर्वक रह सकेगा। परन्तु यह संगठन तो निरर्थक सिद्ध हुआ है।

इस (ऐफ्रो-एशिया) संगठन में दोष यह था कि इसमें सब छोटे-छोटे देश थे। दो बड़े देश थे, चीन और भारत। ये दोनों मिलकर भी रूस अथवा अमरीका जितनी शक्ति नहीं रखते और ये परस्पर शत्रु भी थे।

इस संगठन में एक बहुत बड़ा दोष यह भी था कि इसमें बहुत से देश इस्लामी राज्य थे। भारत का झगड़ा पाकिस्तान के साथ पाकिस्तान के आरंभ काल से ही था। और यह तब तक रहेगा जब तक इस्लामी मानसिक अवस्था पाकिस्तान से निकल नहीं जाती। इस झगड़े में भी यह संगठन भारत की सहायता नहीं कर सकता था। वह संगठन एक मुसलमानी राज्य का विरोध नहीं कर सका। अभिप्राय यह कि भारत की सामर्थ्य को ऐफ्रो-एशियन संगठन वृद्धि करने वाला सिद्ध नहीं हो सका। यह तो दुर्बलता का लक्षण बन गया था।

नेहरू जी की एक अन्य नीति थी जो उन्होंने गांधी जी की अहिंसा से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीखी थी। यह थी मित्र और सहविचारों की अवहेलना और विरोधी की जी-हुजूरी करना। गांधी जी और जवाहरलाल जी देश में हिन्दुओं की अवहेलना करते रहे और मुसलमानों की, जो स्वराज्य प्राप्ति में बाधक थे, खुशामद करते रहे थे। स्वराज्य काल में यही नीति जवाहरलाल जी चलाते रहे। भारत को सहायता प्रजातंत्रात्मक देशों से मिलती थी और उनसे सहचारिता भी थी। परन्तु नेहरू जी इन देशों को जली-कटी सुनाते रहे और रूस तथा चीन के गुणानुवाद गाते रहे।

कहने का अभिप्राय यह है कि यह मित्रों को गालियाँ और शत्रुओं से मीठी-मीठी बातें करने का फल हम भोगते रहे हैं।

लाल बहादुर शास्त्री जी की सरकार ने एक बात में नेहरू जी की नीति में बदल किया प्रतीत होता था। वह बदल था देश में सैनिक शक्ति को उन्नत करना और राष्ट्रीयता को देश की नीति की आधारशिला मानना।

परन्तु कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि नेहरू जी भारत सरकार में इतना कुछ कूड़ा करकट भर गए कि कोई बुद्धिशील व्यक्ति नेहरू जी की नीतियों को छोड़ बुद्धि का प्रयोग कर ही नहीं सकता था।

नेहरू जी देश के लिए अपने पीछे क्या छोड़ गए हैं, तनिक उसका भी चिन्तन करना चाहिए।

1. कश्मीर की समस्या सर्वथा श्री नेहरू जी की उत्पन्न की हुई है।

2. देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों को पृथक्-पृथक् राज्य बनाने में जवाहरलाल नेहरू उत्तरदायी थे। यह पृथकता का भूत श्री नेहरू के मस्तिष्क में रूस की राज्य प्रणाली देखकर उत्पन्न हुआ था। रूस में लेनिन और स्टालिन जैसे तानाशाहों ने रूस के भिन्न-भिन्न राज्यों को एक साथ रखा हुआ था। परन्तु नेहरू जी स्वयं तो बहुत ही नरम स्वभाव के थे। इसके अतिरिक्त विचारों पर वह प्रतिबन्ध भारत में नहीं था जो रूस में था। संयुक्त राज्य प्रणाली जैसे रूस में नहीं चली थी, वैसी भारत में नहीं चल सकी है।

नेहरू जी के जीवन काल में तो भारत के भिन्न-भिन्न राज्यों में पृथकता बढ़ रही थी। चीन और पाकिस्तान से युद्ध के भय ने इस पृथकता की भावना को एक सीमा तक दबा कर रखा हुआ है, परन्तु यह भय दूर होते ही यह पृथकता की भावना फूटेगी। यह फैडरल स्टेट का स्वाभाविक परिणाम है। वैसे भाषाई और आर्थिक ऐक्य तो हो सकता ही नहीं। इस राज्यप्रणाली का प्रभाव, किसी बाहरी आक्रमण आशंका से दबा तो रह सकता है, परन्तु इसमें फूट का बीज विद्यमान है। आसानी से यह अब निःशेष नहीं हो सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

3. उद्योग सम्बन्धी योजनाएं नेहरू जी ने कम्यूनिस्टों के हाथ में दे रखी थीं। कम्युनिस्ट बड़े-बड़े उद्योगों में विश्वास रखते हैं। यही बात योजनाओं के संचालकों ने ठीक समझी। इन भारी योजनाओं को एकदम जारी करने के लिए पूँजी निर्माण हो नहीं सकी। इन कारण अपार धन ऋण और दान के रूप में दूसरे देशों से लेना पड़ा है और उससे भी काम चलता न देख व्यक्तियों का संचित धन छीनना पड़ा।

समाजवाद का अर्थ और उसको देश में चलाने का प्रयोजन ही यह है कि सरकार के पास भारी (heavy) उद्योगों के लिए पूँजी एकत्रित हो सके। इसका परिणाम यह हुआ कि धन उन लोगों के पास एकत्रित हो गया, जो कानून भंग कर चोरी-चोरी रुपया एकत्रित कर रहे थे। ईमानदार लोग अपने पास धन रख नहीं सके। वे न तो अपनी उन्नति कर सके हैं और न ही देश को ऋण दे सकते थे। सरकार उनसे बचत का सब रुपया टैक्सों इत्यादि के रूप में लेती रही। इस समय देश में निर्धन से निर्धन व्यक्ति भी टैक्स देता है और देश की कोई वस्तु ऐसी नहीं, जो सरकारी टैक्स से बचे। उस समय यह अनुमान लगाया जाता था कि वस्तु के भूमि से उत्पन्न होने से लेकर, वस्तु के सब प्रकार के प्रयोग हो चुकने तक, एक रुपये में पचानवे पैसे सरकार के कोष में जाते थे। जो लोग कानून का पालन करते थे वे पाँच पैसे मूल्य की वस्तु के लिए सौ पैसे भर का परिश्रम करते थे। यही कारण है कि प्रत्येक चतुर व्यक्ति करों की अवहेलना करना चाहता था। जो चतुराई नहीं कर सकते वे ही टैक्स देते थे।

कारण है समाजवाद (socialism) के ढंग पर उद्योग-धन्धों को चलाना। एक ओर तो भारी उद्योग चलाए जाते हैं ओर दूसरी और वे सरकारी क्षेत्र में चलाए जा रहे हैं। सरकारी क्षेत्रों में चलाने से उत्पादन प्रबन्ध की शिथिलता तथा कार्य-पटुता में न्यूनता के कारण प्राय: कारखाने हानि पर जा रहे हैं। और जो कुछ लाभ देते हैं, यह नगण्य ही हैं।

वास्तव में भारी उद्योगों को चलाने का अवसर तब आता है जो छोटे-छोटे उद्योगों से पूँजी एकत्रित हो जाती है। सब दुकानदार, उद्योगपति और व्यापारी जानते हैं कि प्राय: व्यापार और उद्योग छोटे से बड़े किए जाते हैं। उद्योग में से ही पूँजी निकलती है। सरकारी उद्योग क्षेत्र ऐसा नहीं कर सके।

आज भी सरकार देश का कच्चा माल बेच-बेच कर विदेशीय मुद्रा अर्जित करने का यत्न कर रही है। कारण यह कि ऋण के लिए धन पर ब्याज इतना अधिक हो रहा है कि वह देना कठिन हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्री सरकार के कुछ लोग इन योजनाओं में दोषों को समझ गए थे, परन्तु इन योजनाओं को बीच में छोड़ने से देश की अपार हानि का भय था। साथ ही सरकार में हमारा अभिप्राय है मन्त्रीमण्डल में तथा योजना आयोग में कहे जाने वाले समाजवादी (परन्तु वास्तव में कम्युनिस्ट) भरे पड़े थे और वे योजनाओं के सुधार में बाधाएँ खड़ी करते रहते थे।

यह सब विपदा श्री जवाहरलाल जी की खड़ी की हुई थी। उनकी नीतियाँ अस्वाभाविक और हानिकर थीं।

4. भाषा के विषय में हम लिख चुके हैं कि मरने से पूर्व जवाहरलाल जी भाषा विधेयक में ऐसा परिवर्तन कर गए थे कि कानून संविधान का विरोधी हो गया है। उस भाषा विधेयक से उत्साहित हो अब अंग्रेजी-दां पुनः संविधान का मलिया मेट कर रहे हैं।

जवाहरलाल की नीतियाँ घातक सिद्ध हो रही हैं। अब तक सब के सब विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी अथवा क्षेत्रीय भाषाएँ हो जानी चाहिए थीं। हुआ यह कि विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक यह कहने में भी लज्जा अनुभव नहीं करते कि वे भारतीय भाषाओं में अपने विचार व्यक्त नहीं कर सकते। यह दोष उन प्राध्यापकों का नहीं, वरन् सरकार का और उसमें भी नेहरू जी का है जिन्होंने प्राध्यापकों के मन में यह बैठने ही नहीं दिया कि उनको देसी भाषाओं में पढ़ना अथवा पढ़ाना है।

नेहरू जी शिक्षा मन्त्री मुसलमान बनाते रहे हैं और मुसलमान मन्त्री भाषा के विषय में कुछ न जानते हुए पूर्ण देश को अहिन्दू, अभारतीय और अनीश्वरवादी बनाने में रुचि रखते थे।

अंग्रेजी भाषा के पढ़ने की कठिनाई को सहन करते हुए भी यह पढ़ी जा सकती थी, परन्तु इस भाषा में उपलब्ध साहित्य और ज्ञान से, पूर्ण भारतीय समाज पतित होती चली जाती है।

5. चरित्रहीनता जातीय गुण बन रहा है। नेहरू जी प्रधान मन्त्री पद को चरित्रहीन पुरुष और स्त्रियों के लाभ में प्रयोग करते हुए संकोच नहीं करते रहे। कहीं-कहीं तो चरित्रहीनता उन्नति के लिए सर्टिफिकेट बन गया है। चरित्र हीनता का श्रीगणेश निर्वाचनों में विजय की लालसा ने आरम्भ किया था। यूँ तो इसका बीज योरोपियन शिक्षा-दीक्षा में है। नेहरू जी यह पसन्द नहीं करते थे कि कोई विद्यार्थी अपने अध्यापकों को अपने साथियों की अनैतिकता बताए। श्री शास्त्री जी ने अपने एक व्याख्यान में विद्यार्थियों को यह राय दी थी कि जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके साथी अनुशासन भंग करें तो वे अध्यापकों को बता दें। नेहरू जी ने इस सीख के लिए श्रीनिवास शास्त्री जी की निन्दा की थी। राजनीति में भी नेहरू जी अपने साथियों की त्रुटियों को न केवल छुपाते रहे हैं, वरन अपने कामों में उनकी पीठ ठोंकते रहे हैं।

यहाँ तक कि मित्रों की रक्षा में सर्वोच्च न्यायालयों की भर्त्सना करने में भी वे संकोच नहीं करते थे। उस समय यदि देश में कहीं भलमनसाहत और धर्माचरण अथवा न्यायाचरण रह गया था तो वह देश की प्राचीन संस्कृति एवं परम्परा के कारण ही था अन्यथा नेहरू राज्य के 17 वर्षों ने तो धर्म और न्याय को जड़ों से उखाड़ फेंकने में कसर नहीं छोड़ी।

स्वराज्य काल के आरम्भ से ही नेहरू जी के मित्र और साथी सब प्रकार की उच्छृंखलता करते रहे थे। ब्राजील में एक राजदूत तुर्की का गेहूं खरीदने लग गए थे। दूसरे लंदन में जीपों का घुटाला करते पकड़े गए। एक अन्य 'प्री फैब्रिकेटिड हाउसिज़' के कारखाने में घुटाला कर बैठे। किसी की बीवी सहस्रों रुपयों का सामान लेकर दाम दे नहीं सकी और कोई राजदूत अपने बच्चों की गवर्नेस पर बलात्कार करने के आरोप में फँस गया। कहीं निर्वाचनों में शराब पिलाई जाने लगी तो कहीं घूस देकर वोट प्राप्त किए जाने लगे। मत पेटिकाएँ टूटती देखी गईं और निर्वाचन में खर्च पर प्रतिबन्ध होने पर भी बीस-बीस लाख व्यय होने लगा।

कहीं मुख्यमन्त्री पाँच वर्ष में करोड़पति बन गये और कहीं मंत्रियों की बीवियाँ हीरक जड़ित हार भेंट में लेने लगीं। कभी कोई रक्षाबंधन के पचास-पचास हजार भेंट लेने लगीं और कहीं उद्योगपति उद्योग में अनियमित सहायता पाने के लिए चुनावों-फंड में धन देने लगे।

इस पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये सब कुछ जवाहरलाल जी की नाक के नीचे होता रहा और वे यथाशक्ति इनमें उन सब को बचाते रहे जो उनके मित्र अथवा भक्त थे। जब किसी ने जवाहरलाल जी की निन्दा की और वह मित्र नहीं हुआ तो उसके दोष ढूँढ-ढूँढ कर निकाले गए।

यह सब कुछ नेहरू जी की मृत्यु के उपरान्त न लिखा जाता यदि कांग्रेस द्वारा, अपनी मूर्खता और अकर्मण्यता छुपाने के लिए देश की भावी संतति—निर्दोष बच्चों की—नेहरू जी की मिथ्या प्रशंसा के पुल बाँध उनको मिथ्या पथ गामी बनाने का यत्न न किया जाता।

ओ३म्! शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक का उपसंहार

महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू अब संसार में नहीं हैं परन्तु भारत में उनके गुण-दोषों की चर्चा तथा अनुकरण होता है। भारत में अभी भी ऐसे लोग हैं जो यह समझते हैं कि उनके पद चिह्नों पर चलते हुए देश और जाति का कल्याण हो सकता है। जो भी देश में विघटनात्मक कार्य करना चाहते हैं, वे महात्मा गांधी और जवाहरलाल जी के कर्मों और वक्तव्यों की आड़ लेकर, देश को हानि पहुँचाने में यत्नशील हो जाते हैं।

यदि कम्युनिज़्म के प्रचार की आवश्यकता पड़ती है तो जवाहरलाल जी के ग्रन्थों का हवाला दे दिया जाता है। यदि ईश्वर, वेद, शास्त्रों की हँसी उड़ाने की इच्छा होती है तो उनका उदाहरण उपस्थित कर दिया जाता है। अंग्रेज़ी का पक्ष अथवा हिन्दी का विरोध करना होता है तो जवाहरलाल जी के वचन और नीतियों का उल्लेख होने लगता है।

जवाहरलाल जी को गांधी जी का आशीर्वाद प्राप्त था और उनके कार्यों पर गांधी जी की मुहर लगी हुई थी। अभी भी भारत में लड़ते-झगड़ते हुए राजनीतिक अखाड़े के पहलवान बजरंग बली अथवा रुस्तम की भान्ति महात्मा गांधी और जवाहरलाल जी का नाम लेकर मैदान में उतरते हैं। कांग्रेस में से निकले अथवा निकाले गए लोग वर्तमान कांग्रेस की निन्दा करते समय गांधी और जवाहरलाल की सौगन्ध खाकर अपना रोष प्रकट करते हैं।

यह हम जानते हैं कि भारत सरकार में और कांग्रेस में भी, आज गांधी जी तथा जवाहरलाल जी की वह प्रतिष्ठा नहीं रही जितनी कि आज से आठ-दस वर्ष पूर्व थी। परन्तु जनता में उनके नाम की महिमा होने से, आज भी सफेद टोपी-धारी अपना उल्लू सीधा करने के लिए इन दो महानुभावों के नाम से लाभ उठाने का यत्न करते रहते हैं।

अतः जन-जन के मन पर गांधी जी और जवाहरलाल जी के विषय में ठीक-ठीक चित्र बनाने के लिए हमने यह छोटा-सा प्रयास किया है। इस पुस्तक में चर्चित प्रत्येक विषय पर, अन्य विख्यात लेखकों के लेखों में से तथा महात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी और नेहरू जी के अपने लेखों से उद्धरण देकर ही, हमने अपनी विवेचना की पुष्टि की है।

इस स्थान पर उन लेखकों के विषय में दो शब्द लिख देना उचित है। जैसे हम जवाहरलाल जी और महात्मा जी के प्रत्येक काम की निन्दा नहीं करते और उनकी प्रत्येक नीति को अस्वीकार नहीं करते, वैसे ही हम इन लेखकों के प्रत्येक वाक्य और उनके अपने प्रत्येक व्यवहार की प्रशंसा नहीं कर सकते।

हमारा उद्देश्य केवल मात्र उन राजनीतिक गतिविधियों पर महात्मा जी और नेहरू जी के प्रभाव के विषय में लिखना है, जिनसे देश और जाति को अपार हानि हुई है और हो रही है। इन महानुभावों के कुछ गौण कार्य और गुण भी हैं, परन्तु वे सार्वजनिक रूप में प्रभावहीन होने से उल्लेखनीय नहीं हैं।

गुण-दोष तो सब मनुष्यों में न्यूनाधिक रहते हैं। महात्मा जी और जवाहरलाल जी के जीवन चरित्र लिखने वालों ने इनके गुणों का जी भर कर उल्लेख किया है। हमें उनसे किसी प्रकार का रोष नहीं, परन्तु जहाँ वे अवगुण को गुण बताकर पाठकों और जनता के गले उतारने का यत्न करते हैं, वहाँ हमारा उनसे विरोध है।

उदाहरण के लिए गांधी जी की सर्वत्र और सर्वदा अहिंसा की नीति थी। हम समझते हैं कि इसने भारतवर्ष के इतिहास पर एक गहरी छाप छोड़ी है और वह छाप अशोभनीय है। इस अहिंसा की नीति का ही परिणाम है कि देश, धर्म और जाति के शत्रुओं को अवसर मिला है कि वे देश को अधिक से अधिक हानि पहुँचा सकें।

समझने-समझाने की नीति ठीक है, परन्तु जब समझने-समझाने से कार्य न चले तो फिर परस्पर सहयोग और एक-दूसरे की प्रशंसा के पुल बाँधना अनर्थकारी प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं।

उदाहरण के रूप में जब मिस्टर जिन्ना से मतैक्य नहीं हो सका तो क्या यह ठीक नहीं था कि राष्ट्रीय विचार के अन्य मुसलमानों से सम्बन्ध बनाया जाता? यदि ऐसा यत्न करने पर भी, एक भी मुसलमान राष्ट्रवादी न मिलता तो बिना मुसलमानों के राष्ट्रीय संगठन तैयार किया जाना क्या उचित नहीं था?

इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि जब पाकिस्तान ने अपने वचन पूरे नहीं किए तो क्या यह उपयुक्त नहीं था कि उसकी घोर निन्दा कर, उसको संसार भर में बदनाम किया जाता? क्या यह ठीक था कि पाकिस्तान द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचारों को छिपाने के लिए भारत सरकार की ओर से यत्न किया जाए?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि यह सत्य है कि चीन ने भारत को धोखा दिया है तो क्या चीन के शत्रुओं से सन्धि अथवा मित्रता करनी ठीक नहीं? चीन की विचारधारा के कम्युनिस्टों के लिए क्या भारत की समाज में कोई स्थान हो सकता है?

प्रश्न किया जाता है कि इनका क्या किया जाए? यह प्रश्न गम्भीर अवश्य है, परन्तु यह निर्विवाद है कि यह उनको मित्र नहीं माना जा सकता।

क्या यह सत्य नहीं कि अरब गणराज्य ने स्वेज़ नहर को इज़रायलियों के साथ झगड़े का विषय बनाकर भारत और सब पूर्वी देशों की अपार हानि पहुँचाई है। तब अरब वालों को मित्र मान और उसके शत्रु इज़राइल को शत्रु मान लेना मूर्खता नहीं है क्या?

इसी प्रकार गांधीवाद और नेहरूवाद के असंख्य हानिकारक और दूषित उदाहरणों का उल्लेख किया जा सकता है। हमने कुछएक ही लिखे हैं और उनको सिद्ध करने का यत्न किया है।

कुछ ऐसे कर्म जो इन द्वारा किए गए और जिनके प्रभाव अति हानिकर सिद्ध हुए हैं, हम इस स्थान पर गिना देना चाहते हैं।

(1) सत्याग्रह अर्थात् कथित अधिकार के लिए अपने को हानि पहुँचाकर कथित आततायी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना। इसमें हमारा मत है कि यह ढंग ठीक नहीं। इससे कथित आततायी विवश तो हो सकता है, परन्तु वह इस प्रकार अपनी भूल नहीं समझ सकता। सत्याग्रह कभी भले, सद्गुणों से युक्त और सात्त्विक प्रवृत्ति वाले पुरुषों के मन में दया भाव उत्पन्न कर कार्य सिद्ध करा सकता है, परन्तु रजोगुण और तमोगुण वाले व्यक्ति के मन में यह दया भी उत्पन्न नहीं कर सकता। साथ ही दया उत्पन्न कर कोई कार्य करा लेना कार्य सिद्ध करने वाले की मानसिक आत्मिक स्थिति को घातक हानि पहुँचाने वाला होता है। राजसी और तामसी प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के लक्षण भगवद्गीता में पढ़ लेने चाहिएँ और यह सिद्ध करना गांधीवादियों का काम है कि कहाँ पर वैसी प्रवृत्ति वालों में सत्याग्रह सफल हुआ है।

बहुत-सी काल्पनिक कहानियाँ बौद्ध और जैन पंथियों ने प्रचारित कर रखी है जिनमें नर-मांसभक्षी सिंह अथवा डंक मारने का स्वभाव रखने वाले बिच्छू महात्माओं से प्रेम करते दिखाए गए हैं। यदि उन काल्पनिक कहानियों को युक्तियुक्त और सत्य मान भी लिया जाए, तब भी वे व्यक्तिगत उपलब्धि ही मानी जा सकती हैं। किसी समाज अथवा जन-समूह में वह बात न तो सम्भव है और न ही फलदायक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा जी के सत्याग्रह तब तक सफल नहीं हुए, जब तक उनके उपरान्त हिंसा का प्रदर्शन नहीं हुआ। सबसे अधिक हिंसा का प्रदर्शन सन् 1942 में हुआ। साथ ही सत् 1942 के आन्दोलन ने तथा भूमण्डल में घटी अन्य घटनाओं ने हिन्दुस्तान में हिंसा की प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी थी। तभी सन् 1947 में स्वराज्य प्राप्त हो सका। कदाचित् वह हिंसा भी सफल न होती, यदि भूमण्डल की अन्य परिस्थितियाँ अनुकूल न हो जातीं।

सबसे बड़ी बात यह है कि यदि अंग्रेज़ जाति की आर्थिक अवस्था, मानव शक्ति और मानसिक तनाव बिगड़ न जाता तो स्वराज्य नहीं मिलता। ये तीनों बातें द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप हुई थीं।

नेहरू सरकार से किसी भले कार्य के लिए किया हुआ सत्याग्रह एक बार भी सफल नहीं हुआ केवल कर्मचारियों की हड़तालें, यदि उन्हें सत्याग्रह कहा जाए तो कुछ सीमा तक सफल हुई हैं। हमारा विचार है कि जवाहरलाल जी में कम्युनिज़्म, इन हड़तालों को सफल बनाने में कृत संकल्प हुआ है। साथ ही कर्मचारियों की हड़तालें कभी भी अहिंसात्मक नहीं रहीं। इतिहास और अनुभव यही बताता है कि सत्याग्रह और हड़तालें व्यर्थ हैं। इनसे स्थायी लाभ और मानव-कल्याण की कभी भी आशा नहीं की जा सकती।

(2) शत्रु के मन को जीतने के लिए उसका विरोध न करना, यह गांधी जी का दूसरा सिद्धान्त और व्यवहार रहा है। शत्रुता और विरोध दोनों में अन्तर है। शत्रु के साथ शत्रुता का व्यवहार ही उपयुक्त है। केवल भले स्वभाव तथा सात्त्विक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति को ही मनमानी करने देना अर्थात् उसका विरोध करना उसे सन्मार्ग दिखाने में सहायक हो सकता है। भले चरित्र और स्वभाव के व्यक्ति में श्रेष्ठ बुद्धि ही उसे व्यर्थ विरोध करने से रोक सकती है। जिनमें सद्बुद्धि ही नहीं, उनके सामने आप कुछ भी कहें अथवा करें उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। इतिहास इस बात का साक्षी है। प्राचीन इतिहास की बात छोड़ भी दें, तब भी इतिहास में हिटलर, मुसोलिनी, लेनिन, स्टालिन तो हमारे समक्ष ही हैं।

प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि भले और बुरे में अर्थात् स्वभाव से दुष्ट और नेक में पहचान कैसे की जाए? इसमें परीक्षा की आवश्यकता है। परन्तु परीक्षा का अर्थ यह नहीं कि पूर्व में प्राप्त अनुभवों और इतिहास की अवहेलना की जाए। एक बार पता चल जाए कि अमुक व्यक्ति प्रवृत्ति से दुष्ट है, तब उसके साथ वेद भगवान के कथनानुसर व्यवहार करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्युष्ट रक्षाः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्त रक्षो निष्टप्ता अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि।[223]

दुष्ट की भली-भाँति परीक्षा कर ली जाए। परीक्षा के उपरान्त उसे खूब सन्तप्त किया जाए। परद्रव्यापहारी व्यक्ति तथा निर्दयी शत्रु भी सन्तप्त हों। महान्त अन्तरिक्ष भी हमारे वश में रहे।

(3) समाज, समान आचरण रखने वाले लोगों के समुदाय का नाम है। एक भूमि, देश, नगर, गाँव अथवा मुहल्ले में पैदा होने मात्र से न तो समाज बनती है और न ही कोई राष्ट्रीयता, नागरिकता, पारिवारिकता अथवा पड़ोसीपन बनता है। गांधी जी ने इस सच्चाई को नहीं समझा। अपने होते हुए जो अपने बनकर, रहने की इच्छा न रखते हों, जिनके विचार, जीवन सिद्धान्त और आचरण अपने से भिन्न हों, वे अपने नहीं पराए होते हैं।

परायों को अपना बनाया जाए अथवा नहीं? अवश्य बनाया जाए, परन्तु उसका ढंग विरोधी के व्यवहार को सहन करने से नहीं, वरंच न सहन करने से और समझाने से हैं। न सहन करने में वे सब कार्य आते हैं जो मौन रहने से लेकर दूसरे को मूल-चूल नष्ट कर देने तक गिनाए जा सकते हैं। भगवान् कृष्ण ने युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा कि दुर्योधन लोभी है। उसने मित्र बना लिये हैं और उनसे स्नेह भी उत्पन्न कर लिया है। वह विशेष शक्ति संचय कर चुका है। अतः वह आपसे सन्धि नहीं करेगा। जब तक उसके साथ नर्मी का व्यवहार चलाएँगे, तब तक वह आपके राज्य के अपहरण की ही चेष्टा करेगा।[224]

उक्त उद्धरण में दुर्योधन के स्थान पर पाकिस्तान और युधिष्ठिर के स्थान पर भारत सरकार लिख दें तो पाँच सहस्त्र वर्ष पहले कही बात आज की बात बन जाती है।

श्री कृष्ण आगे कहते हैं—

शत्रुमर्दन नरेश! यह मत समझो कि धृतराष्ट्र के पुत्र आप पर कृपा कर अथवा आपको दीन दुर्बल मान, दया कर अथवा धर्म तथा अर्थ की दृष्टि से, आपका मनोरथ पूर्ण कर देंगे। कौरवों का आपसे सन्धि न करने का सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि उन्होंने आपको भारी क्षति पहुँचाकर वनवास में भेज दिया था और फिर पश्चात्ताप नहीं किया था।[225]

इस उद्धरण में धृतराष्ट्र पुत्रों के स्थान पाकिस्तान लिख दें और क्षति पहुँचाने के स्थान सन् 1946-47 का डायरेक्ट ऐक्शन लिखकर देख लें कि कृष्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के वाक्य आज की परिस्थिति में सत्य सिद्ध हो रहे हैं अथवा नहीं।

इसके उपरान्त श्री कृष्ण कहते हैं—कुलीन लोगों की निन्दा से तो उनका वध कर देना ही ठीक है। निन्दा तो दुर्योधन की हो चुकी। इसका उस निर्लज्ज पर कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। अब तो उसकी हत्या कर देनी ठीक है। अतः महाराज, आप दुविधा में न पड़ें। इस पापी का नाश ही कर देना ठीक है।[226]

यह है इतिहास का पाठ। गांधी जी ने इसकी अवज्ञा कर पूर्ण देश को उल्टे मार्ग पर ले चलने का यत्न किया और उनके चेले-चाटे अभी भी इसी बात की कूक लगा रहे हैं।

हमारा कहना है कि भले लोगों का संगठन सुदृढ़ हो और भले लोग मन, बुद्धि और शरीर से शत्रु को परास्त करने में सबल हों।

(4) सदा और सर्वत्र विद्वान आदमियों की सम्मति सर्वोपरि हो। यही सुख और शान्ति का मार्ग है। नेहरू जी के राज्य में कितनी कमीशनें, समितियाँ और कमेटियाँ नियुक्त हुई हैं परन्तु नेहरू जी ने उन सब समितियों की सम्मति को रद्द किया है।

स्वराज्य काल में धार कमेटी, जे.वी.पी. कमेटी, स्टेट रि-ऑरगैनिजेशन कमेटी, आयुर्वेद के विषय में चार कमेटियाँ, शिक्षा कमीशन और कमेटियाँ, पंजाब और अन्य राज्यों के विषय में अनेक कमेटियाँ नियुक्त हुईं और उनमें जो-जो बात जवाहरलाल जी को पसन्द नहीं आई, वे रद्दी की टोकरी में गईं। यहाँ तक कि संविधान की भी अवहेलना की गई। इनके साथ सुप्रीम कोर्ट और चीफ कोर्ट के निर्णयों के प्रति घृणा और उनका तिरस्कार भी किया गया।

मन्त्रिमण्डल, जो नेहरू जी का अपना नियुक्त किया हुआ होता था, उसकी सम्मति को भी ठुकरा देना, अपने मत के विरुद्ध कहने वाले को डांट-फटकार सुनाना और जब मनमानी करनी होती, तब किसी को बताए बिना काम कर लेना, ये तामसी प्रवृत्ति वालों के लक्षण हैं।

विद्वान कौन है ? इस विषय में तामसी स्वभाव के लोग संशय प्रकट किया करते हैं, परन्तु भारतीय शास्त्र इस विषय में स्पष्ट मत देते हैं :

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।।[227]

मन की शान्ति, इन्द्रियों का दमन, शरीर, मन और बुद्धि की पवित्रता, तपस्या, क्षमा भाव, सरलता, आस्तिक बुद्धि, सांसारिक ज्ञान और त्रिविध ब्रह्म का ज्ञान (विज्ञान)—ये एक विद्वान व्यक्ति के लक्षण हैं। इनका कहना न मानना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हानिकारक होता है। यदि कोई राजा ऐसे विद्वानों की अवहेलना करता है, तो राज्य ही नाश को प्राप्त होता है।

जवाहरलाल जी के राज्य की यही विशेषता रही है। आपने अपने राज्य काल में बीसियों विद्वानों और विशेषज्ञों की कमेटियाँ नियुक्त कीं, परन्तु की अपने मन की ही।

(5) धर्म और मज़हब में अन्तर नेहरू जी को कभी भी समझ नहीं आया। धर्म कर्म के साथ सम्बन्ध रखता है और मज़हब विचार के साथ। अधिक से अधिक, व्यक्ति के उन कामों को मज़हब कह सकते हैं, जिनका सम्बन्ध केवल कर्त्ता से ही हो अथवा जो कर्त्ता के विचार के साथ सम्बन्ध रखे।

कर्म, विशेष रूप में वह कर्म जिसका प्रभाव दूसरों पर पड़ता है अथवा पड़ने की सम्भावना है वह धर्म कहलाता है, विचार और वह कर्म जिनका सम्बन्ध केवल कर्त्ता के साथ हो, वह मज़हब कहलाता है।

उदाहरण के रूप में कोई सुन्नत कराता है अथवा कोई चोटी रखता है अथवा कोई तिलक लगाता है, ये मज़हबी बातें हैं। इनका धर्म के साथ सम्बन्ध नहीं है।

नेहरू जी, जो 17 वर्ष तक भारत जैसे देश पर राज्य कार्य करते रहे, धर्म और मज़हब में अन्तर नहीं जान सके। उनको राज्य-कार्य के अयोग्य ही कहा जा सकता है।

उन्होंने सैकुलर स्टेट के अर्थ धर्म-निरपेक्ष ही नहीं किए, वरंच उसको माना भी। हम इसमें एक उदाहरण देकर बात को स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

हिन्दू को एक धर्म कहा जाता है, परन्तु जब धर्म और मज़हब में अन्तर नहीं समझा जाएगा तो परिणाम यह होगा हिन्दू एक मज़हब माना जाएगा। अतः जो कुछ हिन्दू धर्म में है उसको मानना सैकुलरिज़्म का विरोध समझ लिया गया।

प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय में मज़हब रहता है। हमारा अभिप्राय यह है कि व्यक्ति और समुदाय भाँति-भाँति के विचार रखते हैं। उन विचार के अधीन वे कुछ ऐसे आचरण भी रखते हैं, जिनका उनके अपने से ही सम्बन्ध होता है। उदाहरण के रूप में काली के भक्त काली के समक्ष बकरे की बलि देने से ही काली को प्रसन्न करने की आशा करते हैं। ऐसा समझना और ऐसा करना किसी दूसरे मनुष्य से सम्बन्ध नहीं रखता। अतः यह मज़हबी विचार और आचरण है।

एक अन्य व्यक्ति जानवर की बलि देना तो दूर, मांस के दर्शन करना भी अपने मोक्ष साधन में बाधक मानता है। वह मांस को छूता नहीं, उसे देखता नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा करने से वह किसी दूसरे मानव के कार्य अथवा विचार में बाधक नहीं होता। यह उसका मज़हब है। परन्तु एक हिन्दू यह मानता है कि सत्य बोलना, चोरी न करना, दूसरे के विचारों में बाधा न डालना, विचार परिवर्तन के लिए बल प्रयोग न करना इत्यादि व्यवहार स्वीकार करने चाहिएँ। क्योंकि ये सब काम कर्त्ता के अतिरिक्त दूसरों से सम्बन्ध रखते हैं, अतः वे धर्म के क्षेत्र में आ जाएँगे।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक समुदाय में धर्म का अंश भी है और मज़हब का अंश भी। दोनों बातें एक ही मनुष्य में रहने से मज़हब धर्म नहीं हो जाता और धर्म मज़हब नहीं बन जाता। परन्तु नेहरू जी के राज्य में मज़हब को धर्म मान लिया गया और धर्म को मज़हब।

हिन्दुओं के मन्दिरों और पूजा स्थानों को तो सरकारी नियंत्रण में लाया जाने लगा और एक मुसलमान के चार पत्नियाँ रखने को उसका मज़हबी अधिकार मान लिया गया। पत्नी रखना एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से सम्बन्धित है। अतः यह मज़हबी बात नहीं हो सकती इसे तो मज़हबी बात मान ली गई, परन्तु वेंकटस्वामी के मन्दिर में अछूतों को प्रवेश मिले, यह एक धार्मिक बात मान ली गई। बात को ठीक समझाने के लिए हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम किसी भी मन्दिर में, किसी के भी प्रवेश करने से मना नहीं कर रहे। हमारा तो यह कहना है कि जो किसी समुदाय विशेष के लोगों के साथ पूजा-पाठ करना नहीं चाहता, उसे विवश कैसे किया जा सकता है कि वह वैसा करे ? यह विवश करना मज़हब में दखल है। अतः यह सैकुलर स्टेट को नहीं करना चाहिए।

हम एक और उदाहरण देते हैं। एक व्यक्ति मुहम्मद साहब की शिक्षा से प्रभावित हो उनका प्रशंसक बन जाता है और वह उनके विचार और चरित्र को हदीस में पढ़कर उसका एक चित्र बनाकर अपनी बैठक में लगा लेता है। उसका ऐसा करना एक सैकुलर स्टेट में वर्जित नहीं होना चाहिए। कारण यह कि उसका यह काम उसके मज़हब से सम्बन्ध रखता है। यह धर्म का विषय नहीं। परन्तु यह दुर्घटना नेहरू साहब के राज्य में हो चुकी है कि तस्वीर बनाने वाले व्यक्ति का जीवन दूभर हो गया था।

अतः नेहरू जी और उनके राज्य में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता (personal liberty) और सामाजिक कर्मों (social behaviour) में भेदभाव नहीं रहा। यह है मज़हब को धर्म समझना और धर्म को मज़हब समझना। धर्म तो पूर्ण देश के हिन्दुओं में प्रायः समान है। मज़हब अनेक हैं। अतः हिन्दू एक धर्म है। हिन्दुओं में वैष्णव, शैव, वेदान्ती, आर्यसमाजी इत्यादि मज़हब अनेक हैं। इन्हें मत अथवा पंथ कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(6) धर्म राजनीति में भी अपना अधिकार रखता है। राजनीति एक व्यक्तिगत विचार और कर्म नहीं है। इसमें कर्त्ता के अतिरिक्त अन्य मानवों का सम्बन्ध रहता है। इस कारण राजनीति धर्म के अन्तर्गत है और होनी चाहिए।

धर्म तीन प्रकार के हैं। सनातन, सामान्य और विशेष। सनातन धर्म वे हैं जो सब मनुष्यों के लिए, सब अवस्थाओं, सब परिस्थितियों और सब कालों में माननीय हैं। ये सनातन धर्म हैं धृति, क्षमा, दम, चोरी न करना, मन-वचन और कर्म से पवित्रता, इन्द्रियों पर नियन्त्रण, बुद्धियुक्त व्यवहार, ज्ञान-प्राप्ति, सत्य बोलना और क्रोध नहीं करना—ये सनातन धर्म अटल और अनिवार्य हैं।

सामान्य धर्म वे हैं जो समान परिस्थितियों, अवस्थाओं और कालों में समान रूप से स्वीकार किए जाते हैं। उदाहरण के रूप में विवाह कर गृहस्थ धर्म का पालन करना। परन्तु यह एक दस वर्ष के बालक तथा बालिका के लिए नहीं। न ही यह एक साठ-सत्तर वर्ष के बूढ़े के लिए है। एक प्रधान मन्त्री का धर्म, प्रधान मन्त्रियों के समान ही हो और एक चपरासी का चपरासियों के समान। एक दुकानदार का धर्म दुकानदारों के समान हो और एक क्लर्क का क्लर्कों के समान।

विशेष धर्म विशेष परिस्थितियों में ही पालन करने योग्य होते हैं। उदाहरण के रूप में युद्ध भूमि में अधिक से अधिक शत्रु की हत्याएँ करना धर्म है। यह विशेष धर्म है। एक नगर में रहते हुए अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सैनिक के लिए एक भी हत्या करनी अधर्म है।

राजनीति में भी सनातन धर्म तो पालन करने ही पड़ते हैं। हाँ, विशेष धर्म विशेष परिस्थितियों में पालन करने योग्य हैं।

परन्तु गांधी जी और जवाहरलाल जी के विचार से संसद में तथा जनता में सनातन धर्मों की अवहेलना की जा सकती है। यह की जाती रही है।

उदाहरण के रूप में विशेष परिस्थितियों में शत्रु के सम्मुख कभी कोई सनातन धर्म भी छोड़ना पड़ जाता है। परन्तु सामान्य स्थिति में सामान्य रूप से मित्रों के सम्मुख सनातन धर्मों का पालन होना ही चाहिए।

भारत के स्वराज्य काल में राज्य की ओर से सनातन धर्म की अवहेलना अनेक बार होती रही है और उस पर कभी पश्चात्ताप नहीं प्रकट किया गया।

(7) जवाहरलाल जी प्रजातन्त्र का दम भरते थे, परन्तु वे स्वयं प्रजातन्त्र को निस्तेज करने का यत्न कर रहे थे। न तो मन्त्रिमण्डल में न ही संसद में उन्होंने धैर्य, क्षमा इत्यादि का कभी पालन किया था।

एक बार डाक्टर मुखर्जी ने संसद में कह दिया था कि कांग्रेस ने निर्वाचन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीतने के लिए 'मनी, मैन, एण्ड वाइन' का प्रयोग किया है। प्रधान मन्त्री भड़क उठे और डाक्टर जी से अश्लील आरोप के लिए क्षमा प्रार्थना करने के लिए कहने लगे।

डाक्टर साहब ने पूछ लिया, 'मैंने क्या अश्लीलता का लांछन लगाया है ?' इस पर प्रधान मन्त्री ने कह दिया कि डाक्टर साहब ने 'मनी, विमैन, एण्ड वाइन' कहा है।

डाक्टर साहब ने कहा, "मैंने नहीं कहा।"

स्पीकर ने रिपोर्ट लिखने वाले 'स्टेनो' से पूछा। उसने अपनी रिपोर्ट को साधारण लिपि में लिखकर दिखाया तो वहाँ शब्द 'मैन' था 'विमैन' नहीं था। इस पर प्रधान मन्त्री चुप रहे, परन्तु उन्होंने अपनी भूल को स्वीकार नहीं किया। इस पर डाक्टर साहब ने यह कहा था, 'यह देश का दुर्भाग्य है कि एक अयोग्य आदमी प्रधान मन्त्री पद पर आसीन है।'

यह कहा जाता है कि इसके कुछ ही दिन उपरान्त घटने वाली डाक्टर साहब की मृत्यु, उनके इस निर्भय वक्तव्य से सम्बन्ध रखती है। यह थी राजनीति जवाहरलाल जी की। देश के किसी शत्रु का वे बाल-बांका नहीं कर सके और देशभक्त के स्पष्ट कथन को वे सहन नहीं कर सकते थे।

शेख अब्दुल्ला से जवाहरलाल जी के व्यवहार की बात हम पिछले अध्यायों में लिख चुके हैं। एक ऐसा व्यक्ति, जो कभी भी हिन्दुओं से सहचारिता स्थापित नहीं कर सका, आरम्भ से मतान्ध मुसलमान बना रहा, वह कैसे झूठ बोलकर भी गुलछर्रे उड़ाता रहा, यह हमने प्रमाण सहित बताया है।

प्रतापसिंह कैरों और के.डी. मालविया की बातें किस प्रकार छिपाकर रखने का यत्न किया गया था, वह अब एक सार्वजनिक ज्ञान की बात है। यह अपने देश में अपने ही देशवासियों से छलना खेलने वाले राजनीतिज्ञ कहाँ तक क्षमा करने के योग्य हो सकते हैं, विचारणीय है।

धर्म व्यवस्था के अनुसार यह अपराध अक्षम्य है।

(8) इस सबसे बढ़कर और घातक देश में नैतिक पतन की बात है। अंग्रेज़ी राज्य में महात्मा गांधी और अन्य कुछ एक नेताओं को चारों ओर से खुशामदी और चापलूस घेरे रहते थे। उस समय भी, जब कोई व्यक्ति महात्मा जी अथवा नेहरू जी की अनीति की बात के विरुद्ध जनता को बताना चाहता था, तो वे चापलूस कूद-कूद कर उस सचेत और सतर्क करने वाले की आवाज़ को दबा देते थे। वे समझते थे कि अपने प्रिय नेताओं की अनीति की बातों को छिपाकर वे बहुत बड़ा पुण्य कार्य कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में वे लोग पूर्ण जनता को और साथ ही नेताओं को 'चरित्रहीन' बनाने का यत्न कर रहे थे। नेताओं को सार्वजनिक आलोचना में बचाने वाले प्राय: हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ी भाषा के समाचार-पत्र थे। इन मूर्ख पत्रकारों ने सन् 1920 में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष और अन्य अनेक क्रान्तिकारी नेताओं और युवकों को बदनाम किया और महात्मा इत्यादि नेताओं को देवता बना दिया और इनसे जो कुछ देश की हानि हुई है, वह स्पष्ट है।

इस समय कोई राजनीतिक नेता सत्य भी बोलता है, विश्वास से नहीं कहा जा सकता। किसी नेता के संसद में और बाहर दिए भाषण पर जानकार लोग मुस्कराकर चुप रह जाते हैं। उद्योग-धन्धों, आर्थिक स्थिति और अन्न तथा रोजगार और बेकारी के विषय में वक्तव्य सदा संदिग्ध समझे जाते हैं।

अंग्रेज़ी समाचार-पत्रों का यह स्वभाव हो गया है कि बड़ी-बड़ी राशियाँ ले-लेकर झूठा प्रचार कार्य करते हैं। ईमानदारी और सच्चाई राजनीतिक क्षेत्र में ऐसी भावना है, जिनको ढूँढ़ना इतना ही कठिन हो गया है, जितने भूसे के ढेर में से एक सुई को ढूँढ़ना।

जब नेताओं और समाचार-पत्रों की यह दशा है तो जनसाधारण का क्या कहना? वे तो बेचारे कठिनाई से निर्वाह कर पाते हैं। उनके लिए धर्म-कर्म केवल पेट का पालन करना ही रह गया है।

(9) मन्त्रिमण्डल के कुछ भूतपूर्व सदस्यों ने सरकार और अपने साथियों की बातें लिखी हैं। इसका श्रीगणेश मौलाना आज़ाद ने अपनी पुस्तक India Wins Freedom में किया और पीछे कुछ अन्य लोगों ने भी पुस्तकें लिखी हैं। इनमें इन लोगों ने कुछ रहस्योद्घाटन किए हैं। कुछ ने ऐसी बातें भी लिखी हैं, जो सरकार ने कीं और देश के लिए घातक सिद्ध हुई हैं। डाक्टर सम्पूर्णानन्द, बाबू श्रीप्रकाश, श्री वी.पी. मैनन और अन्य महानुभावों के लेख समय-समय पर निकलते रहे हैं। हमने श्री के.एम. मुन्शी और श्री एन.वी. गाडगिल की पुस्तकों से उद्धरण भी दिए हैं। सचिवालय के कुछ उच्च पदाधिकारियों ने भी सरकार के भीतरी कर्मों का रहस्योद्घाटन किया है। इनमें श्री वी.पी. मैनन हैं जिन्होंने The Story of the Integration लिखकर देश के बुद्धिशील लोगों का बहुत कल्याण किया है। इस पर भी जो कुछ इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है, उसमें आधार हमारा सन् 1920 से लेकर सन् 1968, के काल के इतिहास का ज्ञान है। उपर्युक्त पुस्तकों ने हमारे ज्ञान का समर्थन ही किया है। इसी कारण उनको स्थान-स्थान पर उद्धरित किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं-कहीं किसी घटना का अर्थ जो हमने लगाया है, उक्त लेखकों ने उससे विपरीत अर्थ लगाए हैं। इस पर भी हमने अपनी विवेचना में युक्ति दी है।

परन्तु विस्मय तो इस बात पर होता है कि स्वराज्य पूर्व के नेताओं का व्यवहार और स्वराज्य काल के मन्त्रियों का व्यवहार ऐसा रहा है जो एक ईमानदार, अपने कर्म और विश्वासों पर निष्ठा रखने वाले का नहीं होना चाहिए। आधारभूत बातों पर मतभेद होते हुए भी राजनीति में ख्यातिरूपी वेश्या पर ये सब निछावर होते रहे हैं। इस पूर्ण काल में जब हम श्री वी.डी. सावरकर, श्री भाई परमानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, डाक्टर मुखर्जी और अंगुलियों पर गिने जाने वाले कुछ नेताओं का व्यवहार स्मरण करते हैं तो हमें सम्पूर्णानन्द, गाडगिल इत्यादि नेता बुद्धि और चरित्र के बौने ही प्रतीत होते हैं। यदि ये लोग उस समय साहस पकड़कर मिथ्या पथगामी अभारतीय नेताओं का विरोध करते तो पिछले बीस वर्ष का इतिहास भिन्न होता। भारत की स्थिति भी दूसरी होती। हमारे युवक इस समय तक अपने शौर्य और बुद्धि की प्रखरता का डंका भूमण्डल पर बजा चुके होते।

जनसाधारण का कोई दोष नहीं है। वह न तो अवसर और न ही योग्यता रखता है कि नेताओं की कुटिलता अथवा मूर्खता को जान सके। यह कर्त्तव्य नेताओं का ही है कि वे धर्मयुक्त और न्याय का पथ प्रशस्त करते रहें।

अब पुस्तकें लिखने और दूसरों के छिद्रान्वेषण करने से वह लाभ नहीं हो सकता, जो समय पर तानाशाह और देश के साथ अन्याय करने वालों का भाण्डा फोड़ने से होता है।

वास्तविकता यह है कि महात्मा गांधी, पूर्वजन्मों के कर्मों के अधीन ख्याति प्राप्त कर गए। उनमें साहस भी था, परन्तु ईश्वर के कोप से अथवा पुण्य कर्मों में कमी के कारण उनकी बुद्धि में कमी रह गई। इस कारण वे अपने साथी ऐसे बना बैठे जो देश, समाज और धर्म के साथ विश्वासघात ही करते रहे। जो लोग अब उस काल के नेताओं में दोष पकड़ते हैं, उस समय वे ऐसी स्थिति में थे कि बुराई को रोक सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

इस विषय में श्री गाडगिल की पुस्तक में लिखी एक घटना का उल्लेख करना उचित होगा।

कांग्रेस के सन् 1946 के मेरठ अधिवेशन में आचार्य कृपलानी प्रधान बने थे। उन्होंने अगस्त सन् 1947 में नेहरू जी से मतभेद होने कारण त्याग-पत्र दे दिया था। तदनन्तर कांग्रेस ने डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद को प्रधान बना दिया और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको सम्मति दी कि वे मन्त्रिमण्डल से त्याग-पत्र दे दें। कारण, यह प्रथा थी कि संस्था का प्रधान मन्त्रिमण्डल में न लिया जाए। अत: वे मन्त्रिमण्डल से पृथक् हो गए। पीछे सन् 1951 से 1954 तक नेहरू प्रधान मन्त्री रहते हुए भी कांग्रेस के प्रधान बने रहे। उस समय किसी ने आपत्ति नहीं की। वास्तव में कांग्रेस नेहरू-परिवार की सम्पत्ति मानी जाती थी।

सन् 1948 में कांग्रेस का अधिवेशन जयपुर में हुआ और वहाँ पट्टाभि सीतारमैया प्रधान चुने गए। सन् 1950 में कांग्रेस अधिवेशन नासिक में हुआ। इसके लिए श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन का नाम प्रधान पद के लिए प्रस्तावित हुआ।

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन का नेहरू जी ने विरोध किया और उनके विरुद्ध आचार्य कृपलानी को खड़ा कर दिया। सरदार पटेल टण्डन जी का पक्ष ले रहे थे। मुसलमान आचार्य कृपलानी का पक्ष लेने लगे। जवाहरलाल जी ने टण्डन जी का विरोध उनके हिन्दू होने के कारण खुलकर किया। इस पर कांग्रेस में दो पक्ष बन गए। टण्डन जी निर्वाचित हो गए और जवाहरलाल जी ने इसे अपनी घोर पराजय समझा। नासिक अधिवेशन पर कांग्रेस के प्रधान और प्रधान मन्त्री में अधिकारों और कार्यों की सीमा के लिए एक गुप्त बैठक की गई। यह निश्चय ही था कि उस सभा में खुलकर तू-तू-मैं-मैं होगी। इसको राजगोपालाचार्य तथा गाडगिल ने रोका। उस गुप्त बैठक में यह प्रस्ताव रखा गया कि इस विषय को न छेड़ा जाए और खुला रहने दिया जाए। दोनों पक्ष मान गए और विचार नहीं हो सका।

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस विषय पर पहले श्री कृपलानी ने त्याग-पत्र दिया था। बात यह थी कि श्री नेहरू जी हिन्दुओं की खुलकर निन्दा करते थे। टण्डन जी यह पसन्द नहीं करते थे।

नासिक में निर्णयात्मक बात नहीं हो सकी। श्री गाडगिल लिखते हैं—

...But Nehru's supporters did not rest there. The Congress politics again inflamed in July-August. Lacking a sportsman's spirit, Nehru could not forget that Tandon's election was a defeat for himself. A common theme of his speeches became, increasingly, a rebuke to the Hindus and the supporters of Hindi and their so-called obscurantism. Sometimes his observations lapsed into personal criticisms. Till then he was free from

एक खिलाड़ी की भावना से हीन होते हुए नेहरू जी भूले नहीं कि टण्डन जी के प्रधान चुने जाने से उनकी हार हुई है। उनके भाषणों का एक ही विषय होता था : हिन्दुओं और हिन्दी के पक्ष वालों को गाली देना। वे हिन्दी की दुर्बोधता की घोषणा करते थे। कभी-कभी वे व्यक्तिगत आक्षेप भी करने लग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

such lapses. As a consequence, a demand was made for a meeting of the AICC for the express purpose of moving a resolution asking for Tandon's resign.

This extra session of the AICC met in Delhi in September of that year. The partisans of both had pitched their camps in Delhi two days before the session. Even Government officers joined in discreed convassing for votes. A day before the meeting, Misra of Madhya Pradesh phoned me to ask how Maharashtra was going to vote. I told him that more than half of the Maharashtrians would vote for Nehru. He was banking on the Bihar and Uttar Pradesh members to vote for Tandon. I told him that all of them would vote against Tandon and he (Mishra) should decide his next step with that in view. He phoned me that night to tell me that Tandon was resigning.[228]

जाते थे। इस समय से पूर्व तक, वे (नेहरू) इस दोष से मुक्त थे। इन सब भाषणों के परिणामस्वरूप A.I.C.C. (अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी) की एक विशेष मीटिंग बुलाई गई और उसमें टण्डन जी से त्याग-पत्र देने की माँग की गई।

कांग्रेस (A.I.C.C.) का एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया, जो उसी वर्ष दिल्ली में सितम्बर के महीने में हुआ। दोनों पक्ष के लोग दिल्ली में एकत्रित हो गए थे। यहाँ तक कि सरकारी अधिकारी भी छिपे-छिपे प्रचार कर रहे थे। मीटिंग के एक दिन पूर्व मध्य भारत के श्री मिश्र ने मुझे टेलीफोन किया और पूछा कि महाराष्ट्र किस ओर होगा ? मैंने बताया कि महाराष्ट्र के आधे से अधिक मत नेहरू के पक्ष में हैं। उसने कहा कि टण्डन, बिहार और उत्तर प्रदेश के भरोसे हैं। मैंने उसे कहा कि वे सब-के-सब श्री टण्डन के विरुद्ध जाएँगे और वह (मिश्र) अपना पग इसी प्रकार से उठाएँ। मिश्र ने सायंकाल टेलीफोन किया कि टण्डन त्याग-पत्र दे रहा है।

यह एक उदाहरण है। ऐसा अनेक बार हुआ कि नेहरू जी हिन्दुओं को गाली दे-देकर अपने पक्ष में किया करते थे। उक्त घटना में सबसे बड़े दोषी उत्तर प्रदेश और बिहार के हिन्दू हैं।

श्री सुभाषचन्द्र बोस की कहानी दोहराई गई थी। गुरु और चेला (महात्मा गांधी और नेहरू) एक जैसे सिद्धहस्त सिद्ध हुए हैं।

श्री गाडगिल इस स्थान पर लिखते हैं—

I once observed to Gobind Ballabh Pant about this whole episode 'All of you insisted on electing Tandon as the President but abandoned him when he was the victim of an injustic.' His response was : 'The world is like that.'[220]

मैंने एक दिन श्री गोविन्दवल्लभ पन्त से कहा, 'आप सब टण्डन को प्रधान बनाने का हठ कर रहे थे और उन पर अन्याय होने लगा तो आप उसको छोड़ गए।' इस पर पन्त ने कहा, 'दुनिया ऐसी ही है।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ दिन पूर्व डाक्टर सम्पूर्णानन्द का लेख दिल्ली के साप्ताहिक 'ऑरगैनाइज़र' में छपा था। लेख में उन्होंने नेहरू जी के तिब्बत के प्रति व्यवहार का उल्लेख करते हुए, उस काल में नेहरू जी का विरोध न करने की सफाई देते हुए लिखा था—

It is said that Khrushchov was once violently denouncing Stalin and his dictatorial methods. At a pause, someone at the back of the audience cried out : 'If you knew all this, why did you not speak out in his life time?'

Khrushchov stopped for a moment and then asked : 'Will the person who put that question to me please let me know his name ?'

There was no reply. After a moment Khrushchov said : 'That is the reason. I was as much afraid of Stalin during his life time as you are afraid of me today.' [230]

यह कहा जाता है कि एक सभा में ख़ुश्चेव स्टालिन और उसकी तानाशाही की घोर निन्दा कर रहा था। वह ठहरा तो श्रोतागणों में से एक ने पूछा यदि आप यह सबकुछ उस समय जानते थे तो आपने उस समय, उनके जीवन काल में विरोध क्यों नहीं किया?

ख़ुश्चेव एक क्षण तक ठहरा और फिर पूछने लगा, 'प्रश्नकर्त्ता क्या अपना नाम बताएगा?'

कोई उत्तर नहीं आया, इस पर ख़ुश्चेव ने कहा, यही कारण था। मैं उस समय स्टालिन से इतना ही डरा हुआ था, जितना कि प्रश्नकर्त्ता इस समय मुझसे डरा हुआ है।'

परन्तु हम डाक्टर साहब की सफाई को स्वीकार नहीं कर सकते। स्टालिन के राज्य और नेहरू के राज्य में अन्तर था। नेहरू राज्य में एक साधारण लेखक सन् 1948 में' 'Facts Speak' और 'First Year of the Congress Rule' लिखकर, कांग्रेस को स्वार्थियों का टोला कह सकता था, श्री नेहरू और मौलाना आज़ाद का भाण्डा फोड़ सकता था, परन्तु इन कांग्रेस सदस्यों को जो हिन्दुओं का नाम ले-लेकर वोट माँगते फिरते थे, किस प्रकार पक्षाघात मार गया था?

निःसन्देह गांधी जी के चारों ओर स्वार्थियों और मूर्खों का टोला एकत्रित हो गया था जो सर्वसाधारण की आँखों में महात्मा नाम की धूल झोंक कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं।

इन सब बातों को देखकर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि—

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग से।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग से॥

●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

References

1. Lord Macaulay, Historical Essays; pp. 387-389; Qtd. by Brahma Dutta Bharti in Maxmuller Exposed, p.2.
2. Rt. Hon'ble Sir George Otto Trevelyan Bart, The Life and Letters of Lord Macaullay, pp. 329-330; Qtd. by Brahma Dutta Bharti in Maxmuller Exposed, p.3.
3. Qtd. by Brahma Datta Bharti in Maxmuller Exposed in p. 25.
4. Brahma Datta Bharti, Maxmuller Exposed, p.17.
5. Ibid. p.9.
6. Jawaharlal Nehru, An Autobiography; John Lane The Bodley Head, London, (1947) p. 27.
7. H.S.L. Polak, H.V.N. Brailsford, Lord Pethic-Lawrence, Mahatma Gandhi, Ohams Press Limited. London (1949), p, 10.
8. Mahabharata Udyog Parva, 77-107.
9. An Autobiography, p.3.
10. An Autobiography, p. 6.
11. An Autobiography, p. 15.
12. An Autobiography, p. 16.
13. An Autobiography, p. 8.
14. An Autobiography, p. 14.
15. An Autobiography, p. 7.
16. An Autobiography, p. 17.
17. An Autobiography, p. 21.
18. Dhananjaya Keer, Savarkar And His Times, A.V. Keer, Bombay (1950), p.50.
19. An Autobiography, p.23.
20. An Autobiography, p. 23-24.
21. An Autobiography, p. 22-23.
22. An Autobiography, p. 24.
23. An Autobiography, p. 21-22.
24. An Autobiography, p. 20.
25. Frank Moraes, Jawaharlal Nehru—A Biography, The Macmillan Company, New York (1956), p. 37.
26. Frank Moraes, Jawaharlal Nehru—A Biography, The Macmillan Company, New York (1956), p. 39.
27. An Autobiography, pp. 24-25.
28. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, Navjivan Publishing House, Ahmedabad (1965), p. 136.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

29. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, Navjivan Publishing House, Ahmedabad (1965), p. 137.
30. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, p. 158.
31. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, the Early Phase, p. 124.
32. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, p.125.
33. Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase p. 163.
34. An Autobiography, p. 27.
35. G.P. Pradhan, A.K. Bhagwat, Lokmanya Tilak, A Biography, Jaico Publishing House, Bombay, 1959, pp. 109-110.
36. An Autobiography, pp. 30-31.
37. An Autobiography, pp. 23.
38. An Autobiography, pp. 30.
39. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, p. 148.
40. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, p. 147.
41. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, p. 147.
42. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, p. 144.
43. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, p. 151.
44. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, p. 151.
45. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, p. 151.
46. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, Vol. I, The Early Phase, p. 151.
47. An Autobiography, p. 31.
48. Qtd. by Pyarelal in Mahatma Gandhi, vol. I, The Early Phase, p. 158.
49. An Autobiography p. 41.
50. An Autobiography p. 41.
51. An Autobiography p. 41.
52. An Autobiography p. 41-42.
53. An Autobiography p. 41.
54. Qtd by Pyarelal, Mahatma Gandhi, vol. I, The Early Phase, pp. 197-198.
55. Qtd by Pyarelal in Mahatma Gandhi, vol. I, The Early Phase p. 205.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

56. Frank Moraes, Jawaharlal Nehru, pp. 37-38.
57. Pyarelal, Mahatma Gandhi, vol. I The Early Phase p. 254.
58. Jawaharlal Nehru, A Bunch of Old Letters, Asia Publishing House (1958), p. 5.
59. Jawaharlal Nehru, A Bunch of Old Letters, Asia Publishing House (1958), p. 6.
60. Jawaharlal Nehru, A Bunch of Old Letters, Asia Publishing House (1958), p. 6.
61. An Autobiography p. 53.
62. An Autobiography p. 63.
63. An Autobiography p. 63.
64. An Autobiography p. 64.
65. An Autobiography p. 67-68.
66. An Autobiography p. 69.
67. An Autobiography p. 69.
68. An Autobiography p. 71-72.
69. An Autobiography p. 73.
70. An Autobiography p. 75.
71. An Autobiography p. 75.
72. An Autobiography p. 76.
73. Frank Moraes, Jawaharlal Nehru, A Biography, p.62.
74. An Autobiography, p. 78.
75. A Bunch of Old Letter, pp. 23-24.
76. An Autobiography, p. 82.
77. An Autobiography, p. 82.
78. Pyarelal, Mahatma Gandhi, The Last Phase, vol. II. p.17.
79. Pyarelal, Mahatma Gandhi, The Last Phase, vol. II. p.15-16.
80. An Autobiography, pp. 83-84.
81. An Autobiography, pp. 65.
82. An Autobiography, pp. 65.
83. M.R. Jayakar, The Story of My Life, Vol. II Asia Publishing House, Bombay, 1959, p. 39.
84. An Autobiography, p. 41.
85. An Autobiography, p.85.
86. Srimadbhagvad Gita, pp. 18-24.
87. Srimadbhagvad Gita, pp. 18-24.
88. An Autobiography, p. 109.
89. A Bunch of Old Letters, pp. 28-29.
90. An Autobiography, p.118.
91. An Autobiography, p.124.
92. An Autobiography, p.117.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

93. An Autobiography, p.128-129.
94. An Autobiography, p.129.
95. Frank Moreas, Jawaharlal Nehru, pp. 100-101.
96. An Autobiography, p. 134.
97. An Autobiography, p. 134-135.
98. An Autobiography, p. 72.
99. An Autobiography, p. 135.
100. An Autobiography, p. 135.
101. An Autobiography, p. 135-136.
102. An Autobiography, p. 136.
103. K.M. Munshi, Pilgrimage To Freedom, Bharatiya Vidya Bhawan, bombay, (1967) p. 25.
104. K.M. Munshi, Pilgrimage To Freedom, Bharatiya Vidya Bhawan, bombay, (1967) p. 31-32.
105. K.M. Munshi, Pilgrimage To Freedom, Bharatiya Vidya Bhawan, bombay, (1967) p. 18.
106. K.M. Munshi, Pilgrimage To Freedom, Bharatiya Vidya Bhawan, bombay, (1967) p. 22.
107. K.M. Munshi, Pilgrimage To Freedom, Bharatiya Vidya Bhawan, bombay, (1967) p. 22.
108. K.M. Munshi, Pilgrimage To Freedom, Bharatiya Vidya Bhawan, bombay, (1967) p. 75-76.
109. An Autobiography, p. 76.
110. An Autobiography, p. 67-68.
111. An Autobiography, p. 63.
112. An Autobiography, p. 158.
113. An Autobiography, p. 157-158.
114. G.V. Desani, Illustrated Weekly, Bombay, 26th January 1965.
115. An Autobiography, p. 149-150.
116. An Autobiography, p. 154.
117. A bunch of Old Letters, pp. 51-52.
118. A bunch of Old Letters, pp. 52.
119. A bunch of Old Letters, pp. 55.
120. An Autobiography, p. 157.
121. An Autobiography, p. 75.
122. Jawaharlal Nehru, Soviet Russia : Some Rondom Sketches And Impressions, Chetana, Bombay, (1949), p. 9-10.
123. Jawaharlal Nehru, Soviet Russia : Some Rondom Sketches And Impressions, Chetana, Bombay, (1949), p. 2.
124. Jawaharlal Nehru, Soviet Russia : Some Rondom Sketches And Impressions, Chetana, Bombay, (1949), p. 2.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

125. Jawaharlal Nehru, Soviet Russia : Some Rondom Sketches And Impressions, Chetana, Bombay, (1949), p. 3.
126. Jawaharlal Nehru, Soviet Russia : Some Rondom Sketches And Impressions, Chetana, Bombay, (1949), p. 63.
127. Jawaharlal Nehru, Soviet Russia : Some Rondom Sketches And Impressions, Chetana, Bombay, (1949), p. 76.
128. Suzanne Labin. Stalin's Russia; Victor, Gollancz Ltd., London (1949) p. 119.
129. Suzanne Labin. Stalin's Russia; Victor, Gollancz Ltd., London (1949) p. 119.
130. David J. Dallin and Boris I. Nicolaevsky, Forced Labour in Soviet Russia, Prachi Prakashan, Calcutta, pp. 23-24.
131. David J. Dallin and Boris I. Nicolaevsky, Forced Labour in Soviet Russia, Prachi Prakashan, Calcutta, pp. 28-29-30.
132. David J. Dallin and Boris I. Nicolaevsky, Forced Labour in Soviet Russia, Prachi Prakashan, Calcutta, pp. 31-32.
133. Qtd. By Suzanne Labin, In Stalin's Russia, p. 20.
134. Jawaharlal Nehru Glimpses of world History, Lindsay Drummond, London, (1949) p. 437.
135. Pilgrimage to Freedom, pp. 63-64.
136. Glimpses of World History, p. 442.
137. Soviet Russia, p. 36
138. Glimpses of World History, p. 638.
139. An Autobiography, p.175.
140. An Autobiography, p.69.
141. An Autobiography, p.78.
142. Jawaharlal Nehru, The Discovery of India, The Signet Press, Calcutta (1946) pp. 17-18.
143. Jawaharlal Nehru, The Discovery of India, The Signet Press, Calcutta (1946) pp. 19.
144. Manifesto of the Communist Party, qtd. in The Essential LeftI Unwin Books, p.47.
145. Qtd. by Dorothy Norman in Nehru—The First Sixty Years, Vol. I, p. 131.
146. Srimadbhagwad Gita p. 18-42.
147. Qtd. By Dorothy Norman in Nehru—The First Sixty Years, Vol. 1, p. 132.
148. Qtd. By Dorothy Norman in Nehru—The First Sixty Years, Vol. I, p. 134.
149. An Autobiography, p. 364.
150. A Bunch of Old Letters, p. 135.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

151. A Bunch of Old Letters, p. 142.
152. A Bunch cf Old Letters, p. 58.
153. A Bunch of Old Letters, p. 59.
154. A Bunch of Old Letters, p. 57.
155. A Bunch of Old Letters, p. 85.
156. An Autobiography, p. 210.
157. An Autobiography, p. 256.
158. Frank Moraes, Jawaharlal Nehru, p. 255.
159. Frank Moraes, Jawaharlal Nehru, p. 255.
160. A Bunch of Old Letters, p. 172.
161. Frank Mareas, Jawaharlal Nehru, p. 259.
162. Frank Mareas, Jawaharlal Nehru, p. 259.
163. A Bunch of Old Letters, p. 480-481.
164. N.N. Gadgil, government From Inside, Meenakshi Prakashan Meerut (1968), p. 11.
165. V.P. Menon, The Story of the Integration of The Indian States, Orient Longmans Ltd., Calcutta, (1956), pp. 403-404.
166. Frank Mareas, Jawaharlal Nehru, p. 301.
167. K.M. Munshi, Pilgrimage To Freedom. p. 82.
168. K.M. Munshi, Pilgrimage To Freedom. p. 82.
169. Frank Moreas Jawaharlal Nehru pp. 313-314.
170. Pilgrimage To Freedom, p.8.
171. An Autobiography p. 316.
172. Government Form Inside, p. 15.
173. Government Form Inside, p. 17.
174. Government Form Inside, p. 12-13.
175. Government Form Inside, p. 16-17.
176. Government Form Inside, p. 17.
177. Government Form Inside, p. 15.
178. Government Form Inside, p. 24-25.
179. Pilgrimage To Freedom. p. 49.
180. Government From Inside, p. 18.
181. Mehar Chand Mahajan, Looking Back, pp. 117-118.
182. Mehar Chand Mahajan, Looking Back, pp. 118.
183. Government From Inside, p. 27.
184. Government From Inside, p. 3.
185. Government From Inside, p. 29-30.
186. Pyarelal, Mahatma Gandhi, The Last Phase, Vol. II, p. 155.
187. Pyarelal, Mahatma Gandhi, The Last Phase, Vol. II, p. 156.
188. Pyarelal, Mahatma Gandhi, The Last Phase, Vol. II, p. 136.
189. Government From Inside. p. 51.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

190. Government From Inside. p. 51.
191. Government From Inside. p. 51-52.
192. Government From Inside. p. 43-44.
193. Government From Inside. p. 50.
194. Government From Inside. p. 185-186.
195. Looking Back, p. 156.
196. Looking Back, p. 157-158.
197. Looking Back, p. 158.
198. Looking Back, p. 159.
199. M.B. Kaul. The Untold Story, Allied Publishers, 1967, pp. 113-114.
200. M.B. Kaul. The Untold Story, Allied Publishers, 1967, pp. 116-119.
201. Looking Back, pp. 151-152.
202. Government From Inside, p 61.
203. Mahatma Gandhi, The Last Phase, Vol. II. pp. 474-475.
204. Mahatma Gandhi, The Last Phase, Vol. II. pp. 473.
205. Mahatma Gandhi, The Last Phase, Vol. II. pp. 473.
206. Mahatma Gandhi, The Last Phase, Vol. II. pp. 475.
207. Government From Inside, pp. 146-147.
208. Pilgriamage To freedom, p. 214.
209. Pilgriamage To freedom, p. 230.
210. Pilgriamage To freedom, p. 231.
211. Pilgriamage To freedom, p. 232.
212. Government From Inside, pp. 81.
213. Government From Inside, pp. 82.
214. Government From Inside, pp. 84.
215. The Integration of the Indian States, p. 203.
216. The Untold Story, p. 203.
217. The Untold Story, p. 209.
218. The Untold Story, p. 333.
219. Government From Inside, p. 86.
220. Government From Inside, pp. 88.
221. Government From Inside, pp. 86-87.
222. Government From Inside, pp. 83.
223. Yojurveda, 1-7.
224. Mahabharata yog, 73—8.
225. Mahabharata yog, 73—9, 10.
226. Mahabharata yog, 73—24, 25.
227. Bhagwad Gita, 18-42
228. Government From Inside, pp. 191-192.
229. Government From Inside, pp. 192.
230. Organiser, 26th March 1968.

Central Library Gurukula Kangri University Haridwar 167953
081 167953
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-G आगत संख्या 167953

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे द्वारा प्रकाशित कुछ प्रमुख रचनाएं

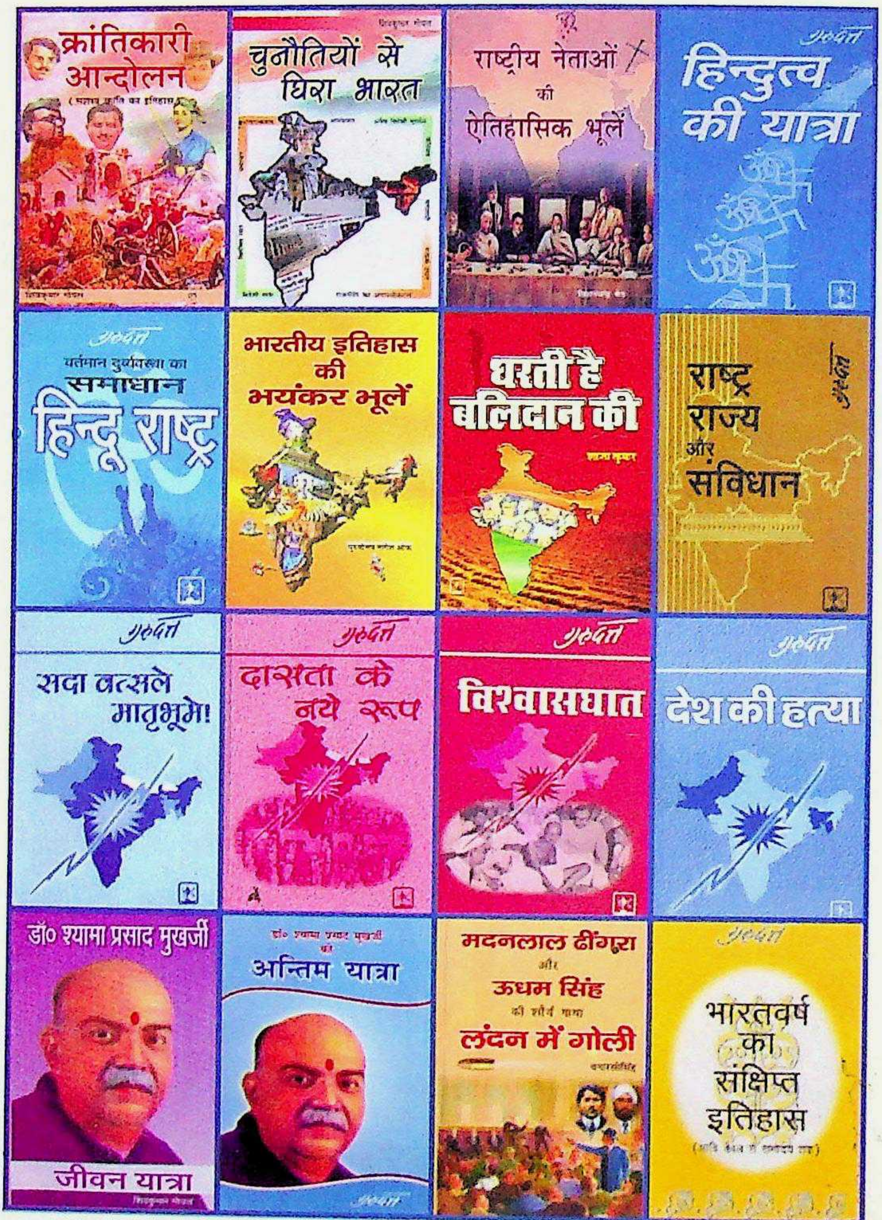

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-05. फोन : 9213527666, 7065618655
ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com, hindisahityasadan@gmail.com
www.hindisahityasadan.com

9 789386 336828

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar